असंभव क्रांति

१. सत्य का द्वार

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक सम्राट एक दिन सुबह अपने बगीचे में निकला। निकलते ही उसके पैर में कांटा गड़ गया। बहुत पीड़ा उसे हुई। और उसने सारे साम्राज्य में जितने भी विचारशील लोग थे, उन्हें राजधानी आमंत्रित किया। और उन लोगों से कहा, ऐसी कोई आयोजना करो कि मेरे पैर में कांटा न गड़ पाए।

वे विचारशील लोग हजारों की संख्या में महीनों तक विचार करते रहे और अंततः उन्होंने यह निर्णय किया कि सारी पृथ्वी को चमड़े से ढांक दिया जाए, ताकि सम्राट के पैर में कांटा न गड़े। यह खबर पूरे राज्य में फैल गई। किसान घबड़ा उठे। अगर सारी जमीन चमड़े से ढंक दी गई तो अनाज कैसे पैदा होगा? सारे लोग घबड़ा उठे--राजा के पैर में कांटा न गड़े, कहीं इसके पहले सारी मनुष्य जाति की हत्या तो नहीं कर दी जाएगी? क्योंकि सारी जमीन ढंक जाएगी तो जीवन असंभव हो जाएगा।

लाखों लोगों ने राजमहल के द्वार पर प्रार्थना की और राजा को कहा, ऐसा न करें कोई और उपाय खोजें। विद्वान थे, बुलाए गए और उन्होंने कहा, तब दूसरा उपाय यह है कि पृथ्वी से सारी धूल अलग कर दी जाए, कांटे अलग कर दिए जाएं, ताकि आपको कोई तकलीफ न हो।

कांटों की सफाई का आयोजन हुआ। लाखों मजदूर राजधानी के आसपास झाडुएं लेकर रास्तों को, पथों को, खेतों को कांटों से मुक्त करने लगे। धूल के बवंडर उठे, आकाश धूल से भर गया। लाखों लोग सफाई कर रहे थे। एक भी कांटे को पृथ्वी पर बचने नहीं देना था, धूल नहीं बचने देनी थी, ताकि राजा को कोई तकलीफ न हो, उसके कपड़े भी खराब न हों, कांटे भी न गड़ें। हजारों लोग बीमार पड़ गए, इतनी धूल उड़ी। कुछ लोग बेहोश हो गए, क्योंकि चौबीस घंटा, अखंड धूल उड़ाने का क्रम चलता था। धूल वापस बैठ जाती थी, इसलिए क्रम बंद भी नहीं किया जा सकता था।

सारी प्रजा में घबड़ाहट फैल गई। लोगों ने राजा से प्रार्थना की यह क्या पागलपन हो रहा है। इतनी धूल उठा दी गई है कि हमारा जीना दूभर हो गया, सांस लेना मुश्किल है। कृपा करके ये धूल के बादल वापस बिठाए जाएं। कोई और रास्ता खोजा जाए।

फिर हजारों मजदूरों को कहा गया कि वे जाकर पानी भरें और सारी पृथ्वी को सीचें। नदी और तालाब सूख गए। लाखों भिश्तियों ने सारी राजधानी को, राजधानी के आसपास की भूमि को पानी से सींचा। कीचड़ मच गई, गरीबों के झोपड़े बह गए। बहुत मुसीबत खड़ी हो गई। फिर राजा से प्रार्थना की गई कि यह क्या हो रहा है--क्या आप हमें जीने न देंगे? क्या

आपके पैर में एक कांटा लगता है तो हम सबका जीवन मुश्किल हो जाएगा? कोई और सरल रास्ता खोजें।

और तभी एक बूढ़े आदमी ने आकर राजा को कहा, मैं यह जूता आपके लिए बना लाया हूं, इसे पहन लें, कांटा फिर आपको न गड़ेगा और हमारा जीवन भी बच जाएगा।

राजा हैरान हुआ। इतना सरल उपाय भी हो सकता था क्या? पैर ढंके देखकर वह चकित हो गया। क्या कोई इतना बुद्धिमान मनुष्य भी था जिसने इतनी सरलता से बात हल कर दी, जिसे लाखों विद्वान हल न कर सके! करोड़ों रुपया खर्च हुआ, हजारों लोग परेशान हुए--इतनी सरल बात थी।

और सारे पंडित, सारे विद्वान क्रोध औरर् ईष्या से भर गए--यह बूढ़ा आदमी खतरनाक था। इस सब के प्रति, इस बूढ़े आदमी के प्रति, उन सबके मन में तीव्र रोष भर गया। उन्होंने कहा, जरूर इस आदमी को शैतान ने ही सहायता दी होगी। क्योंकि हम इतने विचारशील लोग नहीं खोज पाए जो बात, इसने खोज ली है! जरूर इसमें कोई खतरा है।

राजा को उन्होंने समझाया। यह जूता खतरनाक सिद्ध होगा, शैतान का हाथ इसमें होना चाहिए। क्योंकि हमारी सारी बुद्धिमत्ता जो नहीं खोज सकी, यह बूढ़ा आदमी कैसे खोज लेगा? राजा को उन्होंने भड़काया, समझाया। राजा भयभीत हो गया। उस बूढ़े आदमी को सूली दे दी गई। वह पहला समझदार आदमी सूली पर चढ़ा। और उसके बाद जितने लोगों ने यह सलाह दी है कि कृपा करें, पृथ्वी को परेशान न करें, अपने पैर ढंक लें, उन सभी को सूली दी जाती रही है।

शायद इसीलिए वह पहला क्रांतिकारी व्यक्ति जिसने जूते की ईजाद की थी, उसके वंशज आज भी अपमानित हैं--आज भी चमार का कोई आदर नहीं है। शायद पंडितों का ही हाथ होगा इसमें।

इस कहानी से इन तीन दिनों की चर्चा को मैं शुरू करना चाहता हूं। इस वजह से कि सारी दुनिया में सभी मनुष्यों का एक ही प्रश्न है--दुख के कांटे जीवन को पीड़ित किए रहते हैं। अशांति के कांटे, चिंता के कांटे, अज्ञान और अंधकार के कांटे गड़ते हैं और कोई उपाय समझ में नहीं आता कि इनसे कैसे बचा जाए। और सभी लोग बुद्धिमानों की, तथाकथित बुद्धिमानों की सलाह मानकर सारी पृथ्वी को ढंकने की आयोजना में लग जाते हैं--अपने को छोड़कर, अपने को भूलकर! अपने पैर को ढंकने की सीधी सी युक्ति किसी की भी समझ में नहीं आती।

इतनी सीधी युक्ति है, लेकिन इस जमीन पर दस-पांच ही ऐसे लोग हुए हैं, जिन्होंने अपने पैर ढंके हों। अधिक लोग पृथ्वी को ही बदलने की कोशिश करते रहे हैं। और ये अधिक लोग, जितनी इन्होंने कोशिश की है, जमीन को ढंक देने की, धूल-कांटों से अलग कर देने की, उतनी ही जमीन मुश्किल में पड़ती चली गई। इन सभी सुधारकों के कारण ही मनुष्य जाति इतनी पीड़ाओं में उलझ गई है कि आज कोई छुटकारा भी दिखाई नहीं पड़ता है।

लेकिन एक सीधी सी बात थी कि हर आदमी अपने पैर ढंक ले और कांटों से मुक्त हो जाए। लेकिन यह सीधी सी बात--आश्चर्य ही है कि मुश्किल से ही कभी किसी को दिखाई पड़ती है। इस सीधी सी बात को ही इन तीन दिनों में समझाने की आपको कोशिश करूंगा। नाराज आप जरूर होंगे मन में क्योंकि सीधी बात किसी को समझाई जाए तो नाराजगी होती है। इतनी सीधी बात को भी समझाने की कोशिश करने से गुस्सा आता है। ऐसा लगता है कि क्या आप हमें इतना नासमझ समझते हैं कि इस सीधी सी बात को हमें समझाएं।

लेकिन क्षमा मैं बाद में मांग लूंगा, बात तो यही मुझे समझानी है। क्योंकि यही एकमात्र कष्ट है मनुष्य के सामने। कांटे उसे चुभते हैं, लेकिन पैर को जूते से ढंकने का खयाल नहीं आता है। सब तरफ दृष्टि जाती है, हजारों उपाय सूझते हैं जीवन को शांत कर लेने के--एक उपाय भर नहीं सूझता है, अपने को बदल लेने का, अपने को ढंक लेने का। और सब योजना चलती है--सुख की और आनंद की। खोज की सब दिशाएं खोज ली जाती हैं, सिर्फ एक दिशा अनछुई रह जाती है--वह है स्वयं की दिशा। जैसे स्वयं को हम देखते ही नहीं और सबको देखते रहते हैं।

तो यहां इन तीन दिनों में इस सीधी सी बात पर थोड़ा सा हम विचार करेंगे कि क्या स्वयं को भी देखा जा सकता है? क्या यह संभव नहीं है कि हम अपने को बदल लें? क्या यह संभव नहीं है कि हमारी दृष्टि स्वयं के परिवर्तन और चिकित्सा पर चली जाए? क्या यह नहीं हो सकता है कि हम अपने को ढंक लें और दुखों और पीड़ाओं से मुक्त हो जाएं। क्या उस राजा को जो समझदार लोगों ने सलाहें दी थीं, वे ही हम भी मानते रहेंगे? क्या उस बूढ़े और सीधे आदमी की बात हमारे खयाल में भी नहीं आएगी?

इसी संबंध में थोड़ी सी बातें इन तीन दिनों मैं आपसे कहूंगा। इसके पहले कि वे तीन दिनों की चर्चाएं शुरू हों, कुछ और थोड़ी सी प्राथमिक बातें आज ही मुझे कह देनी हैं। क्योंकि आज रात से जो तीन दिन का जीवन शुरू होगा उसे मैं चाहूंगा--आपका मन भी चाहता होगा, इसीलिए आप यहां आए हैं--कि वे तीन दिन उपलब्धि के दिन हो जाएं। उन तीनों दिनों में कोई झलक, कोई किरण जीवन के अंधेरे को आलोकित कर दे। उन तीन दिनों में कोई मार्ग सूझ जाए। उलझाव के बाहर निकलने की कोई दिशा खयाल में आ जाए। वह खयाल में लेकिन अकेली मेरी कोशिश से नहीं आ सकती है। मेरी अकेली कोशिश और आपका सहयोग न हो तो फिर मैं आपके सामने नहीं, दीवालों के सामने बोल रहा हूं। आपके सहयोग से ही आप दीवाल नहीं रह जाते, सचेतन व्यक्ति बन जाते हैं।

एक फकीर हिंदुस्तान से चीन गया था, कोई चौदह सौ वर्ष पहले। बड़ा प्यारा आदमी रहा होगा। अगर वह यहां मेरी जगह होता तो आपकी तरफ मुंह करके न बोलता, वह आपकी तरफ पीठ करके बोलता। वह जब भी किसी से बोलता तो पीठ उसकी तरफ करता था और मुंह दीवाल की तरफ। लोग हैरान थे। चीन का सम्राट उससे मिलने आया और जब उसने पीठ की और दीवाल की तरफ मुंह करके बात करने लगा तो उसने कहा, यह क्या पागलपन है! आप मुझसे बात करते हैं, और दीवाल की तरफ मुंह किए हैं। उस फकीर ने कहा, अब

तक मुझे ऐसा आदमी नहीं मिला, जो दीवाल न हो। कोई सहयोग ही नहीं करता तो उससे बोलने का प्रयोजन भी क्या है! सिर्फ भ्रम होता है कि हम बोल रहे हैं। सुनने वाला मौजूद ही नहीं होता है।

तो तीन दिनों में आप किस भांति सहयोग कर सकेंगे, उस संबंध में कुछ तीन सूत्र आज मुझे आपसे कह देने हैं। उन तीन सूत्रों के आधार पर ही आपका सहयोग, आपका को-आपरेशन मिल सकता है, और मैं जो कहना चाहता हूं--मैं तो उसे कहूंगा ही, लेकिन आपका सहयोग होगा तो आप भी उसे सुन सकेंगे। अन्यथा मेरा कहना तो पूरा हो जाएगा, आपके सुनने की भी शुरुआत नहीं होगी। इतने से ही काफी मत समझ लेना की मैंने बोला, तो आपने सुन लिया। यह बात इतनी आसान नहीं है। आपको सुनने के लिए भी कुछ करना होगा, जैसा कि बोलने के लिए मुझे कुछ करना पड़ता है। आप यहां निष्क्रिय होकर, आप यहां पैसिव होकर अगर तीन दिन बैठे रहे, जैसे आप सिनेमा देखते हैं--वैसे, तो फिर मेरी बात आपको सुनाई नहीं पड़ेगी।

जिन सत्यों की हमें यहां चर्चा करनी है, उन सत्यों को सुनने के लिए आपको एक्टिव-पार्टिसिपेंट, आपको सक्रिय-सहयोगी होना पड़ेगा, अन्यथा वे बातें आप तक नहीं पहुंचेंगी। तो आप कैसे अपना सहयोग दे सकेंगे? मैं तो बोलूंगा, लेकिन आप कैसे सुन सकेंगे? और आप नहीं सुन सके तो कोई अर्थ मेरे श्रम का नहीं होता है। और आप नहीं सुन सके तो शायद आप कहेंगे मैं गया, लेकिन कुछ भी नहीं हो पाया। बहुत कुछ हो सकता है। लेकिन उसमें मुझसे ज्यादा महत्वपूर्ण आप हैं। मैं बहुत महत्वपूर्ण नहीं हूं। आप ही ज्यादा महत्वपूर्ण हैं। और वे तीन छोटे से सूत्र हैं, जिनके अनुकूल इन तीन दिनों अगर आपने थोड़ी तैयारी की तो जिस बात की आप कामना लेकर आए हैं, वह हो सकता है।

उनमें पहला सूत्र है--इन तीन दिनों में इस भांति जीएं, जैसे कि पीछे अब कुछ भी नहीं है और आगे भी कुछ नहीं।

हम तो इस भांति जीते हैं, जैसे इस समय कुछ भी नहीं है--जो कुछ है, पीछे था और जो कुछ है, आगे है। वर्तमान का, प्रजेंट का--जो मौजूद है, हमारी दृष्टि में कोई आकलन ही नहीं होता है। और सच्चाई यह है कि वर्तमान की ही केवल सत्ता है। एक्जिस्टेंस केवल उसका ही है, जो मौजूद है। न तो जो बीत गया उसकी कोई सत्ता है और न उसकी जो आने को है।

लेकिन या तो हम पीछे की तरफ देखते हुए जीते हैं, या आगे की तरफ। या तो अतीत की चिंता हमारे मन में होती है, या भविष्य की कल्पना। लेकिन वर्तमान का कोई बोध नहीं होता है। और वर्तमान का बोध न हो, तो न तो आप जी सकते हैं और न सुन सकते हैं, न समझ सकते हैं--और न सत्य को जानने का द्वार खुल सकता है।

हमारा चित्त निरंतर की आदत के कारण या तो पीछे की स्मृतियों में खोया रहता है, जिनकी अब कोई जगह नहीं रह गई जमीन पर, पृथ्वी पर। सत्ता में जिनके कोई चिह्न नहीं रह गए, सिवाय हमारी मेमोरी, हमारी स्मृति को छोड़कर। और या फिर हम भविष्य की ऊहापोह में,

कल्पना में, आने वाले कल के इरादे और विचारों में खोए रहते हैं। ये दोनों ही तरह के लोग कभी भी सत्य को नहीं जान सकते हैं। क्योंकि सत्य है वर्तमान में--इस क्षण में, अभी और यहां। और हम अभी और यहां कभी भी नहीं होते हैं। हम कहीं पीछे या कहीं आगे होते हैं।

बुद्ध बारह वर्षों के बाद अपने गांव वापस लौटे थे। उनके पिता बुद्ध का स्वागत करने गांव के बाहर गए। लेकिन मन में उनके बहुत क्रोध था। बारह वर्ष पहले यह लड़का घर-द्वार छोड़कर भाग गया था, उसकी पीड़ा थी, दुख था। जाकर उन्होंने बुद्ध से कहा, तू अभी भी वापस लौट आ, मेरे द्वार खुले हैं। बहुत चोट, बहुत दुख तूने मुझे पहुंचाया है, लेकिन आखिर मैं पिता हूं। पिता का प्रेम...मैं अपने दरवाजे बंद नहीं कर सकता, तुझे क्षमा कर दूंगा, तू वापस आ जा।

बुद्ध ने क्या कहा, पता है?

बुद्ध ने कहा: मैं निवेदन करूंगा, कृपा करके आप एक बार मुझे देखें, जो मैं हूं। जो बारह साल पहले आपके घर से गया था, वह अब कहीं भी नहीं है। मैं दूसरा ही होकर लौटा हूं। मैं बिलकुल नया हूं। और आप मुझे देख ही नहीं रहे हैं, क्योंकि आपकी आंखों में बारह वर्ष पहले का चित्र ही मौजूद है। आप उसी से बातें कर रहे हैं, जो बारह साल पहले था। गंगा में बहुत पानी बह गया बारह वर्षों में, मुझमें भी बहुत पानी बह गया बारह वर्षों में, मैं अब बिलकुल दूसरा आदमी होकर लौटा हूं।

लेकिन बुद्ध के पिता की आंखें तो क्रोध से भरी थीं। वे कहने लगे, मैं और तुझे नहीं जानूंगा? मैंने जिसने तुझे पैदा किया और जन्म दिया; मुझे तू शिक्षा देगा, मुझे तू समझाएगा? बुद्ध ने कहा, परमात्मा करे किसी दिन आपके खयाल में आए कि जिसको आपने पैदा किया था, वह अब कहां है। मैं निवेदन करता हूं, एक बार मुझे देखें, जो मैं हूं।

पता नहीं बुद्ध के पिता देख पाए या नहीं। हम भी नहीं देख पाते हैं। हम भी पीछे-पीछे अटके रह जाते हैं। और जिंदगी रोज बदल जाती है। जिंदगी रोज बदल जाती है, प्रतिपल सब कुछ बदल जाता है, और हम पीछे ही उलझे रह जाते हैं। इसलिए जीवन से हमारा संस्पर्श नहीं हो पाता। और या फिर हम आगे के ऊहापोह में और कल्पना में खो जाते हैं।

मैंने सुना है एक आदमी एक ट्रेन में न्यूयार्क की तरफ सफर कर रहा था। एक बीच के स्टेशन पर एक युवक भी सवार हुआ। उस युवक के हाथ के बस्ते को देखकर लगता था वह किसी इंश्योरेंस का एजेंट होगा। उस बूढ़े आदमी के पास वह बैठा। फिर थोड़ी देर बाद उसने पूछा कि क्या महाशय आप बात सकेंगे आपकी घड़ी में कितना बजा हुआ है? वह बूढ़ा थोड़ी देर चुप रहा और उसने कहा क्षमा करें, मैं न बता सकूंगा। उस युवक ने कहा, क्या आपके पास घड़ी नहीं है। उस बूढ़े ने कहा, घड़ी तो जरूर है, लेकिन मैं थोड़ा आगे का भी विचार कर लेता हूं, तभी कुछ करता हूं। अभी तुम पूछोगे कितना बजा है और मैं घड़ी में देखकर बताऊंगा कितना बजा है। हम दोनों के बीच बातचीत शुरू हो जाएगी। फिर तुम पूछोगे, आप कहां जा रहे हैं। मैं कहूंगा, न्यूयार्क जा रहा हूं। तुम कहोगे, मैं भी जा रहा हूं। आप किस

मोहल्ले में रहते हैं। तो मैं अपना मोहल्ला बताऊंगा। संकोचवश मुझे कहना पड़ेगा, अगर कभी वहां आएं, तो मेरे घर भी आना। मेरी जवान लड़की है। तुम घर आओगे, निश्चित ही उसके प्रति आकर्षित हो जाओगे। तुम उससे कहोगे कि चित्र देखने चलती हो। वह जरूर राजी हो जाएगी। और यह मामला यहां तक बढ़ेगा कि एक दिन मुझे विचार करना पड़ेगा कि बीमा एजेंट से अपनी लड़की की शादी करनी है या नहीं करनी है। और मुझे बीमा एजेंट बिलकुल भी पसंद नहीं आते। इसलिए कृपा करो, मुझसे तुम घड़ी का समय मत पूछो।

इस आदमी पर जरूर हमें हंसी आ सकती है। लेकिन हम सब इसी तरह के आदमी हैं। हमारा चित्त प्रतिपल वर्तमान से छिटक जाता है और, और भविष्य में उतर जाता है। और भविष्य के संबंध में आप कुछ भी सोचें, सभी ऐसा ही फिजूल और व्यर्थ है। क्योंकि भविष्य है नहीं। जो भी आप सोचेंगे, सभी कल्पना, सभी इमेजिनेशन है। जो भी आप सोचेंगे, वह इसी तरह का झूठा और व्यर्थ है। जैसे इस आदमी का, इस छोटी सी बात से कि घड़ी में कितना बजा है, इतनी लंबी यात्रा पर कूद जाना। इसका चित्त हम सबका चित्त है।

हम सब प्रतिपल खड़े होते नहीं वर्तमान पर और भविष्य में कूद जाते हैं, या, या अतीत में कूद जाते हैं। लेकिन जो क्षण मौजूद होता है, उसमें हम मौजूद नहीं हो पाते। और उसकी ही सत्ता है, वही वास्तविक है। अतीत और भविष्य इन दोनों के बंधनों में मनुष्य की चेतना वर्तमान से अपरिचित रह जाती है। अतीत और भविष्य दोनों मनुष्य की ईजादें हैं। जगत की सत्ता में उनका कोई भी स्थान नहीं, उनका कोई भी अस्तित्व नहीं।

भविष्य और अतीत, पास्ट और फ्यूचर--कल्पित समय हैं, स्यूडो टाइम हैं, वास्तविक समय नहीं। वास्तविक समय, रियल टाइम तो केवल वर्तमान का क्षण है। वर्तमान के इस क्षण में जो जीता है, वह सत्य तक पहुंच सकता है, क्योंकि वर्तमान का क्षण ही द्वार है। लेकिन जो अतीत और भविष्य में भटकता है, वह सपने देख सकता है, स्मृतियों में खो सकता है। लेकिन सत्य, सत्य से उसका साक्षात कभी भी संभव नहीं है।

इन तीन दिनों में ऐसे जीएं कि जो क्षण आपके पास है, बस वही है। दूसरा क्षण मनुष्य के हाथ में होता भी नहीं। एक ही क्षण होता है, दो क्षण नहीं होते। और उस एक क्षण को हम गंवा दें--बीते हुए क्षणों के लिए या आने वाले क्षणों के लिए, तो बड़ी भूल हो जाती है। एक छोटा सा क्षण मिलता है मनुष्य को, उससे ज्यादा नहीं। उस छोटे से क्षण को जीने की कला ही धर्म में प्रवेश की कला है, वही है आर्ट।

आज रात से ऐसा जीएं कि जो क्षण है, वही है। जो काम आप कर रहे हैं, वही कर रहे हैं। यहां सुन रहे हैं तो सिर्फ सुन रहे हैं। इस सुनने में फिर और कुछ भी नहीं।

मैं बोल रहा हूं--उस वक्त अगर आप सोचने लगें, यही गीता में भी लिखा है, तो आप पीछे चले गए। कभी आपने पढ़ा होगा, उससे आप मेल-जोल बिठालने लगे--मैं जो कहता था, उसका आपसे संबंध टूट गया। अगर मैं कुछ कह रहा हूं--और आप सोचने लगे कि अगर मैं ऐसा करूं या सोचूं, तो कहीं ऐसा तो न हो कि मुझे घर-द्वार छोड़ देना पड़े--आप भविष्य में चले गए। आप समय बताने की जगह लड़की के विवाह का चिंतन करने लगे। क्या होगा मेरी

बात से अगर यह सोचने लगे तो आप आगे चले गए। या पुरानी बातों से मेल करने लगे तो पीछे चले गए। और वंचित हो गए उस बात को सुनने से, जो मैं आपसे कहता था।

जो मैं आपसे कह रहा हूं अगर उसे ही सुनना है तो उस सुनने के क्षण में फिर और कहीं आप नहीं होना चाहिए। लेकिन यह केवल सुनने के लिए नहीं हो सकता। यह तो तभी हो सकता है, जब हम चौबीस घंटे ऐसा जीएं--जब आप पानी पी रहे हों तो सिर्फ पानी पीएं, और भोजन करते हों तो सिर्फ भोजन, और रास्ते पर चलते हों तो सिर्फ रास्ते पर चलें। और उस क्षण को ही समझ लें--कि इसके आगे कुछ नहीं और पीछे कुछ नहीं--यही है और इसी में मुझे पूरी तरह मौजूद होना है।

यह तो पहला ध्यान रखने का है, इन तीन दिनों में। कठिन नहीं है, खयाल में आ जाएगा तो बहुत सरल है। कठिन तो वह है जो आप कर रहे हैं। जो मैं कह रहा हूं वह तो बहुत सरल है। लेकिन अपने पैर पर जूता चढ़ाने जैसी सरल बात भी मुश्किल से खयाल में आती है। कठिन वह है जो आप कर रहे हैं। जिस ढंग से आप जी रहे हैं वह जीना एकदम कठिन है। आश्चर्य है कि हम जीए चले जा रहे हैं। जो मैं कह रहा हूं वह बहुत सरल है।

यहां से लौटते वक्त उसका प्रयोग करते लौटें। और कम से कम तीन दिन तो कोशिश करें। हो सकता है, तीन दिन में उसकी सच्चाई दिखाई पड़ जाए। और फिर जिसकी सच्चाई हमें दिखाई पड़ जाती है, उससे इस जीवन में अलग होना कठिन है। तीन दिन के लिए हिम्मत करें--पीछे को छोड़ दें।

छूट गया है अतीत आपसे--आप व्यर्थ ही उसे पकड़े हैं। कहां है वह? कल का दिन अब कहां है? बीता क्षण अब कहां है? जो गया, वह जा चुका। जो अभी नहीं आया, वह नहीं आया। जो है, बस वही है।

तीन दिन देखें। एक-एक पल जीकर देखें। आगे-पीछे नहीं--मौजूद में, प्रजेंट में, वर्तमान में। सुबह उठें--तो ऐसे ही बस यही है--दोपहर यही है, सांझ यही है। जो क्षण सामने आए उसको इस तरह लें, जैसे इसके आगे-पीछे और कुछ भी नहीं है। बहुत हैरान हो जाएंगे। इस खयाल से जीने की गति और ही हो जाती है। एक बहुत अदभुत शांति, क्षण में जीने से शुरू होती है।

आदमी कभी शांत नहीं है।

सुनते हैं, एक बार सिर्फ सारी मनुष्य जाति शांत हो गई थी, एक क्षण को। कोई बहुत होशियार आदमी ने तरकीब निकाली थी, तब कहीं यह हो पाया था। लेकिन यह बहुत पुरानी घटना है, आपमें से किसी को भी याद नहीं होगी। किसी किताब में नहीं लिखी गई, क्योंकि किताबें बहुत बाद में लिखी गईं। यह उसके पहले की घटना है। और शायद आपने सुनी भी न होगी, क्योंकि बहुत ही मुश्किल से किसी को यह पता है।

एक बार एक समझदार आदमी ने, एक तरकीब निकाली थी कि सारी मनुष्य जाति को शांत रहने का अनुभव करा दे। उसने यह अफवाह उड़ाई, सारी दुनिया में कि चांद पर भी लोग रहते हैं। अगर हम सारे लोग बहुत ताकत से चिल्लाएं तो शायद वे सुन लें। तो सारी पृथ्वी

पर एक खास नियत दिन, खास समय पर सारे लोग जोर से "हो, हो, हो...' की आवाज करके चिल्लाएंगे। यह अफवाह उड़ा दी।

सारी दुनिया में बड़ी उत्सुकता से उस दिन की प्रतीक्षा की गई। वह क्षण आ गया, वह घड़ी आ गई, वह पल करीब आने लगा। सारी दुनिया के लोग, बच्चों से बूढ़ों तक तैयार थे, क्योंकि सारे लोग चिल्लाएंगे तो ही शायद चांद तक रहने वाले लोगों तक आवाज पहुंच सके। और उनसे संबंध पैदा करना था।

ठीक क्षण भी आ गया, लेकिन कोई भी नहीं चिल्लाया। क्योंकि हर एक सोचता था कि मैं चुप रह जाऊं तो इतनी बड़ी आवाज सुनने का मौका फिर दोबारा आने वाला नहीं है। सब चिल्लाएंगे--कितनी अदभुत आवाज होगी मैं सुन लूं। और एक के न चिल्लाने से क्या फर्क पड़ेगा। दुनिया में कोई भी नहीं चिल्लाया। और वह एक क्षण टोटल साइलेंस का क्षण था, क्योंकि सभी प्रतीक्षा कर रहे थे। कोई भी पीछे के खयाल में नहीं था, आगे के खयाल में नहीं था। इसी वक्त एक घटना घट रही थी कि सारी दुनिया में सारे लोग चिल्लाएंगे "हो, हो, हो...'--और इस आवाज को हम सुन लें।

उस क्षण--उस अदभुत होशियार आदमी ने बड़ी तरकीब का काम किया था। फिर बहुत समय से ऐसा कोई काम नहीं हुआ। और आदमी की जिंदगी में कोई शांति का क्षण नहीं। उस वक्त सारे लोग हैरान रह गए थे। उस पल के बीत जाने पर लोगों को पता चला था, कितनी गहरी शांति संभव है। क्योंकि उस क्षण कोई पास्ट नहीं था, कोई फ्यूचर नहीं था। एक उसी पल में घटना घटने वाली थी। जरा चूक गए तो चूक गए। तो सारे लोग सचेत, और प्रत्येक आदमी ने सोचा था मैं सुन लूं। सुना सबने--आवाज नहीं सुनी, शांति सुनी। आवाज तो हुई ही नहीं। लेकिन साइलेंस सुनी।

देखें कल से, एक-एक पल में थोड़ा खड़े होकर। हो सकता है वह शांति आप भी सुन सकें। और वह सुन लें तो आपकी जिंदगी दूसरी हो जाती है।

तो अगर आप नहीं मानेंगे इस तरह तो हो सकता है मैं भी किसी दिन अफवाह उड़ाऊं और फिर इस तरह की कोशिश करूं। लेकिन बड़ा कठिन है, आजकल आदमी बहुत समझदार हो गया है। पुराने दिन की बात है, लोग राजी हो गए होंगे चिल्लाने को। अब तो शायद ही कोई चिल्लाने को राजी भी हो। और राजी भी हो जाए तो भी शायद शोरगुल सुनने के लिए कोई न रुके, क्योंकि वैसे ही बहुत शोरगुल हो रहा है। और अब उस शोरगुल से भी कोई फर्क न पड़ेगा।

यह तो पहला सूत्र है: पल-पल, मूमेंट टु मूमेंट जीने का।

दूसरा सूत्र। हम निरंतर एक अजीब बीमारी से ग्रसित हैं, और वह बीमारी है अत्याधिक व्यस्त होने की, आक्युपाइड होने की। हर आदमी ऐसा लग रहा है, जैसे बहुत भारी काम में उलझा हुआ है। शायद काम कुछ भी नहीं है, लेकिन आदत अत्याधिक काम में उलझे होने की हमने खड़ी कर ली है। हर आदमी भाग रहा है, दौड़ रहा है और इस भांति संलग्न है, जैसे सारे जगत का भार उसके ऊपर है। इतना व्यस्त मालूम हो रहा है। और यह व्यस्तता,

यह जो आक्युपाइड माइंड है--यह दिन-रात व्यस्त होना इसके कारण चित्त निरंतर क्षीण होता चला जाता है। विश्राम का कोई भी क्षण न होने से चित्त दुर्बल हो जाता है। और दुर्बल चित्त सत्य को नहीं जान सकता है। सत्य को जानने के लिए शक्ति से परिपूर्ण, बहता हुआ, भरा हुआ चित्त चाहिए। और ऐसा चित्त तभी हो सकता है, जब आप अव्यस्त होने की थोड़ी सामर्थ्य पैदा कर लें।

इन तीन दिनों में इस दूसरे सूत्र पर थोड़ा काम करना है। इन तीन दिनों यहां इस भांति जीएं जैसे आप कोई काम नहीं कर रहे हैं, विश्राम कर रहे हैं।

कभी आपने देखा आकाश में सांझ को, चीलें आकाश से उतरती हैं, तब उनको देखा। वे परों को फैलाकर अत्यंत विश्राम में हवा पर डोलती हुई धीरे-धीरे उतरती आती हैं। कभी खयाल किया? कभी चीलों के पर देखे तुले हुए--न तो पंख हिल रहे हैं, न वे हवाओं में तैरने की कोशिश कर रही हैं, उन्होंने सिर्फ पंख छोड़ दिए हैं और हवाओं पर सवार हो गई हैं, हवाएं उन्हें धीर-धीरे नीचे उतारती ला रही हैं।

सारी प्रकृति इसी भांति विश्राम में जी रही है, सिर्फ मनुष्य को छोड़कर। मनुष्य अति तनाव में है। और उसे खयाल भी नहीं है कि इतना तना हुआ होना, इतना व्यस्त, इतना उलझा हुआ होना ही उसे वंचित कर रहा है किसी सत्य को, किसी आनंद को जानने से।

तो इन तीन दिनों में अत्यंत शांत और अव्यस्त--जैसे आप कोई काम नहीं कर रहे हैं, विश्राम कर रहे हैं। इन तीन दिनों को सब भांति आध्यात्मिक छुट्टी के दिन बना लें, स्प्रीचुअल हाली-डे समझ लें। साधारणतः छुट्टी हम मनाते हैं, वह भी शरीर की छुट्टी होती है, मन की छुट्टी नहीं होती। इन तीन दिनों में मन को भी छुट्टी दे दें। इस भांति जीएं, जैसे कोई भी काम नहीं है। और यहां क्या काम है? आप बिलकुल बिना काम हैं यहां। और इन ती दिनों को बिलकुल ही ऐसे गुजार देना है, जैसे कोई सो कर, विश्राम करके गुजार देता है।

तो इन दिनों में आप पाएंगे आपका मन एक नई ताजगी, ऊर्जा और शक्ति से भर गया। और यह शक्ति बहुत जरूरी है। इस शक्ति के बिना कोई रास्ता नहीं है कि आप तय कर सकें। लेकिन अव्यस्त होना जरूरी है। कोई आक्युपाइड चित्त की दशा न हो।

लेकिन हम तो...एक आदमी को मैं देखता था रोज सांझ वे घूमने जाते थे। लेकिन घूमने भी वे ऐसे जाते थे, इतनी तेजी से कि जैसे किसी युद्ध पर जा रहे हों। तो मैंने उन्हें टोका और मैंने कहा कि आप किसी लड़ाई पर जाते हैं रोज? उन्होंने कहा, लड़ाई पर! मैं तो घूमने जाता हूं। तो मैंने कहा, लेकिन जाते आप ऐसे हैं, इतने तने हुए, इतने खिंचे हुए, इतने परेशान, इतने भागे हुए, जैसे कहीं पहुंचना हो। कहां पहुंचने के लिए जाते हैं? उन्होंने कहा, पहुंचने! मैं सिर्फ घूमने जाता हूं। लेकिन मैंने कहा, आपका मन घूमने की दशा में नहीं होता। घूमने जाने का मतलब है ऐसे जाना, जैसे कहीं पहुंचना नहीं है। कोई हम यात्रा थोड़े ही कर रहे हैं। यात्रा जब कोई करता है तो तना हुआ, खिंचा हुआ--उसे कहीं पहुंचना है।

आपको कहीं पहुंचना नहीं है। और अगर आप सम-वेअर, कहीं पहुंचने की कोशिश करेंगे तो एक बात तय समझ लेना, वहां नहीं पहुंच सकेंगे जहां आप हैं। और जिस दिन आप इस तरह जीएंगे, नो-वेअर, कहीं भी नहीं पहुंचना है, उस दिन आप वहां पहुंच जाएंगे, जहां आप हैं। जहां मैं बैठा हूं, वहां पहुंचने के लिए मुझे सब पहुंचने की जो दौड़ है चित्त से, वह छोड़ देनी होगी।

तो इन दिनों में ऐसी कोशिश न करें कि आप ध्यान सीख रहे हैं। आप ऐसी कोशिश न करें कि सत्य को खोज रहे हैं। ऐसी कोशिश न करें कि परमात्मा के दर्शन करने हैं। अगर यह कोशिश आपके भीतर रही तो आप शांत ही नहीं हो सकेंगे, दर्शन तो बहुत दूर है। आप शांत ही नहीं हो सकेंगे, सत्य तो बहुत दूर है। आप शांत ही नहीं हो सकेंगे, परमात्मा की यात्रा फिर नहीं हो सकती।

परमात्मा की यात्रा बड़ी अजीब है। परमात्मा की यात्रा वही करता है--वही कर सकता है, जो सब यात्रा छोड़ देता है। इतना शांत हो जाता है कि उसे कहीं भी नहीं पहुंचना है।

एक फकीर था। एक पहाड़ी के किनारे चुपचाप बैठा रहता, सोया रहता। एक युवक सत्य की, ईश्वर की खोज में पहाड़ पर गया था। उसने उस फकीर से पूछा कि आप चुपचाप यहां क्यों बैठे हैं? ईश्वर को नहीं खोजना है? उस फकीर ने कहा, जब तक खोजता था, तब तक नहीं मिला। फिर मैं ऊब गया और मैंने वह खोज छोड़ दी और जिस दिन मैंने सब खोज छोड़ दी, मैं हैरान हो गया। मैं तो उसमें मौजूद ही था। खोज रहा था, इसलिए दिखाई नहीं पड़ रहा था।

कई बार खोजने का तनाव ही खोजने में बाधा बन जाता है। कई बार हम जिस चीज को खोजते हैं, खोजने के कारण ही उसको नहीं उपलब्ध हो पाते हैं।

कभी खयाल किया आपने--किसी आदमी का नाम खो गया है आपके मन में और आप खोजने को लगे हुए हैं। खोजते हैं और परेशान हो जाते हैं, सिर ठोंक लेते हैं कि बिलकुल जबान तक आता है, लेकिन आता नहीं। पता नहीं चलता, कहां गया, कैसे खो गया! मालूम है मुझे! यह भी मालूम है कि मुझे मालूम है। भीतर आता है, पर न मालूम कहां अटक जाता है। फिर आप खोज छोड़ देते हैं। फिर आप अपनी बगिया में गड्ढा खोद रहे हैं, या अपने कुत्ते के साथ खेल रहे हैं, या अपने बच्चे से गपशप कर रहे हैं और एकदम आप हैरान हो जाते हैं, वह नाम मौजूद हो गया, वह आ गया है। और तब आप समझ भी नहीं पाते कि यह कैसे आ गया।

आप खोजते थे--खोजने के तनाव की वजह से मन अशांत हो गया। अशांत होने की वजह से उसे रास्ता नहीं मिलता था आने का। वह अटका रह गया पीछे। आप शांत हो जाओ तो वह आ जाए। आप अशांत हो तो वह आए कहां से, द्वार कहां मिले, रास्ता कहां मिले?

भीतर परमात्मा निरंतर आप तक आने की कोशिश कर रहा है। लेकिन आप? आप इतने व्यस्त हैं कि आपकी इस व्यस्तता में बाधा देने जैसी अशिष्टता परमात्मा न करेगा। वह आपको परेशान नहीं करेगा। जब आप शांत हो जाएं तो वह आ जाएगा। वह उन मेहमानों में

से नहीं है कि आप कुछ भी कर रहे हों और वह आ जाए। जब देखेगा कि आप तैयार हैं, तो वह तो हमेशा मौजूद है। भीतर कोई हमारे रास्ता खोज रहा है। लेकिन हम इतने, सतह पर इतने व्यस्त हैं, इतनी लहरों से भरे हैं कि उसे रास्ता नहीं मिलता है। कृपा करें रास्ता दें।

आपको परमात्मा को नहीं खोजना है--परमात्मा आपको ही खोज रहा है। आप इतनी ही कृपा करें कि रास्ता दे दें। आप बीच में न खड़े हों अपने और परमात्मा के, तो सारी बात हल हो जाती है।

लेकिन शायद हमें इसका खयाल नहीं है। इन तीन दिनों में इस खयाल पर थोड़ा सा ध्यान ले जाएं। तीन दिन इस तरह जीएं कि आपको कोई भी काम नहीं है। और आश्रमों में, और संतों, साधुओं और महात्माओं के पास आप जाते होंगे, उस भांति मेरे पास न आएं। वे आपको काम सिखाते हैं। वे सिखाते हैं--प्रार्थना करो, पूजा करो, नाम जपो, गीता पढ़ो, यह करो, वह करो। बहुत जोर से करो। जितना ज्यादा करोगे--एक हजार दफे नाम जपोगे तो, एक लाख दफे जपोगे तो और फायदा है; एक करोड़ दफे जपोगे तो और फायदा है। एक दफा गीता पढ़ोगे तो कम, हजार दफे पढ़ोगे तो और ज्यादा। एक उपवास करोगे तो कम, हजार कर लोगे तो बहुत ज्यादा। वे आपको कोई काम सिखाते हैं। वे आपको किसी काम में लगाते हैं।

मैं आपको कोई काम सिखाने को यहां नहीं हूं। मैं तो चाहता हूं कि आप थोड़ी देर को बेकाम हो जाएं। आपके मन में, तन में कोई काम न रह जाए, तो शायद उस काम से रहित चित्त की अन-आक्युपाइड स्थिति में, अव्यस्त स्थिति में कुछ फलित हो जाए, कुछ घटित हो जाए।

तो दूसरा सूत्र इन तीन दिनों के लिए--व्यस्तता न दिखाएं यहां। कोई फिक्र नहीं अगर मेरी एक चर्चा में न आ पाएं, तो कोई हर्जा नहीं हुआ जाने वाला। कोई फिक्र नहीं, अगर ध्यान को वक्त पर न पहुंच पाएं, कोई हर्जा नहीं हुआ जाने वाला। लेकिन इतनी शांति से जीएं इन तीन दिनों में कि आप कोई काम में नहीं लगे हैं--मौज में, एक आनंद में यहां हैं। यहां कोई साधना करने आए हैं--तो साधना की हमारी धारणा ही कुछ अजीब है। उसमें तो जो जितना बड़ा साधक है, उतना ही तनकर और चुस्त बैठा रहता है। उतना ही तनाव से भरा रहता है। ऐसी साधना यहां नहीं है। मैं तो साधना ही इसको कहता हूं कि आप सब तरह से उपराम को, विश्रांति को--एकदम चित्त के तल पर सब तरह के काम से छुटकारा पा जाएं।

तीन दिन इस तरह का, इस तरफ ध्यान देने का आपसे निवेदन है। और जैसे ही आप थोड़े से विश्राम में रहना जान पाएंगे, आप हैरान हो जाएंगे। यहां इतने दरख्त हैं, इतने पक्षी बोलते हैं, चुपचाप उनके पास दरख्तों के पास जाकर बैठ जाएं, लेट जाएं--कुछ न करें। तीन दिनों में ज्यादा समय कुछ न करें। और देखें कि उस न-करने से कुछ हो सकता है क्या? अब तक जिन्होंने भी जीवन की गइराइयां जानी हैं, वे वे ही लोग हैं, जिन्होंने किन्हीं न-करने के क्षणों में परमात्मा से संबंध जोड़ लिया है।

लाओत्से कहा करता था, कुछ करना हो तो संसार की तरफ जाओ; कुछ न करना हो तो परमात्मा की तरफ।

मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप अपनी दुकानें बंद कर देंगे, नौकरियां छोड़ देंगे, अपने काम-धंधे बंद कर देंगे, वह मैं नहीं कह रहा हूं। मैं तो सिर्फ इतना निवेदन कर रहा हूं, इन तीन दिनों में आप इस एटीटयूड में, इस दृष्टि में जीने का थोड़ा प्रयोग करें। फिर आप पाएंगे कि बिलकुल चित्त के तल पर बिना काम रहकर भी, बाहर के तल पर काम किया जा सकता है। और तब काम योग बन जाता है। भीतर अकर्म हो, भीतर चित्त पर कोई भी कर्म की भाग-दौड़ न हो, और बाहर जीवन पूरा सक्रिय हो तो जीवन योग हो जाता है। और अकर्म हो भीतर तो कर्म बाहर अपने आप कुशल हो जाता है। दूसरा सूत्र।

और तीसरा सूत्र, अंतिम और वह है: सचेत होकर तीन दिन जीने की।

सचेत होकर कभी किसी बिल्ली को चूहा पकड़ते देखा होगा। शायद खयाल न किया हो, क्योंकि अगर हम जीवन के चारों तरफ खयाल कर लें तो छोटी-छोटी बातों में जीवन के सारे संदेश मौजूद हैं। लेकिन बिल्ली को कौन गुरु बनाना चाहेगा? न तो बिल्ली भगवा वस्त्र पहनती है, न टीका लगाती है, न त्याग करती है। न बिल्ली कोई तीर्थंकर है, न कोई अवतार है।

बिल्ली से कौन सीखने जाएगा?

लेकिन कभी बिल्ली को देखें--चूहे को पकड़ने के लिए कितनी तत्परता से बैठी है, कितनी सचेत। एक पत्ता हिल जाएगा, तो बिल्ली अपने पूरे प्राण-पण से कूदने को मौजूद है। एक चूहे की जरा सी खड़खड़ाहट होगी, किसी चूहे के बिल में थोड़ी सी आवाज होगी, किसी को पता नहीं चलेगा, लेकिन बिल्ली--बिल्ली सचेत है और जागी हुई है।

बिल्ली की भांति सचेत होने का जो आदमी अपने चित्त की तैयारी कर लेता है, उस आदमी से सत्य बचकर नहीं निकल सकता। बिल्ली से चूहा बचकर निकल भी जाए, लेकिन सचेत मनुष्य से सत्य बचकर नहीं निकल सकता। इतनी सचेतना चाहिए।

लेकिन हम तो सोए-सोए जीते हैं। रास्ते पर निकल जाते हैं--न तो हमें वृक्ष दिखाई पड़ते हैं, न उन पर बैठे हुए पक्षी हमें सुनाई पड़ते हैं, न आकाश में उगा हुआ चांद हमें दिखाई पड़ता है। हमें कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। हम तो जैसे सोए हुए चले जा रहे हैं। कई बार अनुभव हुआ होगा--किसी किताब का एक पन्ना पढ़ते हैं, बाद में पता चलता है कि मुझे तो जैसे, मैंने कुछ भी नहीं पढ़ा, कुछ खयाल नहीं आता। लेकिन आप पढ़ तो गए, सोए-सोए पढ़ गए होंगे।

कभी खयाल आता है, कोई आदमी कोई बात करता है और चूक जाती है--बाद में हमें खयाल आता है, सुनी तो थी! लेकिन कुछ खयाल नहीं पड़ता, सोए-सोए सुनी होगी। केवल चौबीस घंटे में मुश्किल से कोई क्षण होता होगा, जब हम जागकर जिंदगी को थोड़ा-बहुत अनुभव करते हों, अन्यथा हम सोए-सोए चलते हैं।

एक शिक्षक था, युवकों को दरख्तों पर चढ़ना सिखाता था। एक युवक को सिखा रहा था। एक राजकुमार सीखने आया हुआ था। राजकुमार चढ़ गया था ऊपर की चोटी तक, वृक्ष की ऊपर की शाखाओं तक। फिर उतर रहा था, वह बूढ़ा चुपचाप दरख्त के नीचे बैठा हुआ देख रहा था। कोई दस फीट नीचे से रह गया होगा युवक, तब वह बूढ़ा खड़ा हुआ और चिल्लाया, सावधान! बेटे सावधान होकर उतरना, होश से उतरना!

वह युवक बहुत हैरान हुआ। उसने सोचा, या तो यह बूढ़ा पागल है। जब मैं सौ फीट ऊपर था और जहां से गिरता तो जीवन के बचने की संभावना न थी--जब मैं बिलकुल ऊपर की चोटी पर था, तब तो यह कुछ भी नहीं बोला, चुपचाप आंख बंद किए, वृक्ष के नीचे बैठा रहा! और अब! अब जबकि मैं नीचे ही पहुंच गया हूं, अब कोई खतरा नहीं है तो पागल चिल्ला रहा है, सावधान! सावधान!

नीचे उतरकर उसने कहा कि मैं हैरान हूं! जब मैं ऊपर था, तब तो आपने कुछ भी नहीं कहा--जब डेंजर था, खतरा था? और जब मैं नीचे आ गया, जहां कोई खतरा न था...उस बूढ़े ने कहा, मेरे जीवनभर का अनुभव यह है कि जहां कोई खतरा नहीं होता, वहीं आदमी सो जाता है। और सोते ही खतरा शुरू हो जाता है। ऊपर कोई खतरा न था--क्योंकि खतरा था और उसकी वजह से तुम जागे हुए थे, सचेत थे, तुम गिर नहीं सकते थे। मैंने आज तक ऊपर की चोटी से किसी को गिरते नहीं देखा--कितने लोगों को मैं सिखा चुका। जब भी कोई गिरता है तो दस-पंद्रह फीट नीचे उतरने में या चढ़ने में गिरता है, क्योंकि वहां वह निश्चिंत हो जाता है। निश्चिंत होते ही सो जाता है। सोते ही खतरा मौजूद हो जाता है। जहां खतरा मौजूद है, वहां खतरा मौजूद नहीं होता, क्योंकि वह सचेत होता है। जहां खतरा नहीं है, वहां खतरा मौजूद हो जाता है, क्योंकि वह सो जाता है।

मनुष्य सभी पक्षियों से ज्यादा सो गया है। क्योंकि जीवन में उसने सभी पक्षियों-पशुओं से ज्यादा सिक्योरिटी, सुविधा जुटा ली है। कोई पशु-पक्षी इतना सोया हुआ नहीं, जितना आदमी। देखें, किसी कौए को आपके घर के पास बैठा हुआ। जरा आप आंख भी हिलाएं और कौआ अपने पर फैला देगा। आंख हिलाएं! आप जरा हाथ हिलाएं और कौआ तैयार है, सचेत है। जानवरों को भागते हुए देखें, दौड़ते हुए देखें, उनको खड़े हुए देखें--वे सचेत हैं।

आदमी ने एक तरह की सिक्योरिटी, एक तरह की सुरक्षा अपने चारों तरफ खड़ी कर ली है। और उस सुरक्षा की वजह से वह आराम से सो गया है। और सचाई यह है कि सब सिक्योरिटी झूठी है। क्योंकि मौत इतनी बड़ी असलियत है कि हमारी सब सुरक्षा झूठी ही सिद्ध होती है। कोई सुरक्षा हमारी सच्ची नहीं है। लेकिन एक फाल्स, एक मिथ्या खयाल हमने पैदा कर लिया है कि हम सुरक्षित हैं। सुरक्षित कोई भी मनुष्य नहीं है। जीवन असुरक्षा है, इनसिक्योरिटी है।

कौन सी चीज सुरक्षित है?

आपकी पत्नी सुरक्षित है--कि आप सोचते हैं, कल भी वह आपको प्रेम देगी? आपके बच्चे सुरक्षित हैं--कि आप सोचते हैं, वे बड़े होने पर आपको आदर देंगे? आपके मित्र सुरक्षित हैं-

-कि वे कल शत्रु नहीं हो जाएंगे? आप खुद किन अर्थों में सुरक्षित हैं? आपकी मौत आपकी सब सुरक्षा को दो कौड़ी का सिद्ध कर देने को है।

एक आदमी ने एक महल बनवाया था। उसमें एक ही दरवाजा रखा था कि कोई शत्रु घर के भीतर न घुस सके। दरवाजे पर सख्त पहरा रखा था। फिर पड़ोस का राजा उसके महल को देखने आया। उसने कहा, और सब ठीक है, एकदम अच्छा है, मैं भी ऐसा ही महल बनाना चाहूंगा। लेकिन एक गलती है तुम्हारे महल में। इसमें एक दरवाजा है, यह खतरा है। दरवाजे से मौत भीतर आ सकती है। तुम कृपा करो, यह दरवाजा और बंद कर लो। फिर तुम पूर्ण सुरक्षित हो जाओगे। फिर न कोई भीतर आ सकता है, न कोई बाहर जा सकता है।

उस राजा ने कहा, खयाल तो मुझे भी यह आया था, लेकिन अगर दरवाजा भी मैं बंद कर लूंगा तो फिर सुरक्षा की जरूरत भी किसे रह जाएगी। मैं तो मर ही जाऊंगा। जी रहा हूं, क्योंकि दरवाजा खुला है। तो उस दूसरे राजा ने कहा, इसका मतलब यह हुआ कि दरवाजा अगर बिलकुल बंद हो जाए तो तुम मर जाओगे। एक दरवाजा खुला है तो तुम थोड़े जी रहे हो। दो दरवाजे खुलेंगे, तुम थोड़ा और ज्यादा जीओगे। अगर सब दरवाजे खुले रहेंगे तो तुम पूरी तरह से जीओगे।

लेकिन सब दरवाजे खोलने में हम डरते हैं, और इसलिए जी नहीं पाते। सब दरवाजे बंद कर लेते हैं जिंदगी के, फिर भीतर सिक्योरिटी में, सुरक्षा में निश्चिंत होकर सो जाते हैं। उसी सोने को हम जिंदगी समझ लेते हैं।

इन तीन दिनों में इस तरह जीएं, जैसे कि जीवन में कोई सुरक्षा नहीं है। हो सकता है आप आए हैं माथेरान, वापस न लौट सकें। कोई जरूरी नहीं है आपका वापस लौट जाना। कौन सा जरूरी है? इस बात को मान लेने का क्या कारण है कि आप चार सौ आए हैं, चार सौ ही वापस लौट जाएंगे। हो सकता है कोई वापस न लौट पाए। एक दिन तो ऐसा होगा ही कि आप कहीं जाएंगे और वहां से वापस न लौट सकेंगे। प्रति घड़ी कोई एक लाख आदमी अपना जीवन खो देते हैं, कहीं न कहीं पृथ्वी पर। आप भी किसी क्षण खो देंगे। वह क्षण यही क्षण हो सकता है, आने वाला क्षण हो सकता है।

सुरक्षा कहीं भी नहीं है। और सुरक्षा के कारण आप व्यर्थ जो सो रहे हैं, वह सारे जीवन को, जीवन के आनंद-उत्फुल्लता से, ज्ञान से वंचित कर रहा है।

तो इन दिनों ऐसे जीएं, जैसे आप जागे हुए हैं प्रतिपल, होश से भरे हुए हैं। एक-एक घटना, एक-एक पत्थर, एक-एक पत्ता, एक-एक पत्ते पर चमकती सूरज की रोशनी, चांद की रोशनी बदलियों पर--सब आपको दिखाई पड़ रहा है, आप जागे हुए हैं। सब चीजों के प्रति आप सचेत हैं। जीवन एक खतरा है और आप चेतना से भरे हुए हैं। उठते-बैठते सब तरह से जागे हुए हैं।

जागे हुए होने का अर्थ एक छोटी कहानी से समझाऊं, फिर मैं अपनी चर्चा पूरी करूं।

एक बहुत अदभुत आदमी था। वह चोरों का गुरु था। सच तो यह है कि चोरों के अतिरिक्त और किसी का कोई गुरु होता ही नहीं। चोरी सीखने के लिए गुरु की बड़ी जरूरत है। तो

जहां-जहां चोरी, वहां-वहां गुरु। जहां-जहां गुरु, वहां-वहां चोरी। तो वह चोरों का गुरु था, मास्टर थीफ था। उस जैसा कुशल कोई चोर नहीं था। कुशलता थी। वह तो एक टेकनिक था, एक शिल्प था। जब बूढ़ा हो गया तो उसके लड़के ने कहा कि मुझे भी सिखा दें। उसके गुरु ने कहा, यह बड़ी कठिन बात है।

पिता ने चोरी करनी बंद कर दी थी। उसने कहा, यह बहुत कठिन बात है। फिर मैंने चोरी करनी बंद कर दी, क्योंकि चोरी में कुछ ऐसी घटनाएं घटीं कि जिनके कारण मैं ही बदल गया। उसके लड़के ने पूछा, कौन सी घटनाएं? उसने कहा, कुछ ऐसे खतरे आए कि उन खतरों में मैं इतना जाग गया--जागने की वजह से चोरी मुश्किल हो गई। और जागने की वजह से उस संपत्ति का खयाल आया है, जो सोने के कारण दिखाई नहीं पड़ती थी। अब मैं एक दूसरी ही चोरी में लग गया हूं। अब मैं परमात्मा की चोरी कर रहा हूं। पहले आदमियों की चोरी करता रहा।

लेकिन मैं तुम्हें कोशिश करूंगा, शायद तुम्हें भी यह हो जाए। चाहता तो यही हूं कि तुम आदमियों के चोर मत बनो, परमात्मा के ही चोर बनो। लेकिन शुरुआत आदमियों की चोरी से कर देने में भी कोई हर्जा नहीं है।

ऐसे हर आदमी ही, आदमी की ही चोरी से शुरुआत करता है। हर आदमी के हाथ दूसरे आदमी की जेब में पड़े होते हैं। जमीन पर दो ही तरह के चोर हैं--आदमियों से चुराने वाले और परमात्मा से चुरा लेने वाले। परमात्मा से चुरा लेने वाले तो बहुत कम हैं--जिनके हाथ परमात्मा की जेब में चले जाएं। लेकिन आदमियों के तो हाथ में सारे लोग एक-दूसरे की जेब में डाले ही रहते हैं। और खुद के दोनों हाथ दूसरे की जेब में डाल देते हैं, तो दूसरों के तो उनकी जेब में हाथ डालने की सुविधा हो जाती है। स्वाभाविक है, क्योंकि अपनी जेब की रक्षा करें तो दूसरे की जेब से निकाल नहीं सकते। दूसरे की जेब से निकालें तो अपनी जेब असुरक्षित छूट जाती है, उसमें से दूसरे निकालते हैं। एक म्युचुअल, एक पारस्परिक चोरी सारी दुनिया में चल रही है।

उसने कहा कि लेकिन चाहता हूं कि कभी तुम परमात्मा के चोर बन सको। तुम्हें मैं ले चलूंगा। दूसरे दिन वह अपने युवा लड़के को लेकर राजमहल में चोरी के लिए गया। उसने जाकर आहिस्ता से दीवाल की ईंटें सरकाईं, लड़का थर-थर कांप रहा है खड़ा हुआ। आधी रात है, राजमहल है, संतरी द्वारों पर खड़े हैं, और वह इतनी शांति से ईंटें निकालकर रख रहा है कि जैसे अपना घर हो। लड़का थर-थर कांप रहा है। लेकिन बूढ़े बाप के बूढ़े हाथ बड़े कुशल हैं। उसने आहिस्ता से ईंटें निकालकर रख दीं। उसने लड़के से कहा, कंपो मत। साहूकारों को कंपना शोभा देता है, चोरों को नहीं। यह काम नहीं चल सकेगा। अगर कंपोगे तो क्या चोरी करोगे? कंपन बंद करो। देखो, मेरे बूढ़े हाथ भी कंपते नहीं।

सेंध लगाकर बूढ़ा बाप भीतर हुआ। उसके पीछे उसने अपने लड़के को भी बुलाया। वे महल के अंदर पहुंच गए। उसने कई ताले खोले और महल के बीच के कक्ष में वे पहुंच गए। कक्ष में

एक बहुत बड़ी बहुमूल्य कपड़ों की अलमारी थी। अलमारी को बूढ़े ने खोला। और लड़के से कहा, भीतर घुस जाओ और जो भी कीमती कपड़े हों, बाहर निकाल लो। लड़का भीतर गया, बूढ़े बाप ने दरवाजा बंद करके ताला बंद कर दिया। जोर से सामान पटका और चिल्लाया--चोर। और सेंध से निकलकर घर के बाहर हो गया।

सारा महल जग गया। और लड़के के प्राण आप सोच सकते हैं, किस स्थिति में नहीं पहुंच गए होंगे। यह कल्पना भी न की थी कि यह बाप ऐसा दुष्ट हो सकता है। लेकिन सिखाते समय सभी मां-बाप को दुष्ट शायद होना पड़ता है। लेकिन एक बात हो गई, ताला बंद कर गया है बाप, कोई उपाय नहीं छोड़ गया बचने का। चिल्ला गया है--महल के संतरी जाग गए, नौकर-चाकर जाग गए हैं, प्रकाश जल गए हैं, लालटेनें घूमने लगी हैं, चोर की खोज हो रही है। चोर जरूर मकान के भीतर है। दरवाजे खुले पड़े हैं, दीवाल में छेद है।

फिर एक नौकरानी मोमबत्ती लिए हुए उस कमरे में भी आ गई है, जहां वह बंद है। अगर वे लोग न भी देख पाएं तो भी फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि वह बंद है और निकल नहीं सकता, दरवाजे पर ताला है बाहर। लेकिन कुछ हुआ। अगर आप उस जगह होते तो क्या होता?

आज रात सोते वक्त जरा खयाल करना कि उस जगह अगर मैं होता--उस लड़के की जगह तो क्या होता? क्या उस वक्त आप विचार कर सकते थे? विचार करने की कोई गुंजाइश ही नहीं थी। उस वक्त आप क्या सोचते? सोचने का कोई मौका नहीं था। उस वक्त आप क्या करते? कुछ भी करने का उपाय नहीं था। द्वार बंद, बाहर ताला लगा हुआ है, संतरी अंदर घुस आए हैं, नौकर भीतर खड़े हैं, घर भर में खोजबीन की जा रही है--आप क्या करते?

उस लड़के के पास करने को कुछ भी नहीं था। न करने के कारण वह बिलकुल शांत हो गया। उस लड़के के पास सोचने को कुछ नहीं था। सोचने की कोई जगह नहीं थी, गुंजाइश नहीं थी। सो जाने का मौका नहीं था, क्योंकि खतरा बहुत बड़ा था। जिंदगी मुश्किल में थी। वह एकदम अलर्ट हो गया। ऐसी अलर्टनेस, ऐसी सचेतता, ऐसी सावधानी उसने जीवन में कभी देखी नहीं थी। ऐसे खतरे को ही नहीं देखा था। और उस सावधानी में कुछ होना शुरू हुआ। उस सचेतता के कारण कुछ होना शुरू हुआ--जो वह नहीं कर रहा था, लेकिन हुआ।
उसने कुछ, अपने नाखून से दरवाजा खरोंचा। नौकरानी पास से निकलती थी। उसने सोचा शायद चूहा या कोई बिल्ली कपड़ों की अलमारी में अंदर है। उसने ताला खोला, मोमबत्ती लेकर भीतर झांका। उस युवक ने मोमबत्ती बुझा दी। बुझाई, यह कहना केवल भाषा की बात है। मोमबत्ती बुझा दी गई, क्योंकि युवक ने सोचा नहीं था कि मैं मोमबत्ती बुझा दूं। मोमबत्ती दिखाई पड़ी, युवक शांत खड़ा था, सचेत, मोमबत्ती बुझा दी, नौकरानी को धक्का दिया; अंधेरा था, भागा।

नौकर उसके पीछे भागे। दीवाल से बाहर निकला। जितनी ताकत से भाग सकता था, भाग रहा था। भाग रहा था कहना गलत है, क्योंकि भागने का कोई उपक्रम, कोई चेष्टा, कोई एफर्ट वह नहीं कर रहा था। बस, पा रहा था कि मैं भाग रहा हूं। और फिर पीछे लोग लगे थे। वह एक कुएं के पास पहुंचा, उसने एक पत्थर को उठाकर कुएं में पटका। नौकरों ने कुएं को घेर लिया। वे समझे कि चोर कुएं में कूद गया है। वह एक दरख्त के पीछे खड़ा था, फिर आहिस्ता से अपने घर पहुंचा।

जाकर देखा, उसका पिता कंबल ओढ़े सो रहा था। उसने कंबल झटके से खोला और कहा कि आप यहां सो रहे हैं, मुझे मुश्किल में फंसाकर? उसने कहा, अब बात मत करो। तुम आ गए, बात खतम हो गई। कैसे आए--तुम खुद ही सोच लेना। कैसे आए तुम वापस? उसने कहा मुझे पता नहीं कि मैं कैसे आया हूं। लेकिन कुछ बातें घटीं। मैंने जिंदगी में ऐसी अलर्टनेस, ऐसी ताजगी, ऐसा होश कभी देखा नहीं था। और आउट आफ देट अलर्टनेस, उस सचेतता के भीतर से, फिर कुछ शुरू हुआ, जिसको मैं नहीं कह सकता कि मैंने किया। मैं आ गया हूं।

उस बूढ़े ने कहा, अब दोबारा भीतर जाने का इरादा है? उस युवक ने कहा, उस सचेतता में, उस अवेयरनेस में जिस आनंद का अनुभव हुआ है, अब मैं चाहता हूं, मैं भी परमात्मा का चोर हो जाऊं। अब आदमियों की संपदा में मुझे भी कोई रस दिखाई नहीं पड़ता। क्योंकि उस सचेतता में मैंने अपने भीतर जो संपदा देखी है, वह इस संसार में कहीं भी नहीं है।

तो मैं परमात्मा के चोर होना आपको सिखाना चाहता हूं। लेकिन उसके पहले इन तीन सूत्रों पर...इन तीन दिनों में अगर आप सहयोग देंगे, तो इसमें कोई बहुत आश्चर्य नहीं है कि जाते वक्त आप अपने सामान में परमात्मा की भी थोड़ी सी संपदा ले जाते हुए अपने आपको अनुभव करें। वह संपत्ति सब जगह मौजूद है। लेकिन हिम्मतवर चोर आता ही नहीं कि उस संपत्ति को चुराए और अपने घर ले जाए।

परमात्मा करे, आप भी एक मास्टर थीफ हो सकें, एक कुशल चोर हो सकें। उस बड़ी संपदा को चुराने में उस चोरी के सिखाने का ही राज तीन दिनों में आपसे मैं कहूंगा। और अगर आपका सहयोग रहा तो यह बात हो सकती है।

आज के लिए तो इतना बस। क्योंकि रात बहुत हो गई। और जिनको चोरी की तैयारी करनी है, उन्हें अपनी-अपनी जगह चले जाना चाहिए।

मेरी बातों को इतने प्रेम और शांति से सुना है, उसके लिए बहुत-बहुत धन्यवाद।

अंत में यही प्रार्थना करता हूं, प्रभु करे, वह आशा और वह सपना पूरा हो सके, जिसके लिए हम सबके प्राण लालायित हैं। वह हो सकता है, सिर्फ आपके सहयोग की जरूरत है।

अंत में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं, मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक १८-१०-६७ रात्रि

२. आत्मा के फूल

ज्ञान की कोई भिक्षा संभव नहीं हो सकती। ज्ञान भीख नहीं है। धन तो कोई भीख में मांग भी ले, क्योंकि धन बाहर है। लेकिन ज्ञान? ज्ञान स्थूल नहीं है, बाहर नहीं है, उसके कोई सिक्के नहीं हैं, उसे किसी से मांगा नहीं जा सकता। उसे तो जानना ही होता है। लेकिन आलस्य हमारा, प्रमाद हमारा, श्रम न करने की हमारी इच्छा, हमें इस बासे उधार ज्ञान को, जो कि ज्ञान नहीं है, इकट्ठा कर लेने के लिए तैयार कर देती है।

इससे बड़ा मनुष्य का और कोई अपमान नहीं है कि वह ज्ञान मांगने किसी के द्वार पर जाए। इससे बड़ा कोई अपमान नहीं है। इससे बड़ा कोई पाप नहीं है। लेकिन इस बात को तो धर्म समझा जाता रहा है। जिसे मैं पाप कह रहा हूं। जो आदमी जितना शास्त्रों से, शास्ताओं से ज्ञान इकट्ठा कर लेता है, उतना धार्मिक समझा जाता है। उससे ज्यादा पापी मनुष्य दूसरा नहीं है। क्योंकि जीवन में सबसे बड़ा पाप वह कर रहा है--वह यह कि वह ज्ञान उधार मांग रहा है, भीख मांग रहा है, जो कि कभी मिल ही नहीं सकता। जैसे ही कोई देता है ज्ञान, देते ही झूठा हो जाता है।

एक युवक समुद्र के किनारे घूमने गया था। बहुत सुंदर, बहुत शीतल, बहुत ताजगी देने वाली हवाएं उसे वहां मिली। वह एक युवती को प्रेम करता था, जो दूर किसी अस्पताल में बीमार थी। उसने सोचा इतनी सुंदर हवाएं, इतनी ताजी हवाएं--क्यों न मैं अपनी प्रेयसी को भेज दूं।

उसने एक बहुमूल्य पेटी में उन हवाओं को बंद किया और पार्सल से अपनी प्रेयसी के लिए भिजवा दिया। साथ में एक प्यारा पत्र लिखा कि बहुत शीतल, बहुत सुगंधित, बहुत ताजी हवाएं तुम्हें भेज रहा हूं, तुम बहुत आनंदित होगी।

पत्र तो मिल गया, लेकिन हवाएं नहीं मिलीं। पेटी खोली, वहां तो कुछ भी न था। वह युवती बहुत हैरान हुई। इतनी बहुमूल्य पेटी में भेजा था उसने उन हवाओं को, इतने प्रेम से। पत्र तो मिल गया, पेटी भी मिल गई, लेकिन हवाएं--हवाएं वहां नहीं थीं।

समुद्र की हवाओं को पेटियों में भरकर नहीं भेजा जा सकता। चांद की चांदनी को भी पेटियों में भरकर नहीं भेजा जा सकता। प्रेम को भी पेटियों में भरकर नहीं भेजा जा सकता। लेकिन परमात्मा को हम पेटियों में भरकर हजारों साल से एक-दूसरे को भेजते रहे हैं। पेटियां मिल जाती हैं--बड़ी खूबसूरत पेटियां हैं, साथ में लिखे पत्र भी मिल जाते हैं--गीता के, कुरान के, बाइबिल के लेकिन पेटी खोलने पर सत्य नहीं मिलता है। जो ताजी हवाएं उन लोगों ने जानी होंगी, जिन्होंने प्रेम में ये पत्र भेजे, वे हम तक नहीं पहुंच पाती हैं।

समुद्र की ताजी हवाओं को जानना हो तो समुद्र के किनारे ही जाना पड़ेगा, और कोई रास्ता नहीं है। कोई दूसरा उन हवाओं को आपके पास नहीं पहुंचा सकता है। आपको खुद ही समुद्र तक की यात्रा करनी होगी।

सत्य की ताजी हवाएं भी कोई नहीं पहुंचा सकता। सत्य तक भी हमें स्वयं ही यात्रा करनी होती है।

इस पहली बात को बहुत स्मरण-पूर्वक ध्यान में ले लेना जरूरी है। इस बात को ध्यान में लेते ही शास्त्र व्यर्थ हो जाएंगे। परंपराओं से भेजी गई खबरें हंसने की बातें हो जाएंगी। और आपका चित्त नए होने के लिए तैयार हो सकेगा। आलस्य है, जो इस सत्य को नहीं देखने देता।

दूसरी बात। परंपरागत ज्ञान के साथ जीने में एक तरह की सुरक्षा, एक तरह की सिक्योरिटी है। सभी लोग जिस बात को मानते हैं, उसे मान लेने में एक तरह की सुरक्षा है। राजपथ पर चलने जैसी सुरक्षा है। एक बड़ा राजपथ है, हाइवे है, उस पर हम सब चलते हैं सुरक्षित...कोई भय नहीं, बहुत लोग चल रहे हैं। लेकिन पगडंडियां हैं, अकेले रास्ते हैं, जिन पर यात्री मिले या न मिले। कोई साथी, सहयोगी हो या न हो। अकेले जंगलों में भटक जाने का डर है। अंधेरे रास्ते हो सकते हैं--अनजान, अपरिचित, अननोन--उन पर जाने में भय लगता है।

इसलिए हम सब सुरक्षित बंधे हुए रास्तों पर चलते हैं...ताकि वहां सभी लोग चलते हैं, वहां कोई भय नहीं है, रास्ते पर और भी यात्री हैं, आगे भी यात्री हैं, पीछे भी। इससे यह विश्वास मन में प्रबल होता है कि जब आगे लोग जा रहे हैं तो ठीक ही जा रहे होंगे। पीछे लोग जा रहे हैं तो ठीक ही जा रहे होंगे। मैं ठीक ही जा रहा हूं, क्योंकि बहुत लोग जा रहे हैं। और हर आदमी को यही खयाल है कि बहुत लोग जा रहे हैं। यह एक म्युचुअल फैलसी है, यह एक पारस्परिक भ्रांति है। बहुत लोग एक तरफ जा रहे हैं तो प्रत्येक यह सोचता है, इतने लोग जा रहे हैं तो जरूर ठीक जा रहे होंगे। सभी लोग गलत नहीं हो सकते। और हर एक यही सोचता है!

भीड़ एक भ्रम पैदा कर देती है। तो हजारों वर्षों की एक भीड़ चलती है एक रास्ते पर। एक नया बच्चा पैदा होता है, वह इतना अकेला, इस भीड़ से अलग हटकर कैसे जाए? उसे विश्वास नहीं आता है कि मैं ठीक हो सकता हूं, उसे विश्वास आता है इतने लोग ठीक होंगे। ज्ञान की दिशा में यह डेमोक्रेटिक खयाल सबसे बड़ी भूल साबित हुई है। ज्ञान कोई लोकतंत्र नहीं है। यहां कोई हाथ उठाने और भीड़ के साथ होने का सवाल नहीं है।

अक्सर तो उलटा हुआ है, भीड़ गलत साबित हुई है। इकहरे, इक्के-दुक्के व्यक्ति सही साबित हुए हैं। अगर भीड़ ही सही होती तो दुनिया बहुत दूसरी होनी चाहिए थी। दुनिया एकदम

गलत है, भीड़ गलत होगी। कभी इक्का-दुक्का आदमी तो सही हुआ है, लेकिन भीड़ सही नहीं हुई है। लेकिन भीड़ को एक सुविधा है यह भ्रम पाल लेने की पोस लेने की, कि सभी लोग साथ हैं। जहां बहुत लोग साथ हैं, वहां सत्य होगा ही।

सत्य के लिए ऐसी काई गारंटी और कसौटी नहीं है। बल्कि सच्चाई तो यह है कि सत्य की शुरुआत ही नहीं हो पाती इस विश्वास के कारण कि दूसरे लोग बहुत होने की वजह से सही होंगे और मैं अकेला होने की वजह से कहीं गलत न हो जाऊं।

ज्ञान मुझे खोजना है, सत्य मुझे पाना है, जीवन मुझे जीना है, और मुझे स्वयं पर कोई विश्वास नहीं है! भीड़ पर, अन्यों पर विश्वास है! तो फिर यह यात्रा कैसे हो सकती है? मुझे होना चाहिए स्वयं पर विश्वास। है मुझे अन्य पर, भीड़ पर विश्वास! भीड़ जो कह देती है, उसी को मैं मान लेता हूं। भीड़ अगर हिंदुओं की है, तो मैं एक बात मान लेता हूं। भीड़ जैनियों की है, दूसरी बात मान लेता हूं। भीड़ कम्युनिस्टों की है, तीसरी बात मान लेता हूं। भीड़ आस्तिकों की है...चौथी...नास्तिकों की है...पांचवीं...! भीड़ जो कहती है, वह मैं मान लेता हूं। भीड़ मेरे प्राणों को जकड़े हुए है।

यह जो कलेक्टिव माइंड है, यह जो समूह का मन है, यह व्यक्ति के मन को सत्य तक नहीं पहुंचने देता है। तो कलेक्टिव माइंड, यह समूह का जो मन है, हजारों-हजारों साल में जो निर्मित होता है, यह जो बासा मन है, यह हमें जकड़े हुए है। और आप जब तक इस कलेक्टिव माइंड, इस सामूहिक मन के घेरे में बंद हैं, तब तक आप भूल में हैं कि आप एक व्यक्ति हैं, आप एक इंडीवीजुअल हैं।

अभी आपके भीतर इंडीवीजुअल का जन्म नहीं हुआ है। अभी आप व्यक्ति कहने के हकदार नहीं हैं अपने को। व्यक्ति तो वही कह सकता है अपने को, जिसने भीड़ से अपने स्वयं के मन को मुक्त कर लिया। जिसने राजपथ छोड़ दिया और सत्य की अनजानी पगडंडियों की यात्रा शुरू की है। और जो व्यक्ति ही नहीं बन सकता, वह आत्मा को जान सकेगा?

इंडीवीजुअल होना, व्यक्ति होना, आत्मा की खोज का पहला सोपान है। आत्मा को आप कभी नहीं पहुंच सकते हैं, जब तक आप व्यक्ति ही नहीं हैं। अभी तो आप भीड़ के एक हिस्से हैं। अभी तो आप भीड़ के एक अंश हैं। अभी आपका अपना होना, आपका बीइंग, अभी नहीं है। अभी आप एक बड़ी मशीन के कल-पुर्जे हैं। वह बड़ी मशीन जैसी चलती है, वैसे आप चलते हैं। अभी आपकी अपनी कोई निजी सत्ता नहीं है। तो जीवन और ताजगी कहां से संभव हो सकती है? अभी हम एक यंत्र के हिस्से हैं, हम यांत्रिक हैं। अभी हम मनुष्य भी अपने को नहीं कह सकते हैं।
मनुष्य होने की पहली शुरुआत भीड़ से मुक्ति है।

बचपन से भीड़ पकड़ना शुरू कर देती है। बच्चा पैदा होता है और भीड़ उसे पकड़नी शुरू कर देती है। वह जो क्राउड है हमारे चारों तरफ, वह डरती है कि बच्चा कहीं छिटक न जाए, उसके फोल्ड से, उसके घेरे से। वह उसको शिक्षा देनी शुरू कर देती है--धर्म, शिक्षा और जमानेभर की शिक्षाएं! और उसे अपने घेरे में बांध लेने के सब प्रयास करती है। इसके पहले कि उस बच्चे में सोच-विचार पैदा हो, भीड़ उसके चित्त को सब तरफ से जकड़ लेती है। फिर जीवनभर उसी भीड़ के शब्दों में वह बच्चा सोचता है, और जीता है। अर्थात वह कभी भी नहीं सोचता और कभी भी नहीं जीता। उसके भीतर स्वयं का चिंतन, स्वयं का विचार, स्वयं का अनुभव, जैसा कुछ भी नहीं रह जाता है।

क्या यह हम सोचेंगे नहीं कि हम भीड़ के एक हिस्से हैं?

जब आप कहते हैं मैं जैन हूं, तो आप क्या कहते हैं? जब आप कहते हैं, मैं मुसलमान हूं, तो आप क्या कहते हैं? जब आप कहते हैं मैं कम्यूनिस्ट हूं, तो आप क्या कहते हैं? आप यह कहते हैं, मैं नहीं हूं, एक भीड़ है, जिसका मैं हिस्सा हूं। और क्या कहते हैं आप? आप इनकार करते हैं अपने होने को और भीड़ के होने को स्वीकार करते हैं। कहते हैं--मैं हिंदू हूं, ईसाई हूं, पारसी हूं। आप क्या कह रहे हैं? इससे ज्यादा अपमान की कोई और बात हो सकती है कि आप पारसी हैं, हिंदू हैं, ईसाई हैं। आदमी नहीं हैं--आप आप नहीं हैं। आप एक भीड़ की, भीड़ के एक हिस्से हैं। और बड़े गौरव से इस बात को कहते हैं कि मैं वह भीड़ हूं। और वह भीड़ जितनी पुरानी होती है आप और गौरव से चिल्लाते हैं कि मेरी भीड? बड़ी प्राचीन है; मेरी संस्कृति, मेरा धर्म बड़ा पुराना है। मेरी भीड़ की संख्या बहुत ज्यादा है। और आपको पता भी नहीं चलता कि आप अपना आत्मघात कर रहे हैं, आप स्युसाइड कर रहे हैं।

जो आदमी भीड़ का हिस्सा है, वह आत्मघाती है।

आपको स्मरण होना चाहिए--आप आप हैं। आप एक व्यक्ति हैं। आप एक चेतना हैं, और चेतना किसी का हिस्सा नहीं होती, और न हो सकती है। यंत्र, जड़ता हिस्सा होता है। चेतना किसी का हिस्सा नहीं होता। चेतना एक स्वतंत्रता है। लेकिन सुरक्षा के पीछे हम स्वतंत्रता को खो देते हैं।

तो दूसरी चीज जो हमें बांधे हुए है, हमारे चित्त को नया नहीं होने देती, ताजा नहीं होने देती--वह है सुरक्षा का अतिभाव, साहस की बहुत कमी।

एक ईसाई धर्मगुरु, कुछ छोटे से बच्चों के स्कूल में उन्हें नैतिक साहस की शिक्षा देता था, मारल करेज के बाबत कुछ बातें सिखाता था। तीस बच्चे थे। उस धर्मगुरु ने कहा कि नैतिक साहस होना चाहिए। एक बच्चे ने पूछा, हम समझते नहीं हैं नैतिक साहस क्या है, आप हमें समझाएं?

तो उसने कहा, समझ लो, तुम तीस ही बच्चे एक रात एक जंगल में पिकनिक के लिए गए हो। फिर दिनभर की भाग-दौड़ के बाद, घूमने-फिरने के बाद रात में सराय में रुके हो। थक गए हो। उन्तीस बच्चे--सर्द रात है, अपने कंबलों को ओढ़कर सो जाते हैं। लेकिन उनमें

से एक बच्चा एक कोने में बैठकर रात की प्रार्थना करता है। तीस बच्चे--सर्दी है कड़कड़ाती हुई, दिनभर के थके हुए; उन्तीस बच्चे जाकर अपने कमरे में कंबल ओढ़ लेते हैं, सो जाते हैं बिना प्रार्थना किए रात्रि की, लेकिन एक बच्चा उस सर्द रात में थका हुआ भी, घुटने टेककर परमात्मा से रात की प्रार्थना करता है। उस बच्चे में मारल करेज है, उस बच्चे में नैतिक साहस है। उस वक्त कितनी तीव्र टेंपटेशन है उसे--सब सोने जा रहे हैं, सर्द रात है, लेकिन वह अकेला होने की हिम्मत करता है।

महीने भर बाद वह पादरी फिर वापस लौटा। उसने उन बच्चों से कहा, मैंने नैतिक साहस के संबंध में तुम्हें समझाया था, क्या तुम मुझे बता सकोगे कि नैतिक साहस क्या है?

एक बच्चे ने कहा, समझ लें, आप जैसे तीस पादरी एक रात एक ही सराय में ठहरते हैं। उन्तीस पादरी प्रार्थना कर रहे हैं, एक पादरी कंबल ओढ़कर शान से सो जाता है। उसको हम नैतिक करेज, उसको हम नैतिक साहस कहते हैं।

मुझे पता नहीं इन दोनों में से कौन सा नैतिक साहस है। लेकिन एक बात जरूर पता है, भीड़ से पृथक होने की हिम्मत जरूर नैतिक साहस है। हमेशा भीड़ के समक्ष झुक जाना--नैतिक कमजोरी है, नैतिक अशक्ति है, बलहीनता है, पुरुषार्थ का अभाव है। हमेशा-हमेशा भीड़ के समक्ष झुक जाना, हर बात में भीड़ के समझ झुक जाना, चित्त के आंतरिक तलों पर।

बाहर के तलों की बातें नहीं कह रहा हूं कि सारा मुल्क बाएं चलता है तो आप दाएं चलने लगें। कि सारा मुल्क सड़क के किनारे चलता है तो आप बीच में चलने लगें--यह मैं नहीं कह रहा हूं। जीवन के बाहर के जो औपचारिक नियम हैं, उनमें तो सिर्फ नासमझ लोग साहस करते हैं।

सोवियत रूस में क्रांति हुई, उन्नीस सौ सत्तरह में। मास्को मुक्त हो गया, जार के हाथों से। तो एक बूढ़ी औरत बीच सड़क पर खड़ी होकर गपशप करने लगी। एक ट्रेफिक के पुलिस मैन ने उसको कहा कि यह सड़क का चौराहा है, यहां यह गपशप करने की जगह नहीं, तुम भीड़ को बाधा दे रही हो। उसने कहा, छोड़ो, अब हम स्वतंत्र हैं। अब जहां हमको खड़ा होना होगा, वहां हम खड़े होंगे; और जहां हमें बात करनी होगी, हम बात करेंगे। अब कोई बंधन नहीं।

यह औरत नासमझ है। जीवन का, बाहर का जो जगत है, बाहर का जगत भीड़ का जगत है। वहां आप एक इंच भी चलते हैं तो चारों तरफ भीड़ के बीच में आपको रास्ता बनाना है। बाहर के जगत के नियम भीड़ के नियम ही होंगे, व्यक्ति के नियम नहीं हो सकते।

लेकिन भीतर के जगत में कोई भीड़ नहीं है। वहां कोई आपके सिवाय मौजूद नहीं है। वहां के जो नियम होंगे, उनके नियमों का, भीड़ का होना कतई जरूरी नहीं है। भीतर के जगत में आप व्यक्ति हो सकते हैं। बाहर के जगत में तो आपको समाज का सदस्य होना पड़ेगा। लेकिन भीतर के जगत में समाज के सदस्य होने की कोई अनिवार्यता नहीं है। बाहर कानून होगा, सड़क के नियम होंगे, समाज के नियम होंगे, वे ठीक हैं। बाहर आप समाज के एक

सदस्य हैं। लेकिन भीतर--भीतर आपको अगर परमात्मा का एक साथी होना है तो समाज का सदस्य आपको नहीं रह जाना पड़ेगा। भीतर के जगत में आपको भीड़ से मुक्त हो ही जाना चाहिए, तो ही आपका मन ताजा हो सकता है।

तो मेरी बात को आप गलत नहीं लेंगे। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि आप उच्छृंखल हो जाएं। और आपको जहां से चलना हो, वहां से चलने लगें।

नहीं, मैं आपसे यह कह रहा हूं कि एक तल है चेतना का भीतर, वहां किसी समाज के नियम की कोई भी जरूरत नहीं। वहां आपको हिंदू और मुसलमान, ईसाई और जैन होने की कोई भी जरूरत नहीं है। और वहां आप जब तक हिंदू, जैन, मुसलमान, ईसाई बने रहेंगे, तब तक--तब तक आप जो है, उसे कभी नहीं जान सकते। भीड़ ने आपके भीतर अपने पंजे फैला दिए हैं, और आपकी आत्मा को पकड़ लिया है। और आप राजी हैं, इसलिए यह बंधन पैदा हुआ है। आप गैर-राजी हो जाएं, यह बंधन इसी क्षण गिर जाता है।

आपके सहयोग के बिना कोई आपको मानसिक रूप से गुलाम नहीं बना सकता। शारीरिक रूप से बना सकता है। शारीरिक रूप से आप गुलाम बनाए जा सकते हैं, आपके बिना सहयोग के। लेकिन मानसिक, वह जो मेंटल स्लेवरि है, वह जो मानसिक दासता है, वह आपके सहयोग के बिना कोई कभी खड़ी नहीं कर सकता। क्योंकि आपके सिवाय आपके मन में किसी की कोई गति नहीं है। जब आप राजी होते हैं तो आपका चित्त गुलाम होता है, अन्यथा गुलाम नहीं होता है।

क्या आप उस तल पर गैर-राजी होने को तैयार हैं? क्या उस तल पर आप इनकार करने की हिम्मत रखते हैं? क्या वहां आप नो कह सकते हैं? हम सब यस-शेअर हैं, हमेशा हां कहने वाले लोग हैं। हममें से नो-शेअर कोई भी नहीं है, जो कह सके नहीं। और जो आदमी भीतर के तल पर नहीं, नहीं कह सकता, वह कभी स्वतंत्र नहीं हो सकता। हम हमेशा हां कहने को तैयार हैं। हमारे इस हां कहने ने हमारे मन को बासा, गुलाम, दास, पुराना और जीर्ण-जर्जर बना दिया है।

तो पहला सूत्र आज की सुबह आपसे कहना चाहता हूं: आप इनकार करने में समर्थ होने चाहिए तो ही आपके भीतर धार्मिक आदमी पैदा हो सकेगा। क्योंकि धार्मिक आदमी गुलाम आदमी नहीं है, धार्मिक आदमी परिपूर्ण स्वतंत्र है। धार्मिक आदमी से ज्यादा स्वतंत्र कोई मनुष्य नहीं होता।

लेकिन हम देखते हैं कि धार्मिक आदमी से ज्यादा गुलाम आदमी दिखाई नहीं पड़ता दुनिया में। होना उलटा था। धार्मिक आदमी स्वतंत्रता की एक प्रतिमा होता, धार्मिक आदमी स्वतंत्रता की एक गरिमा लिए होता, धार्मिक आदमी के जीवन से स्वतंत्रता की किरणें फूटती होतीं, वह एक मुक्त पुरुष होता, उसके चित्त पर कोई गुलामी न होती। लेकिन धार्मिक आदमी सबसे ज्यादा गुलाम है, इसीलिए धर्म सब झूठा सिद्ध हो गया है।

इस सच्चाई को मेरे कहने से आप स्वीकार कर लें तो आप यस-शेअर हो गए, आप हां कहने वाले हो गए। फिर मैं आपको गुलाम करने का एक कारण हो जाऊंगा। मेरे कहने से

आप स्वीकार कर लेंगे तो इससे गुलामी तो बदलेगी, लेकिन गुलामी समाप्त नहीं होगी। क्योंकि तब कोई दूसरे बंधन हटेंगे, मेरे बंधन आपको पकड़ ले सकते हैं।

मेरे कहने से आपको स्वीकार नहीं करना है। सोचना है, देखना है। मैंने जो कहा, उसे अपने भीतर खोजना है कि क्या मेरी कही बात आपके भीतर तथ्यों से मेल खाती है, क्या वह फेक्टस से मेल खाती है? क्या आप भीतर के तल पर एक गुलाम आदमी हैं? क्या भीतर के तल पर आप भीड़ के एक सदस्य हैं? क्या भीतर के तल पर आपकी कोई निजी हैसियत, आपका कोई अपना होना है या नहीं है?

मैं जो बातें कह रहा हूं, मेरे साथ ही साथ अगर आप भीतर उनकी तौल करते चलें और देखते चलें, क्या यह सच है और अगर आपको अपने भीतर के तथ्यों से मेल दिखाई पड़ जाए तो फिर मेरे कहने से आपने नहीं माना, आपने खोजा और पाया। तब फिर--तब फिर आप अपनी गुलामी को खुद देखने के कारण अगर उससे मुक्त होते हैं तो वह मुक्ति एक नई गुलामी की शुरुआत नहीं होगी।

नहीं तो हमेशा यह हुआ है, एक से लोग छूटते हैं तो दूसरे से बंध जाते हैं...कुएं से बचते हैं तो खाई में गिर जाते हैं। एक गुरु से बचते हैं तो दूसरा गुरु मिल जाता है। एक बाबा से बचते हैं, दूसरा बाबा मिल जाता है। एक मंदिर से बचते हैं, दूसरे मंदिर में आ जाते हैं। लेकिन बचना नहीं हो पाता। बीमारियां बदल जाती हैं, लेकिन बीमारियां जारी रहती हैं। थोड़ी देर को राहत मिलती है, क्योंकि नई गुलामी थोड़ी देर को स्वतंत्रता का खयाल देती है। क्योंकि पुरानी गुलामी का बोझ हट जाता है, नई गुलामी का नया बोझ...।

लोगों को मरघट पर अर्थी ले जाते मैं देखता हूं, तो कंधे बदलते रहते हैं रास्ते में। इस कंधे पर रखी थी अर्थी फिर उस कंधे पर रख लेते हैं। कंधा बदलने से थोड़ी राहत मिलती होगी। इस कंधे पर वजन कम हो जाता है, यह थक जाता है तो फिर दूसरा कंधा। थोड़ी देर बाद फिर उनको मैं कंधे बदलते देखता हूं, फिर इस कंधे पर ले लेते हैं। कंधे बदल जाते हैं, लेकिन आदमी के ऊपर वह अर्थी का बोझ तो तैयार ही रहता है...इससे क्या फर्क पड़ता है कि कंधे बदल लिए। थोड़ी देर राहत मिलती है, दूसरा कंधा फिर तैयार हो जाता है।

इसी तरह दुनिया में इतने धर्म पैदा हो गए हैं...कंधे बदलने के लिए। नहीं तो कोई और कारण नहीं था कि ईसाई हिंदू हो जाता, हिंदू ईसाई हो जाता। एक पागलपन से छूटता है, दूसरा पागलपन हमेशा तैयार है। दुनिया में तीन सौ धर्म पैदा हो गए, कंधे बदलने की सुविधा के लिए, और कोई उपयोग नहीं है। जरा भी उपयोग नहीं है। और भ्रांति यह पैदा होती है कि मैं एक गुलामी से छूटा, अब मैं आजादी की तरफ जा रहा हूं।

एक हिंदू ईसाई होता है तो सोचता है मैं आजादी की तरफ जा रहा हूं। सिर्फ अपरिचित गुलामी उसको आजादी मालूम पड़ गई! थोड़े दिनों बाद पाएगा कि फिर एक नई गुलामी में खड?ा हो गया। पुराना मंदिर छूट गया, नया चर्च खड़ा हो गया। लेकिन वह नया देखने को ही था। वह सबस्टीटयूट सिद्ध होता है...पुराने मंदिर की जगह फिर--फिर दूसरा मंदिर उपलब्ध हो जाता है। एक गुलामी बदलती है, दूसरी गुलामी शुरू हो जाती है।

मैं आपको कोई नई गुलामी का संदेश देने को नहीं हूं। गुलामी से गुलामी की तरफ नहीं, गुलामी से स्वतंत्रता की तरफ यात्रा करनी है। वह मेरी बात मानकर नहीं हो सकता है। इसलिए मेरी बात मानने की जरा भी जरूरत नहीं है। मैं कहीं भी आपके रास्ते में खड़ा नहीं होना चाहता हूं। मैंने निवेदन कर दी अपनी बात--वह सोचने-समझने की है। अगर वह फिजूल मालूम पड़े तो उसे एकदम फेंक देना। क्योंकि जानकर आपने फेंकने में संकोच किया कि वह आपको पकड़ लेगी। जरा ही आप डरे कि इसको न फेंकें, वह आपकी गुलामी बन जाएगी। फिर वह आपके भीतर जड़ें फैलाना शुरू कर देगी। कल आप एक नई गुलामी में फिर से आबद्ध हो जाएंगे। एक नया कारागृह फिर खड़ा हो जाएगा। अब तक के सभी गुरु, सभी शास्ता मनुष्य के लिए कारागृह इसी तरह बन गए।

मैं आपके लिए कोई कारागृह, कोई इमप्रिजनमेंट नहीं बनना चाहता हूं। इसलिए मेरी बात मानने का जरा भी मोह करने की जरूरत नहीं है। मैं कह रहा हूं...आप तथ्यों को विचार कर लें, सोच लें, और अगर तथ्य दिखाई पड़ते हों तो क्या मैं आपसे यह कहूं कि आपको फिर एक्ट करना पड़ेगा, आपको कुछ करना पड़ेगा? तथ्य दिखाई पड़ेंगे तो आप कुछ करेंगे ही। तथ्य दिखाई नहीं पड़ते, इसलिए कुछ नहीं करते।

रास्ते पर सांप जाता आपको मिल जाए, दिखाई पड़ जाए तो क्या आप पूछेंगे अब मैं क्या करूं? आप छलांग लगा जाएंगे, पूछेंगे नहीं। पूछने की सुविधा और फुर्सत वहां आप नहीं पाएंगे। घर में आग लग जाए तो आप क्या पूछेंगे कि अब मैं क्या करूं? आप बाहर निकल जाएंगे।

जिस दिन आपको यह दिखाई पड़ जाए कि आपका मन हजारों साल से गुलामी में बंधा हुआ है, उस दिन क्या आप किसी से पूछेंगे, मैं क्या करूं? नहीं आप गुलामी के बाहर कूद जाएंगे।

देखते ही क्रिया होनी शुरू हो जाती है। आपने देखा नहीं, इसलिए क्रिया नहीं हो रही। आपको पता चल जाए कि आपको कैंसर हो गया है, आप फिर पूछेंगे क्या करूं? आप फौरन चिकित्सा के लिए दौड़-धूप में लग जाएंगे। आप कैंसर के बाहर होना चाहेंगे।

कैंसर बहुत बड़ी बीमारी नहीं है। गुलामी उससे बहुत बड़ी बीमारी है। क्योंकि कैंसर केवल शरीर को नष्ट करता है, गुलामी आत्मा को नष्ट कर देती है। और हम सब गुलाम हैं, इसलिए हमारी आत्माएं नष्ट हो गइ हैं।

इसलिए नहीं आत्माएं नष्ट हो गइ हैं कि आप मंदिर नहीं जाते हो। क्या बेवकूफी की बातें हैं। कोई मंदिर नहीं जाएगा...इससे आत्मा नष्ट हो जाएगी? इससे आत्मा नष्ट नहीं हो गई कि आप रोज सुबह धर्म-ग्रंथ नहीं पढ़ते हो। धर्म-ग्रंथ पढ़ने से आत्माएं बचती होतीं तो बहुत सरल नुस्खा था। इसलिए भी आत्मा नष्ट नहीं हो गई कि आप यज्ञोपवीत नहीं पहनते, टीका नहीं लगाते, चोटी नहीं रखते। अगर इतना सस्ता मामला होता आत्मा को बचाने का, तब तो हमने दुनिया की आत्मा कभी की बचा ली होती।

आत्मा इसलिए नष्ट नहीं हो गई, आत्मा इसलिए नष्ट हो गई कि आप एक गुलाम हो। और गुलामी में आत्मा के फूल नहीं खिलते हैं। आत्मा के फूल खिलते हैं स्वतंत्रता में, स्वतंत्रता की भूमि में। गुलाम आदमी के भीतर आत्मा नहीं विकसित हो सकती।

और हम सब गुलाम हैं। क्या इस गुलामी को आप देखेंगे? मन होगा कि इसको देखें ना। कुछ तरकीबें, कुछ तर्क सुझाकर इसको देखने से बच जाएं। क्योंकि देखने के बाद फिर आपको परिवर्तन से गुजरना अनिवार्य हो जाएगा। तो आप अपने मन को पच्चीस जस्टीफिकेशन खोजकर, न-देखने के लिए राजी करने की कोशिश करेंगे कि न देखें। हमेशा आदमी उन चीजों से आंख बंद कर लेना चाहता है, जिनको देखने से परिवर्तन का डर होता है।

शुतुरमुर्ग अपने सिर को छिपा लेता है रेत में शत्रु को देखकर। जब शत्रु दिखाई नहीं पड़ता तो वह सोचता है, जो दिखाई नहीं पड़ता वह है ही नहीं। लेकिन दिखाई न पड़ने से शत्रु नष्ट नहीं होते।

तो आप छिपा लेना चाहेंगे पच्चीस तरह के तर्क जाल में कि नहीं, मैं गुलाम कहां हूं। कौन कहता है कि मैं गुलाम हूं? लेकिन इतनी जल्दी छिपाने की कोशिश आप न करें। छिपाते रहे हैं गुलामी को अच्छे-अच्छे शब्दों में, इसीलिए गुलामी आज तक शेष है। यह कभी की समाप्त हो जानी चाहिए थी। इसके बचे रहने का कोई कारण नहीं है।

लेकिन हम छिपाते हैं! और हम बहुत होशियार लोग हैं। आदमी मर जाता है तो सुंदर कपड़े से ढांक देते हैं, फूल रख देते हैं ऊपर। घर में कहीं गंदगी होती है, खूबसूरत पर्दा टांग देते हैं। शरीर सुंदर नहीं होता तो सुंदर कपड़ों से ढांक लेते हैं।

हम, जहां-जहां कुरूपता होती है, सुंदर से ढांक देते हैं। जहां-जहां असत्य होता है, सत्य के शब्दों से ढांक देते हैं। सब तरफ से ढांक देते हैं फिर वह चीज बची रह जाती है। फिर उससे छूटने को हम खुद ही भूल जाते हैं। हम खुद ही भूल जाते हैं कि हमने कुछ छिपा रखा है। हम अपनी गुलामी को छिपाए हुए हैं और हमने अच्छे-अच्छे शब्दों में उसे ढांक लिया है।

गुलामी को छिपाएं न, अच्छे-अच्छे शब्दों में उसे ढांकें न; उसे देखें, ठीक से उसे देखें। देखने मात्र से वह न होना शुरू हो जाती है। वह वस्तुतः है नहीं। आप देखते नहीं हैं, आप अंधे हैं, इसलिए प्रतीत होती है। आप देखना शुरू करें, स्वतंत्रता अनुभूत होगी। स्वतंत्रता के साथ-साथ सत्य भी आएगा, आनंद भी आएगा। सत्य और आनंद स्वतंत्रता के ही परिणाम हैं।

आज इतना ही। अब हम ध्यान के लिए बैठें।

साधना-शिविर माथेरान दिनांक १९-१०-६७ सुबह

३. जीवन का आविर्भाव

सुबह हमने चित्त की स्वतंत्रता के संबंध में थोड़ी सी बातें कीं।

एक मित्र ने पूछा है कि चित्त स्वतंत्र होगा, तो स्वच्छंद तो नहीं हो जाएगा?

हमें स्वतंत्रता का कोई भी पता नहीं है। हम केवल चित्त की दो ही स्थितियां जानते हैं। एक तो परतंत्रता की, और एक स्वच्छंदता की। या तो हम गुलाम होना जानते हैं, और या फिर उच्छृंखल होना जानते हैं। स्वतंत्रता का हमें कोई अनुभव नहीं है। स्वतंत्रता, स्वच्छंदता से उतनी ही भिन्न बात है, जितनी परतंत्रता से।

सच्चाई तो यह है कि स्वतंत्रता का स्वच्छंदता से कोई संबंध नहीं। स्वच्छंदता का परतंत्रता से जरूर संबंध है। परतंत्र चित्त की जो प्रतिक्रिया है, वही स्वच्छंदता है। परतंत्र चित्त का जो विद्रोह है, वही स्वच्छंदता है। परतंत्र चित्त का जो विरोध है, वही स्वच्छंदता है। लेकिन स्वतंत्रता तो बहुत ही अनूठी दिशा है। उसका इन दोनों बातों से कोई भी संबंध नहीं। न तो स्वतंत्र व्यक्ति परतंत्र होता है, और न स्वच्छंद होता है।

तो पहले हम परतंत्रता के संबंध में थोड़ा समझ लें तो शायद स्वच्छंदता के संबंध में भी हमें समझ में आ जाए। और उन दोनों से भिन्न ही स्वतंत्रता की अवस्था है।

परतंत्रता का अर्थ है: चित्त के ऊपर लोगों के द्वारा थोपा गया तंत्र, समाज के द्वारा, वह जो कलेक्टिव माइंड है, वह जो समूह चित्त है, उसके द्वारा व्यक्ति को जहां-जहां बांधा गया है। यह जो बंधन है, निश्चित ही यह बंधन किसी को भी प्रीतिकर नहीं है। बंधन कभी भी प्रीतिकर नहीं हो सकते हैं। उन बंधनों के प्रति सहज ही भीतर एक विरोध है। उन बंधनों को तोड़ देने की भीतर एक तीव्र बलवती आकांक्षा है। और जब भी व्यक्ति मौका पाता है, उन बंधनों को तोड़ता है। ऐसे परतंत्रता को तोड़ने से--परतंत्रता के विरोध में, वह जो विद्रोही चित्त है, उससे स्वच्छंदता पैदा होती है।

आज तक जमीन पर आदमी का मन परतंत्र रहा है। अब उसके विद्रोह में एक रिबेलियन, उसके विरोध में एक प्रतिक्रिया सारे जगत में पैदा हो रही है। नया युवक उस प्रतिक्रिया का फल है, वह स्वच्छंद है। आप जो-जो कहते हैं, वह उसे केवल इसीलिए करने को तैयार नहीं है, क्योंकि आप कहते हैं। कल तक का आदमी तैयार था, क्योंकि आप कहते थे। आज का युवक तैयार नहीं है, क्योंकि आप कहते हैं। लेकिन दोनों ही आपके कहने से बंधे हुए हैं। दोनों ही स्वतंत्र नहीं हैं। एक आपके पक्ष में बंधा हुआ था, एक आपके विपक्ष में बंध गया है।

लेकिन विपक्ष में जो बंध जाता है--वह भी बंधा हुआ है।

अगर एक व्यक्ति मंदिर जाता है, इसलिए कि लोग कहते हैं, और एक व्यक्ति मंदिर नहीं जाता है, केवल इसलिए ही क्योंकि लोग कहते हैं जाओ--ये दोनों ही मंदिर से बंधे हुए हैं। इन दोनों का चित्त एक ही परतंत्रता के दो पहलू हैं। स्वयं का इन दोनों के भीतर कुछ भी नहीं है।

स्वतंत्रता "पर' से मुक्ति है। पक्ष में भी, विपक्ष में भी। "पर' के ऊपर ध्यान न रह जाए, स्वयं पर ध्यान हो। लेकिन मुश्किल से ही हमारा ध्यान स्वयं पर होता है।

दस भिक्षु सत्य की खोज में एक बार निकले थे। उन्होंने बहुत पर्वतों-पहाड़ों, आश्रमों की यात्रा की। लेकिन उन्हें कोई सत्य का अनुभव न हो सका। क्योंकि सारी यात्रा बाहर हो रही थी। किन्हीं पहाड़ों पर, किन्हीं आश्रमों में, किन्हीं गुरुओं के पास खोज चल रही थी। जब तक खोज किसी और की तरफ चलती है, तब तक उसे पाया भी कैसे जा सकता है, जो स्वयं में है।

आखिर में थक गए और अपने गांव वापस लौटने लगे। वर्षा के दिन थे, नदी बहुत पूर पर थी। उन्होंने नदी पार की। पार करने के बाद सोचा कि गिन लें, कोई खो तो नहीं गया। गिनती की, एक आदमी प्रतीत हुआ खो गया है, एक भिक्षु डूब गया था। गिनती नौ होती थी। दस थे वे। दस ने नदी पार की थी। लौटकर बाहर आकर गिना, तो नौ मालूम होते थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने को गिनना छोड़ जाता था, शेष सबको गिन लेता था। वे रोने बैठ गए। सत्य की खोज का एक साथी खो गया था।

एक यात्री उस राह से निकलता था, दूसरे गांव तक जाने को। उसने उनकी पीड़ा पूछी, उनके गिरते आंसू देखे। उसने पूछा, क्या कठिनाई है? उन्होंने कहा, हम दस नदी में उतरे थे, एक साथी खो गया, उसके लिए हम रोते हैं। कैसे खोजें? उसने देखा वे दस ही थे। वह हंसा और उसने कहा, तुम दस ही हो, व्यर्थ की खोज मत करो और अपने रास्ते चला गया।

उन्होंने फिर से गिनती की कि हो सकता है, उनकी गिनती में भूल हो। लेकिन उस यात्री को पता भी न था। उनकी गिनती में भूल न थी, वे गिनती तो ठीक ही जानते थे। भूल यहां थी कि कोई भी अपनी गिनती नहीं करता था। उन्होंने बहुत बार गिना, फिर भी वे नौ ही थे।
और तब उनमें से एक भिक्षु नदी के किनारे गया। उसने नदी में झांककर देखा। एक चट्टान के पास पानी थिर था। उसे अपनी ही परछाईं नीचे पानी में दिखाई पड़ी। वह चिल्लाया, उसने अपने मित्रों को कहा; आओ, जिसे हम खोजते थे, वह मौजूद है। दसवां साथी मिल गया है। लेकिन पानी बहुत गहरा है और उसे हम शायद निकाल न सकेंगे। लेकिन उसका अंतिम दर्शन तो कर लें। एक-एक व्यक्ति ने उस चट्टान के पास झांककर देखा, नीचे एक

भिक्षु मौजूद था। सबकी परछाईं नीचे बनती उन्हें दिखाई पड़ी। तब इतना तो तय हो गया, इतने डूबे पानी में वह मर गया है।

वे उसका अंतिम संस्कार कर रहे थे। तब वह यात्री फिर वापस लौटा, उसने पूछा कि यह चिता किसके लिए जलाई हुई है? यह क्या कर रहे हो? उन नौ ही रोते भिक्षुओं ने कहा, मित्र हमारा मर गया है। देख लिया हमने गहरे पानी में डूबी है उसकी लाश। निकालना तो संभव नहीं है। फिर वह मर भी गया होगा, हम उसका अंतिम दाह-संस्कार कर रहे हैं।

उस यात्री ने फिर से गिनती की और उनसे कहा, पागलो! एक अर्थ में तुम सबने अपना ही दाह-संस्कार कर लिया है। तुमने जिसे देखा है पानी में, वह तुम्हीं हो। लेकिन पानी में देख सके तुम, लेकिन स्वयं में न देख सके! प्रतिबिंब को पकड़ सके जल में, लेकिन खुद पर तुम्हारी दृष्टि न जा सकी! तुमने अपना ही दाह-संस्कार कर लिया। और दसों ने मिलकर उस दसवें को दफना दिया है, जो खोया ही नहीं था।

उसकी इस बात के कहते ही उन्हें स्मरण आया कि दसवां तो मैं ही हूं। हर आदमी को खयाल आया कि वह दसवां आदमी तो मैं ही हूं। और जिस सत्य की खोज वे पहाड़ों पर नहीं कर सकते थे, अपने ही गांव लौटकर वह खोज पूरी हो गई। वे दसों ही जाग्रत होकर, जान कर, गांव वापस लौट आए थे।

उन दस भिक्षुओं की कथा ही हम सभी की कथा है। एक को भर हम छोड़ जाते हैं--स्वयं को। और सब तरफ हमारी दृष्टि जाती है--शास्त्रों में खोजते हैं, शब्दों में खोजते हैं; शास्ताओं के वचनों में खोजते हैं; पहाड़ों पर, पर्वतों पर खोजते हैं; सेवा में, समाज सेवा में; प्रार्थना में, पूजा में खोजते हैं। सिर्फ एक व्यक्ति भर इस खोज से वंचित रह जाता है--वह दसवां आदमी वंचित रह जाता है, जो कि हम स्वयं हैं।

स्वतंत्रता का अर्थ है--इस स्वयं को जानने से जो जीवन उपलब्ध होता है, उसका नाम स्वतंत्रता है। स्वतंत्र होना इस जगत में सबसे दुर्लभ बात है। स्वतंत्र वही हो सकता है, जो स्वयं को जानता हो। जो स्वयं को नहीं जानता, वह परतंत्र हो सकता है या स्वच्छंद हो सकता है, लेकिन स्वतंत्र नहीं।

तो जिस स्वतंत्रता की सुबह मैंने बात की है, वह स्वयं को जाने बिना पूरी तरह फलित नहीं हो सकती। लेकिन उस तरफ चलने के लिए परतंत्रता को तोड़ देना जरूरी है। और स्मरण रखें, जिसके चित्त से परतंत्रता पूरी तरह विलीन हो जाती है, उसके चित्त से स्वच्छंदता भी अपने आप विलीन हो जाती है। क्योंकि स्वच्छंदता परतंत्रता की छाया, शेडो से ज्यादा नहीं है।

यह सारे जगत में जो स्वच्छंदता दिखाई पड़ रही है, यह हजारों वर्षों की परतंत्रता का फल है। आपके तथाकथित ऋषियों-मुनियों, साधु-संतों, महात्माओं का इसमें हाथ है। जिनने भी मनुष्य के चित्त को परतंत्र बनाया है, उनने ही मनुष्य को अब मजबूर कर दिया स्वच्छंद होने को। ये एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। और मनुष्य को आज तक स्वतंत्र बनाने का कोई प्रयास नहीं हुआ है। तो भय हमारे मन में होता है कि अगर हम स्वतंत्र हुए तो कहीं स्वच्छंद न हो जाएं।

स्वतंत्र मनुष्य कभी स्वच्छंद हुआ ही नहीं है। आज तक जमीन पर यह घटना घटी ही नहीं है कि स्वतंत्र चित्त व्यक्ति कभी स्वच्छंद हुआ हो। स्वच्छंद होता है परतंत्र चित्त ही। परतंत्र चित्त जब क्रोध से भर जाता है तो स्वच्छंद हो जाता है।

हमारे, सभी नई पीढ़ियों के युवक आज क्रोध से भरे हैं। और इसलिए स्वच्छंद होते जा रहे हैं। इसमें आपका हाथ है--उनकी स्वच्छंदता में। यह हजारों वर्ष की मनुष्य के मन पर लादी गई दासता का हाथ है उसमें। जब तक हम इस सत्य को न समझेंगे, तब तक न तो हम मनुष्य को परतंत्रता से बचा सकते हैं और न स्वच्छंदता से। एक व्हिशियस सर्किल शुरू होता है।

परतंत्र चित्त स्वच्छंद होना चाहता है। स्वच्छंद चित्त को देखकर हम घबड़ाते हैं और परतंत्रता को थोपने की कोशिश करते हैं। जितनी हम परतंत्रता थोपते हैं, उतनी स्वच्छंदता प्रतिक्रिया में पैदा होती है। जितनी स्वच्छंदता पैदा होती है, उतने हम भयभीत हो जाते हैं और परतंत्रता के नए आयोजन करते हैं। ऐसा एक दुष्ट-चक्र हजारों वर्ष से मनुष्य के ऊपर चल रहा है। अब यह शायद अंतिम घड़ी में पहुंच गया है। शायद परतंत्रता इतनी गहरी हो गई है कि उसके परिणाम में आदमी अब सब भांति स्वच्छंद हो जाना चाहता है।

चित्त को हम जितना दबाते हैं, उतनी उसकी प्रतिक्रियाएं, उसके रिएक्शंस होने शुरू होते हैं। एक फकीर था नसरुद्दीन। एक सांझ अपने घर से निकलता था। किन्हीं दोत्तीन मित्रों के घर उसे मिलने जाना था। निकला ही था घर से कि उसका एक मित्र जलाल, दूर गांव से द्वार पर आकर उपस्थित हो गया। नसरुद्दीन ने कहा, तुम घर में ठहरो, मैं जरूरी काम से दोत्तीन मित्रों को मिलने जाता हूं, लौटकर फिर तुम्हारी सेवा-सत्कार कर सकूंगा। और तुम चाहो, थके न हो तो मेरे साथ तुम भी चल सकते हो।

जलाल ने कहा, मेरे कपड़े सब धूल-धूसरित हो गए रास्ते में। पसीने से मैं लथपथ हूं। अगर तुम कपड़े मुझे दूसरे दे दो तो मैं तुम्हारे साथ चलूं। यहां बैठकर मैं क्या करूंगा? अच्छा होगा, तुम्हारे मित्रों से मिलना हो सकेगा।

नसरुद्दीन ने अपने बहुमूल्य, जो कपड़े उसके पास श्रेष्ठतम थे, उसे दिए और वे दोनों मित्र गए। पहले घर में पहुंचे। नसरुद्दीन ने वहां कहा, ये हैं मेरे मित्र जलाल, इनसे आपका परिचय करा दूं। रहे कपड़े, कपड़े मेरे हैं। मित्र बहुत हैरान हुआ। इस सत्य को कहने की कोई भी जरूरत न थी। और यह क्या बेहूदी बात थी कि उसने कहा कि ये हैं मेरे मित्र जलाल और रहे कपड़े, कपड़े मेरे हैं। बाहर निकलते ही जलाल ने कहा, पागल तो नहीं हो तुम? कपड़ों की बात उठाने की क्या जरूरत थी? अब देखो, दूसरे घर में कपड़ों की कोई बात मत उठाना।

दूसरे घर में वे पहुंचे। नसरुद्दीन ने कहा, इनसे परिचय करा दूं। ये हैं मेरे पुराने मित्र जलाल, रही कपड़ों की बात, सो इनके ही हैं, मेरे नहीं हैं। जलाल हैरान हुआ। बाहर निकलकर उसने कहा, तुम्हें हो क्या गया है? इस बात को उठाने की कोई भी जरूरत नहीं थी कि कपड़े किसके हैं? और यह कहना भी कि इनके ही हैं, शक पैदा करता है, इसके उठाने की जरूरत क्या थी?

नसरुद्दीन ने कहा, मैं मुश्किल में पड़ गया। वह पहली बात मेरे मन में गूंजती रह गई, उसका रिएक्शन हो गया, उसकी प्रतिक्रिया हो गई। सोचा कि गलती हो गई--मैंने कहा, कपड़े मेरे हैं तो मैंने कहा, सुधार कर लूं, कह दूं कि कपड़े इन्हीं के हैं। उसके मित्र ने कहा, अब इसकी बात ही न उठे। यह बात खतम हो जानी चाहिए।

वे तीसरे मित्र के घर में पहुंचे। नसरुद्दीन ने कहा, ये हैं मेरे मित्र जलाल। रही कपड़ों की बात, सो उठाना उचित नहीं है। अपने मित्र से पूछा ठीक है न, कपड़ों की बात उठानी बिलकुल उचित नहीं है। कपड़े किसी के भी हों--क्या लेना-देना--मेरे हों कि इनके हों। कपड़ों की बात उठानी उचित ही नहीं है। बाहर निकलकर उसके मित्र ने कहा, अब मैं तुम्हारे साथ और नहीं जा सकूंगा। मैं हैरान हूं, तुम्हें हो क्या रहा है!

उस नसरुद्दीन ने कहा, मैं अपने ही जाल में फंस गया हूं। मेरे भीतर--जो मैं कर बैठा, उसकी प्रतिक्रियाएं हुई चली जा रही हैं। मैंने सोचा कि ये दोनों बातें भूल हो गईं, कि मैंने अपना कहा और तुम्हारा कहा। तो फिर मैंने कहा कि अब मुझे कुछ भी नहीं कहना चाहिए, यही सोचकर भीतर गया था। लेकिन बार-बार यह होने लगा कि यह कपड़ों की चर्चा उठानी बिलकुल उचित नहीं है। और उन दोनों की प्रतिक्रिया यह हुई कि मेरे मुंह से यह निकल गया और जब निकल गया तो समझाना जरूरी हो गया कि कपड़े किसी के भी हों, क्या लेना-देना।

यह जो नसरुद्दीन जिस मुसीबत में फंस गया होगा बेचारा, पूरी मनुष्य जाति ऐसी मुसीबत में फंसी है। एक सिलसिला, एक गलत सिलसिला शुरू हो गया है। और उस गलत सिलसिले के हर कदम पर और गलती बढ़ती चली जाती है। जितना हम उसे सुधारने की कोशिश करते हैं, वह बात उतनी ही उलझती चली जाती है।

स्वच्छंदता के भय से परतंत्रता थोपते हैं। परतंत्रता की प्रतिक्रिया में स्वच्छंदता पैदा होती है। फिर और थोपते हैं, फिर और पैदा होती है। और एक जाल पैदा हो गया है, जिसे अगर

हम तोड़ेंगे नहीं तो मनुष्य जाति इस अपने ही हाथ से बनाए जाल में नष्ट हो सकती है। करीब-करीब नष्ट हो ही गई है। और मनुष्य जाति नष्ट हुई हो या न हुई हो, एक-एक मनुष्य तो जीवित नहीं रह गया है, इस जाल में करीब-करीब मृत हो गया है।

स्वच्छंदता और परतंत्रता दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। अगर यह समझ में आ जाए बात तो खयाल में आ सकता है कि स्वतंत्रता बात ही और है।

स्वतंत्रता विद्रोह नहीं है। स्वतंत्रता रिबेलियन नहीं है--स्वतंत्रता एक रिवल्यूशन है, एक क्रांति है। विद्रोह किसी के खिलाफ होता है। और जिसके खिलाफ हम खड़े होते हैं, हम उससे बंध जाते हैं। क्योंकि उसका विरोध करना होता है। उसके विरोध के कारण हमारा उससे एक संबंध हो जाता है, एक रिलेशनशिप हो जाती है। और उस विरोधी को देखकर हम निरंतर कदम उठाते हैं।

हिंदुस्तान में मुसलमान आए और उन्होंने मंदिर तोड़ने शुरू कर दिए। मंदिर तोड़ने की वजह से वे मंदिरों से बंध गए--उतने ही जितने कि मंदिरों को बनाने वाले बंधे हुए थे। वे मंदिरों से मुक्त न रह सके। मंदिर उनके प्राण लेने लगे, सपनों में उन्हें सताने लगे। उनका चित्त मंदिरों पर घूम-घूमकर पहुंचने लगा--उतना ही जितना कि उनका पहुंचता होगा जो कि मंदिरों को बनाते हैं, शायद उनसे ज्यादा।

मूर्ति को बनाने वाला, मूर्ति को तोड़ने वाला--दोनों मूर्ति के भक्त होते हैं। एक मित्र-भक्त होता है, एक शत्रु-भक्त होता है। लेकिन दोनों का चित्त वहीं घूमता रहता है। जिससे हम विरोध करते हैं, हम उससे बंध जाते हैं। और बंधने के कारण हम उस विरोधी के ही एक रूपांतर होते हैं, एक माडी फिकेशन होते हैं।

स्वतंत्रता विद्रोह नहीं है, क्रांति है।

क्रांति की बात ही अलग है। क्रांति का अर्थ है: दूसरे से कोई प्रयोजन नहीं है। हम किसी के विरोध में स्वतंत्र नहीं हो रहे हैं। क्योंकि विरोध में हम स्वतंत्र होंगे, तो वह स्वच्छंता हो जाएगी। हम दूसरे से मुक्त हो रहे हैं--न उससे हमें विरोध है, न हमें उसका अनुगमन है। न हम उसके शत्रु हैं, न हम उसके मित्र हैं--हम उससे मुक्त हो रहे हैं। और यह मुक्ति, पर से मुक्ति, जिस ऊर्जा को जन्म देती है, जिस डायमेंशन को, जिस दिशा को खोल देती है, उसका नाम स्वतंत्रता है।

उस पर हम इधर तीन दिनों में और अनेक-अनेक कोणों से उसे समझने की कोशिश करेंगे।

लेकिन एक बात खयाल में ले लें, स्वतंत्रता किसी का विरोध नहीं है। स्वतंत्रता अपनी उपलब्धि है, किसी का विरोध नहीं है। स्वतंत्रता कोई प्रतिक्रिया नहीं, कोई रिएक्शन नहीं है, बल्कि स्वयं के जीवन का आविर्भाव है।

आप मुझसे कहें कि मैं एक गीत गाऊं और मैं गीत गाऊं, तो मैं आपसे बंधा हूं। आप मुझसे कहें एक गीत गाएं, इसलिए मैं न गाऊं तो भी मैं आपसे बंधा हूं। लेकिन गीत आपकी बिना फिक्र किए--आपके कहने की या न कहने की--मेरे प्राणों से निकले और गूंज उठे तो मैं स्वतंत्र हूं।

स्वतंत्रता मेरे भीतर से आने वाला तत्व है, आप से आने वाला नहीं। और स्वतंत्रता में ही हम आत्मा को जानने में समर्थ हो पाते हैं। क्योंकि स्वतंत्रता सब बाहर के आरोपण, बाहर के आवरण, बाहर की जबर्दस्तियां, बाहर की प्रतिक्रियाएं--इन सबके गिर जाने पर उपलब्ध होती है। और उस स्वतंत्रता की भूमि में ही स्वयं का, निज का, क्रमशः दर्शन उपलब्ध होता है।
स्वतंत्रता के लिए इसलिए मैंने सुबह आप से बात की है।

उसी संबंध में एक मित्र ने और पूछा है।
मैंने कहा कि हम सभी शास्त्रों से स्वतंत्र हो जाएं?

तो शायद उन्हें लगा होगा कि मैं शास्त्रों का विरोधी हूं। शास्त्र तो इतने व्यर्थ हैं कि उनके विरोध करने की भी कोई जरूरत नहीं। विरोध करने से भी उनको बल मिलता है। विरोध भी हम उसका करते हैं, जिसमें कोई जीवन हो, जान हो। छायाओं का कौन विरोध करेगा? प्रतिध्वनियों का कौन विरोध करेगा?
शास्त्रों का मैं विरोधी नहीं हूं, क्योंकि अगर मैं विरोधी हो जाऊं तो मैं शास्त्रों का किसी न किसी रूप में प्रचारक हो गया। क्योंकि विरोध भी प्रचार है। और सच्चाई तो यह है कि आज तक दुनिया में हमेशा विरोध ही प्रचार सिद्ध हुआ है।
क्राइस्ट को अगर कुछ नासमझ यहूदियों ने न मारा होता, तो शायद क्रिश्चिनिटि कहीं भी न होती। वह विरोध प्रचार बन जाता है।
मैं कोई शास्त्र का विरोधी नहीं हूं। शास्त्र इतनी व्यर्थ चीजें हैं कि उनका विरोध मैं क्यों करूंगा। विरोध ही करना होगा, तो और किसी चीज का कर सकता हूं। शास्त्र--बेजान, मुर्दा उनसे क्या विरोध करना है।
जो मैंने कहा, वह इसलिए नहीं कि मैं शास्त्र विरोधी हूं, बल्कि इसलिए कि मैं सत्य का प्रेमी हूं। और सत्य, शब्दों से न कभी मिला है और न मिल सकता है। वे शब्द चाहे वेद के हों, चाहे गीता के, चाहे बाइबिल के, चाहे मेरे, चाहे किसी और के--शब्दों से कभी कोई सत्य उपलब्ध नहीं हो सकता है। सत्य तो वहां उपलब्ध होता है, जहां चित्त निःशब्द हो जाता है। जहां चित्त में कोई शब्द नहीं रह जाते।
तो सभी शास्त्र शब्द हैं। और शब्दों को अगर हम आग्रह से पकड़ेंगे तो हम निःशब्द कभी भी न हो सकेंगे, हम मौन कभी भी न हो सकेंगे। हमारे भीतर से सारे शब्दों की गूंज, अनुगूंज कभी समाप्त न हो सकेगी। गीता गूंजती ही रहेगी, वेद गूंजते ही रहेंगे, उपनिषद गूंजते ही रहेंगे। और ये जो प्रतिध्वनियां हैं हमारे चित्त में, ये कभी हमें उस शून्य को उपलब्ध न होने देंगी, जहां सत्य का साक्षात हो सकता है।
शास्त्रों को पकड़ लेने वाला चित्त फोटोग्राफ की तरह है। कोई कैमरे से आपका चित्र उतार लेता है, तो भीतर जो फिल्म है वह पकड़ लेती है उस चित्र को। पकड़ते से ही व्यर्थ हो जाती है, फिर उसका कोई और उपयोग नहीं रह जाता।

दर्पण पर भी आपका चित्र बनता है, लेकिन दर्पण पकड़ता नहीं है। इसलिए आप हट जाते हैं, दर्पण फिर खाली और मौन हो जाता है। इसलिए दर्पण निरंतर उपयोगी बना रहता है। दर्पण निरंतर जीवित बना रहता है।

फोटोग्राफ एक दफे में खतम हो जाता है। और अगर एक ही फोटोग्राफ पर हम कई चित्र ले लें, तब तो फिर समझना ही मुश्किल हो जाता है कि वहां क्या है।

हमारे चित्त ने बहुत से शास्त्रों को फोटोग्राफ की तरह पकड? लिया है, इसलिए समझना मुश्किल हो गया है कि भीतर क्या है। सब पकड़ लिए गए हैं। और उनकी गूंज की वजह से भीतर जो छिपा है, उसका कोई अनुभव, उसकी कोई प्रतीति नहीं हो पाती है।

मैंने यह नहीं कहा कि आप शास्त्र न पढ़ें। मैंने यह नहीं कहा कि आप शास्त्र न समझें। मैंने यह कहा कि आप दर्पण की तरह हों। उनकी कोई रेखा, उनके कोई शब्द, उनकी कोई गूंज आपके ऊपर न छूट जाए। आप दर्पण की तरह, मिरर की तरह हमेशा खाली हो जाएं तो जीवन को जानने की क्षमता आपकी निरंतर कायम रहेगी। अन्यथा आप शब्दों में जकड़ जाएंगे और जीवन को जानने से वंचित रह जाएंगे।

शब्द छाया से ज्यादा नहीं हैं। अगर मैं रास्ते पर चल रहा हूं, और अगर आप मेरी छाया में ही उलझ जाएं तो निश्चित है कि आप फिर मुझे नहीं देख सकेंगे। मेरी छाया पर ही आपकी आंख होगी तो मुझ पर कैसे आंख हो सकती है? मेरी छाया को आप छोड़ेंगे, तो शायद मुझे आप देख सकें। और मुझे देख सकेंगे, उस दिन आप पाएंगे छाया तो थी ही नहीं, मैं था। छाया तो छाया ही थी, शेडो ही थी, उसमें कोई सबस्टेंस न था।

सभी शास्त्र, जिन लोगों को सत्य अनुभव हुआ, उनकी छाया से ज्यादा नहीं है। उन छायाओं को पकड़ लेंगे आप तो वंचित रह जाएंगे सबस्टेंस से। वंचित रह जाएंगे उससे, जिसकी शास्त्र छाया बने हैं। सत्य के अनुभव की छाया की गूंज शब्दों में रह जाती है। हम उन्हीं को पकड़कर बैठ जाते हैं। जो शास्त्र को पकड़ लेता है, वह सत्य का शत्रु हो जाता है। इसलिए मैंने कहा, शास्त्र से मुक्त हो जाएं, छाया से मुक्त हो जाएं।

कृष्ण ने जो जाना होगा, गीता शायद उसकी छाया है, शेडो है। वही तो नहीं है जो कृष्ण ने जाना था। उसे तो प्राणों से निकालकर बाहर लाने का कोई उपाय नहीं है। जो जाना था, शब्दों में छाया की तरह गूंज गया। और फिर हजारों वर्षों में यह छाया भी खूब विकृत होती चली गई। क्योंकि इन हजारों वर्षों में, हजारों टीकाकार इस छाया के उपलब्ध हो गए।

टीकाकार शास्त्रों की हत्या करने में ऐसे कुशल लोग रहे हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं है। छाया पर, और टीकाकारों की छायाएं सम्मिलित हो गईं। टीकाकारों पर, और भी उनके टीकाकार पैदा हुए। एक-एक ग्रंथ पर टीका पर टीका, और टीका पर टीका होती चली गई। अब हमारे हाथ में--एक छायाओं का स्वप्नजाल हाथ में रह गया। उसी को पकड़कर जो रुक जाएगा, वह सत्य तक नहीं पहुंच सकता।

छाया छोड़नी पड़ेगी और उस दिशा में खोज करनी पड़ेगी, जहां से छाया आती है, जहां से छाया बनती है। अगर हम छाया को छोड़ते चले जाएं उस दिशा में, जहां से छाया का जन्म

होता है--तो शायद हम सत्य पर पहुंच जाएं। शास्त्र को पकड़कर कोई सत्य पर नहीं पहुंचेगा। शास्त्र को जितना छोड़ेगा, उतना शास्त्र के पीछे हटेगा। शब्द को छोड़ेगा, निःशब्द की तरफ बढ़ेगा--किसी दिन उसे सत्य उपलब्ध हो सकता है।

शास्त्रों से ज्यादा सत्य के मार्ग में और कोई बाधा नहीं है। लेकिन हमें बड़ी चोट पहुंचती है।

सुबह एक मित्र ने आकर कहा, वेद आप कहते हैं सत्य नहीं हैं?

उन्हें पीड़ा पहुंची होगी। इसलिए नहीं कि वेद सत्य नहीं हैं। बल्कि इसलिए कि वेद उनका शास्त्र है।

एक मुसलमान को कोई चोट न पहुंचेगी इस बात से कि वेद में कुछ भी नहीं है। क्योंकि वेद उसका शास्त्र नहीं है। एक हिंदू को कोई चोट न पहुंचेगी, कह दिया जाए कुरान में कोई सत्य नहीं है। वह प्रसन्न होगा बल्कि कि बहुत अच्छा हुआ कि कुरान में कोई सत्य नहीं, यह तो हम पहले से ही कहते थे। यह तो प्रसन्नता की बात है। लेकिन एक मुसलमान को चोट पहुंचेगी। क्यों? क्या इसलिए कि कुरान में सत्य नहीं है? बल्कि इसलिए कि कुरान उसका शास्त्र है।

शास्त्रों के साथ हमारे अहंकार जुड़ गए हैं, हमारे इगो जुड़ गए हैं। मेरा शास्त्र! शास्त्र की कोई फिक्र नहीं है, मेरे को चोट पहुंचती है।

और बड़ा मजा यह है कि वेद आपका शास्त्र कैसे हो गया? क्योंकि आप एक समूह में पैदा हुए, जहां बचपन से एक प्रपोगेंडा चल रहा है कि वेद आपका शास्त्र है। अगर आप दूसरे समूह में पैदा होते, और वहां प्रपोगेंडा चलता होता कि कुरान आपका शास्त्र है, तो आप कुरान को शास्त्र मान लेते। आप किसी तरह के प्रचार के शिकार हैं।

हम सभी किसी तरह के प्रचार के शिकार हैं। अगर हिंदू घर में पैदा हुए हैं, तो एक तरह के प्रपोगेंडिस्ट हवा में हमको बनाया गया है। जैन घर में पैदा हुए, दूसरी तरह की; ईसाई घर में तीसरी तरह की--रूस में पैदा हो जाएं, तो एक चौथे तरह की हवा में आपका निर्माण होगा। और आप यही समझेंगे कि यह जो प्रचार ने आपको सिखा दिया, यह आपका है।

जब तक आप यह समझते रहेंगे कि प्रचार जो सिखाता है वह आपका है, तब तक आप शास्त्रों से मुक्त नहीं हो सकते। और जो आदमी प्रपोगेंडा और प्रचार से मुक्त नहीं होता, वह कभी सत्य को उपलब्ध नहीं हो सकता है। और प्रचार के सूत्र एक जैसे हैं--चाहे लक्स टायलेट साबुन बेचनी हो, चाहे कुरान--दोनों में कोई फर्क नहीं है। एडवरटाइजमेंट का रास्ता एक ही है, प्रपोगेंडा का रास्ता और सूत्र एक ही है।

धर्मगुरु बहुत चालाक लोग थे, उन्हें ये सूत्र पहले पता चल गए, व्यापारियों को बहुत बाद में पता चले। रेडियो पर रोज दोहराया जाता है कि सुंदर चेहरा बनाना हो तो फलां-फलां अभिनेत्री लक्स टायलेट का उपयोग करती है। अभिनेत्री के चेहरे में और लक्स टायलेट में एक संबंध जोड़ने की कोशिश की जाती है।

अगर सत्य को पाना हो, तो फलां-फलां ऋषि रामायण को पढ़कर सत्य पा गए। ऋषि में और रामायण में सत्य जोड़ने की कोशिश की जाती है। यह वही कोशिश है, जो अभिनेत्री

और लक्स टायलेट में की जाती है। अगर सुंदर होना हो तो, लक्स टायलेट खरीद लीजिए। और अगर सत्य पाना हो, तो फलां-फलां ऋषि ने, फलां-फलां किताब से पाया--आप भी उस किताब को खरीद लीजिए! उसके भक्त हो जाइए!

फिर रोज-रोज दोहराने से--आदमी का चित्त इतना कमजोर है कि रिपिटीशन को वह भूल जाता है कि यह क्या हो रहा है, रोज-रोज दोहराया जाता है। आपको पता भी नहीं है। रास्ते पर निकलते हैं, लक्स टायलेट सबसे अच्छा साबुन है, दरवाजे पर लिखा हुआ है। अखबार खोलते हैं, लक्स टायलेट सबसे अच्छा साबुन है। रेडियो चलाते हैं, लक्स टायलेट सबसे अच्छा साबुन है। रोज-रोज सुनते, जब एक दिन आप बाजार में जाते हैं दुकान पर साबुन खरीदने को, आप कहते हैं मुझे लक्स टायलेट साबुन चाहिए। और आपको पता नहीं कि यह आप नहीं कह रहे हैं, आप से कहलवाया जा रहा है। आपको लक्स टायलेट का पता भी नहीं था।

एक प्रपोगेंडा आपके चारों तरफ हो रहा है और आपके मुंह से, आपके कान में आवाज डाली जा रही है बार-बार, जो कि एक दिन आपके मुंह से निकलनी शुरू हो जाएगी, और आप इस भ्रम में होंगे कि मैंने लक्स टायलेट साबुन खरीदा। आपसे खरीदवा लिया गया है।

और जो लक्स टायलेट के संबंध में सही है; वही कुरान, बाइबिल, वेद, उपनिषद के संबंध में भी सही है। हम अदभुत रूप से प्रचार के शिकार हैं। सारी मनुष्य जाति शिकार है। और इस प्रचार में जितना आदमी बंध जाता है, उतना परतंत्र हो जाता है।

तो मैं शास्त्रों का विरोधी नहीं हूं, लेकिन यह आपको कह देना चाहता हूं कि आपको भी शास्त्रों से कोई मतलब नहीं है। आप सिर्फ प्रचार के शिकार हो गए हैं, और कुछ भी नहीं है। आपके घर में, हिंदू घर में एक बच्चा पैदा हो, उसको मुसलमान के घर में रख दीजिए। वह बड़े होने पर वेद को ईश्वरीय वाणी नहीं कहेगा, हालांकि हिंदू घर में पैदा हुआ था, खून हिंदू था। सच तो यह है कि पागलपन की बातें हैं। खून भी कहीं हिंदू होता है? कि हड्डियां हिंदू होती हैं, मुसलमान होती हैं? हिंदू होना भी एक प्रचार है। वह मुसलमान घर में रखा गया, मुसलमान हो जाएगा। ईसाई घर में रखा गया, ईसाई हो जाएगा।

इसीलिए सभी धर्मगुरु बच्चों में बहुत उत्सुक होते हैं। स्कूल खोलते हैं, धर्म-स्कूल खोलते हैं, क्योंकि बच्चे मौका हैं, जहां प्रचार को दिमाग में डाला जा सकता है, और जीवनभर के लिए उन्हें गुलाम बनाया जा सकता है। जब तक जमीन पर एक भी ऐसा स्कूल है, जो धर्म की शिक्षा देता है, तब तक जमीन पर बहुत बड़े पाप चलते रहेंगे; क्योंकि बच्चों को जकड़ने की, गुलाम बनाने की वहां सारी योजना की जा रही है।

तो मैंने जो कहा, इसलिए नहीं कहा कि किन्हीं किताबों से मुझे कोई दुश्मनी है, मुझे किताबों से क्या लेना-देना। लेकिन सच्चाइयां तो समझ लेनी जरूरी हैं।

उन्हीं मित्र ने, एक और मित्र ने पूछा है, कि हमारे संत-महात्मा, ऋषि-मुनि जो कहते हैं, क्या वह सब गलत है?

मैंने तो नहीं कहा कि वह सब गलत है। मैंने तो इतना ही कहा कि आप उसे पकड़ लें, तो यह पकड़ लेना गलत है। ऋषि-मुनियों से मुझे कोई वास्ता नहीं। क्योंकि ऋषि-मुनि बड़े खतरनाक होते हैं, उनसे वास्ता रखना खतरनाक है। अभी हिंदुस्तान के ऋषि-मुनि और शंकराचार्य हाइकोर्टों में मुकदमा लड़ते हैं। उनसे दोस्ती रखना, उनकी बात ही करना खतरनाक है।

लेकिन आप किसको ऋषि कहने लगते हैं, किसको मुनि कहने लगते हैं, और कैसे? और कैसे आप पता लगा लेते हैं? आपके पास जांच क्या है? मापदंड क्या है? आपके पास कसौटी क्या है कि फलां आदमी ऋषि है और मुनि है? सिवाय प्रपोगेंडा के और तो कोई कसौटी नहीं मालूम पड़ती।

रामकृष्ण को हिंदू तो कहेंगे कि परमहंस हैं। लेकिन किसी जैन से पूछें? वे कहेंगे, कैसे परमहंस? मछली खाते हैं! उसकी कसौटी में बिलकुल न उतरेंगे। वे कहेंगे, इनसे तो एक साधारण जैनी अच्छा, कम से कम मछली तो नहीं खाता, मांसाहार तो नहीं करता। ये कैसे संत! ये किस प्रकार के संत हैं?

अगर एक दिगंबर जैन से पूछो कि क्राइस्ट ज्ञान को उपलब्ध हो गए हैं। वे कहेंगे, कैसे उपलब्ध हो गए हैं? महावीर तो नग्न खड़े हुए हैं, यह आदमी तो कपड़े पहने हुए है! तो कपड़े पहने हुए आदमी भी कहीं ज्ञान को उपलब्ध हो सकता है! झूठी है यह बात। यह नहीं हो सकता।

कसौटियां भी हमारे हजारों साल के प्रचार से निर्मित हो गई हैं। और जिसको बचपन से जो कसौटी पकड़ गई है, वह उसी पर तौल रहा है कि कौन ऋषि है, कौन मुनि है! अपना हमें पता नहीं कि हम क्या हैं! और हम यह भी तय कर लेते हैं कि कौन ऋषि है, कौन मुनि है, कौन परमहंस है, कौन ज्ञानी है! और झगड़ते भी हैं इस बात पर कि फलां आदमी तीर्थंकर है, और फलां आदमी भगवान का अवतार है, फलां आदमी ईश्वर का पुत्र है। और अगर कोई इनकार कर दे तो यह झगड़े की बात है! कैसे आप पता लगा लेते हैं, किसने आपको बताया?

मेरे एक मित्र थे। एक छोटे-मोटे महात्मा थे वे भी। ऐसे महात्मा हमारे यहां होते ही हैं। वे एक गांव में चंदा मांगने गए थे। मैं भी उस गांव में था। उन्होंने चंदा दिनभर मांगा, वे कोई पंद्रह-बीस रुपए मुश्किल से इकट्ठा कर पाए। वे मुझसे बोले कि इससे ज्यादा तो कुछ होता नहीं। मैंने कहा, आप बिलकुल गलत ढंग से चंदा वसूल करते हैं--आपको कौन चंदा देगा? पहले ऋषि-मुनि हो जाइए, फिर चंदा मिल सकता है।

मैंने उनसे कहा, दस-पंद्रह लोगों को पहले कहिए कि एक महात्मा जी आए हुए हैं। सारे गांव में खबर करिए कि महात्मा जी आए हैं। फिर दस-पच्चीस लोग आपके साथ जाएं कि महात्मा जी आए हैं, फिर चंदा हो सकता है।

उनको बात समझ में आ गई। उनके दस-पंद्रह लोगों ने गांव में प्रचार किया कि एक बहुत बड़े महात्मा आए हुए हैं। जिन दुकानों पर उनको चार आने बामुश्किल से दुकानदार ने दिए

थे, इसलिए ताकि ये यहां से हटें, उसी दुकान पर उनको बहुत रुपए भी मिले, उसने पैर भी छुए, उनके गले में माला भी डाली! वे तो...उन्होंने दो-चार-आठ दिन में वहां सैकड़ों रुपए इकट्ठे किए।

तो मैंने उनसे कहा, आदमी को रुपए नहीं मिलते, ऋषि-मुनि को मिलते हैं। और ऋषि-मुनि प्रपोगेंडा के बिना तैयार नहीं होता, उसको तैयार करना पड़ता है। उसकी हवा फैलानी पड़ती है, उसका प्रचार करना पड़ता है, उसको बताना पड़ता है कि ये महात्मा हैं, परम-ज्ञानी हैं; यह है, वह है। और जैसे लक्स टायलेट को बनाना पड़ता है, वैसे उसको बनाना पड़ता है।

प्रचार के इस खेल को, इस जाल को--समझदार आदमी को अपने चित्त से तोड़ देना चाहिए।

मार्क ट्वेन ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि मैं एक बहुत बड़े नगर में बोलने गया। कुछ मित्रों से गपशप करने में सांझ हो गई, बोलने का वक्त करीब आ गया और मैं उस दिन भूल ही गया दाढ़ी बनाना तो मैं एक नाईबाड़े में गया। नाई दुकान बंद ही कर रहा था। मैंने उससे कहा कि भाई एक दो क्षण रुक जाओ, मेरी दाढ़ी बना दो। उसने कहा, क्षमा करिए, मैं मार्क ट्वेन का भाषण सुनने जा रहा हूं। और मेरे मन में इतना आदर है उस व्यक्ति के लिए कि अब मैं एक क्षण भी यहां नहीं रुक सकता। अगर वहां देर से पहुंचा तो शायद हाल के बाहर ही खड़ा रहना पड़े, या भीतर भी घुस जाऊं तो खड़ा रहना पड़े। मैं जल्दी ही जाना चाहता हूं। आप क्षमा करें, आप कहीं और बाल बनवा लें।

मार्क ट्वेन ने कहा, ठीक ही कहते हो, यह मार्क ट्वेन का बच्चा जहां भी भाषण करता है, वहां जो लोग देर से पहुंचते हैं, उनको तो खड़ा रहना ही पड़ता है, लेकिन मुझे हमेशा ही खड़ा रहना पड़ता है। उसने कहा, मार्क ट्वेन का बच्चा! मार्क ट्वेन ने कहा, तो उस नाई को गुस्सा आ गया। उसने कालर पकड़ लिया। और उसने कहा, सम्हलकर बोलो। मार्क ट्वेन का मैं बहुत आदर करता हूं, इस तरह नहीं बोल सकते हो।

मार्क ट्वेन ने लिखा है--कि मैं खुद ही मार्क ट्वेन हूं, वह मेरा गला पकड़ लिया। लेकिन मार्क ट्वेन और ही बात है उसके मन में। वह एक प्रपोगेंडा और है, उससे इस आदमी का क्या संबंध?

जिन ऋषि-मुनियों की आप रोज पूजा करते हैं--आरती, वे अगर सड़क पर मिल जाएं, तो दो पैसा भी शायद ही आप उनको दें। बल्कि हो सकता है, पुलिस में रिपोर्ट करवा दें कि यह आदमी धोखा दे रहा है। जिसकी हम पूजा करते हैं, वह आदमी कहीं सड़क पर भीख मांग सकता है! यह धोखेबाज है कोई। एक प्रपोगेंडा होता है, एक हवा होती है।

चर्चिल ने लिखा है कि मैं एक दफा रेडियो से बोलने को था। एक स्टेशन पर उतरा। एक टैक्सी-ड्राइवर को कहा कि जल्दी मुझे रेडियो स्टेशन पहुंचा दो। उसने कहा, माफ करिए, मेरा प्यारा नेता चर्चिल आज रेडियो से बोलने को है। मैं अपने घर जा रहा हूं, रेडियो पर उसका भाषण सुनूंगा, आप कहीं और कोई टैक्सी कर लें।

चर्चिल बहुत खुश हुआ। इतना आदर एक टैक्सी-ड्राइवर भी उसका करता है। उसने खीसे में हाथ डाला, पांच पौंड के नोट निकालकर टैक्सी-ड्राइवर के हाथ में दिए--इनाम के तौर कि

यह मेरा इतना आदर करता है। टैक्सी-ड्राइवर ने कहा, भाड़ में जाए चर्चिल! मालिक तुम पीछे बैठो, और जहां चलना हो चलो।
चर्चिल को खयाल भी नहीं था कि यह पांच पौंड देने का यह फल होगा। चर्चिल से क्या लेना-देना है? चर्चिल का एक इमेज बना हुआ है, वह अलग ही है। इस आदमी से क्या मतलब?
प्रचार प्रतिमाएं खड़ी कर देते हैं, और फिर हम उनको हजारों साल तक पूजते रहते हैं। और जितना प्रचार लंबा होता जाता है, उतनी ही वे प्रतिमाएं दुर्गम होती जाती हैं, आकाश उठने लगती हैं। फिर वह आदमी नहीं रह जाते, धीरे-धीरे परमात्मा हो जाते हैं; भगवान, अवतार हो जाते हैं; और न मालूम क्या। और उनके इतने पागल भक्त पीछे होते हैं कि कोई शक करे तो जिंदगी खतरे में डाले। तो कौन कहे?

लेकिन बड़ी हैरानी है कि कभी हम सोचते भी नहीं कि हम निर्णायक कैसे हो जाते हैं कि कौन संत, कौन साधु? और फिर एक सरकुलर रीजनिंग शुरू होती है। मैं कुछ कहूंगा, तो आप कहेंगे, यह तो हमारे साधुओं ने नहीं कहा तो यह ठीक नहीं हो सकता। और अगर मैं पूछूं कि इनको आप साधु क्यों कहते हैं? तो आप कहेंगे, जो उन्होंने कहा, वह बिलकुल ठीक है, इसलिए हम उनको साधु कहते हैं।

साधु उनको इसलिए कहते हैं कि जो उन्होंने कहा, वह बिलकुल ठीक है? और जो उन्होंने कहा, वह बिलकुल ठीक होना ही चाहिए, क्योंकि वे साधु हैं? इस सारे चक्कर में आदमी का मन अत्यंत मूढ़तापूर्ण हो गया है।

तो मैंने जो सुबह आपसे कहा, वह इसलिए कहा कि चित्त की इस पूरी स्थिति पर सोचिए, विचार करिए कि हमारा चित्त क्या कर रहा है। हम कहीं प्रचार के शिकार तो नहीं हैं? हजारों वर्ष से चलने वाली, बार-बार दोहराई जाने वाली बातों के हम केवल गुलाम तो नहीं हैं? हमने भी कभी कुछ सोचा है, खोजा है, विचारा है--कोई कण भी हमारे अपने चिंतन का फल है, या कि हम केवल दोहराने वाले लोग हैं?

जब तक हम इस भांति दोहराने वाले लोग रहेंगे, तब तक कुछ कनिंग माइंडस, कुछ चालाक लोग हमारा शोषण करते ही रहेंगे। उन्होंने तरकीब पा ली है--वे दोहराने का उपाय जानते हैं। वे दोहराते हैं तरकीब से, प्रचार करते हैं और हम उसमें जकड़ जाते हैं।

आदमी को इस चुकता प्रचार के बाहर हो जाना चाहिए, तो ही वह आदमी धार्मिक हो सकता है। क्योंकि धार्मिक आदमी चिंतन करता है, सोचता है, अनुभव करता है--अंधे होकर मान नहीं लेता है। और हम सब अंधे हैं। हमने अंधे होकर सब बातें मान ली हैं।

इस निरंतर मानने का यह फल हुआ है कि हमारे भीतर जानने की, जिज्ञासा की हत्या हो गई। क्योंकि जानना तो तभी शुरू हो सकता है, जब हम मानने पर थोड़ा शक करें, संदेह करें, मानने को इनकार करें। कह दें अपने मन से कि हम नहीं मानेंगे--हम जानना चाहते हैं, हम खोजना चाहते हैं। अगर इतना बल और हिम्मत दिखाएं, तो शायद किसी दिन आप भी जान सकें, अन्यथा नहीं जान सकते।
और एक आदमी इस जाल में होता, तो कोई कठिनाई भी न थी। पूरे मनुष्य का मन इस जाल में ग्रसित है और यह जाल हटता नहीं, क्योंकि जाल के ठेकेदार और दावेदार बड़े फायदे में हैं इस जाल की वजह से। उनका बड़ा हित है, बड?ी उन्हें सुविधा है और उन्होंने हजारों वर्ष की जो दुकान लगा ली, उसकी बड़ी क्रेडिट है, उसका--उसका वे पूरा फायदा ले रहे हैं। तो कौन इसे तोड़ेगा?

और नहीं यह टूटेगा तो आदमी जैसा अब तक जीया है गुलाम, आगे भी उसे गुलाम ही जीना पड़ेगा। अब तक बहुत खतरा न था इस गुलामी से। अब खतरे बहुत बढ़ गए हैं, क्योंकि व्यापारियों को भी पता चल गया, राजनीतिज्ञों को भी पता चल गया कि आदमी को फंसाने के बड़े आसान रास्ते हैं। अब वे सब यही उपयोग कर रहे हैं।

हिटलर ने अपनी आत्मकथा में स्पष्ट ही लिखा है कि मैंने बहुत दिनों के अनुभव से यह जाना कि सत्य और असत्य में एक ही फर्क है। जो असत्य बहुत बार जनता के सामने दोहराया जाता है, वह सत्य हो जाता है। बस बार-बार दोहराने का सवाल है। फिक्र न करो, दोहराए चले जाओ, दोहराए चले जाओ। धीरे-धीरे वह मन भूल जाएगा कि यह बात सच थी। बार-बार सुनने से, परिचित होने से, खुद ही भूल जाएगा। यहां तक होता है कि जो आदमी खुद प्रचार करता है, जब बात बहुत प्रचारित हो जाती है, तो वह खुद शक में आ जाता है कि कहीं यह सच तो नहीं है।

ऐसा मैंने सुना है, एक दफे ऐसी घटना हो गई।

एक आदमी जो कि एक बहुत बड़ा विज्ञापन सलाहकार था, एक्सपर्ट था एडवरटाइजमेंट का, वह मरा। वह स्वर्ग के द्वार पर पहुंचा। ईसाइयों का स्वर्ग रहा होगा। सेंट पीटर वहां दरवाजे पर होते हैं। तो सेंट पीटर ने कहा, महाशय तुम हो कौन? उसने कहा, मैं एक विज्ञापन का विशेषज्ञ हूं। सेंट पीटर ने कहा, विज्ञापन वाले लोगों का कोटा स्वर्ग का पूरा हो गया, पच्चीस आदमियों से ज्यादा हम नहीं लेते। तो आपको दूसरी जगह जाना पड़ेगा। और दूसरी जगह यानी नरक। पच्चीस हो गए।

उस विज्ञापनदाता ने कहा कि सेंट पीटर, तुम्हारे हम अखबारों में फोटो छपवा देंगे, कोई रास्ता नहीं हो सकता, कोई उपाय नहीं हो सकता कि मैं इसी जगह आ जाऊं? सेंट पीटर ने कहा, फोटो बड़े छपवाने पड़ेंगे, ठीक से। रास्ता बन सकता है। चौबीस घंटे का मैं तुम्हें

मौका देता हूं। तुम पच्चीस विज्ञापनदाताओं में से किसी एक को राजी कर लो कि तुम्हारी जगह वहां चला जाए, तुम यहां आ जाओ।

उसने कहा, चौबीस घंटे! चौबीस घंटे बहुत हैं। वह आदमी भीतर गया। उसने जाकर पूरे स्वर्ग में अफवाह उड़ानी शुरू की कि नरक में एक बहुत नया अखबार निकल रहा है, उसके लिए बहुत अच्छे विज्ञापन एक्सपर्टस की जरूरत है। शैतान ने एक बहुत ही बड़ी एजेंसी खोली हुई है, विज्ञापन की। सब जगह उसने अफवाह उड?ा दी। दूसरे दिन चौबीस घंटे पूरे होने पर वह सेंट पीटर के पास गया। उसने कहा कि भाई कुछ हुआ? उसने कहा, क्या आश्चर्य कर दिया! तुमने तो हैरानी कर दी। पच्चीस ही चले गए।

वह आदमी बोला, पच्चीस ही चले गए! उसने कहा, माफ करो, मैं भी जाता हूं। अफवाहों का कोई भरोसा नहीं, सच भी हो सकती है बात। जब पच्चीस चले गए तो मैं भी अब जाता हूं, मैं भी यहां नहीं रह सकता हूं।

कमजोर है हमारा मन। बार-बार दोहराने से--खुद भी आदमी झूठ को बार-बार दोहराए, कुछ दिनों में वह खुद ही भूल जाता है कि मैंने इसकी यात्रा झूठ की तरह शुरू की थी। वह सच हो जाता है। मनुष्य के सामने हजारों सत्य इसी भांति खड़े हुए हैं, जो असत्य हैं और प्रचार ने जिन्हें सत्य की गरिमा दे दी है।

सच तो यह है, सत्य का कोई प्रचार ही नहीं हो सकता है। प्रचार मात्र असत्य का हो सकता है। सत्य का तो अनुभव करना होता है। प्रचार का कहां उपाय है? सत्य को तो एक-एक व्यक्ति को स्वयं ही जानना होता है, दूसरे के प्रचार से कोई सत्य को कभी नहीं जान सकता।

एक मित्र ने पूछा है कि अगर यह बात सच है, तो फिर मैं क्यों बोल रहा हूं, क्यों बोलता हूं?

मैं सत्य का प्रचार नहीं कर रहा हूं। केवल असत्य का प्रचार है, इस बात की आपको खबर दे रहा हूं। एक कांटा लग जाता है, दूसरे कांटे से उसे निकाल देते हैं। दूसरा कांटा खतरनाक तब होता है, जब पहले घाव में उस दूसरे को हम रख लें तब खतरनाक होता है, नहीं तो खतरनाक नहीं है। एक कांटा निकाला, दूसरा जिसने निकाला, वह भी निकालते ही से बेकार हो गया। उसको भी फेंक देंगे। ऐसा थोड़े ही करेंगे कि यह बड़ा परोपकारी कांटा है, इसने एक कांटा निकाला तो इसको पैर में लगा लें।

तो, मेरी बात एक असत्य को निकालने की चेष्टा से ज्यादा नहीं है--वह एक कांटा भर है। दूसरा भी कांटा है, यह भी कांटा है। उस कांटे को निकालने के साथ ही यह कांटा भी बेकार

हो जाता है। अगर इसको ले जाकर मंदिर बना लें...इस कांटे का, तो आप पागल हैं। उसमें मेरा कोई कसूर नहीं है। उस कांटे के निकलते ही यह कांटा भी बेकार हो जाता है। फिर जो स्थिति आपको उपलब्ध होगी, वह मुझसे उपलब्ध नहीं हो रही, न किसी और से। वह तो समस्त प्रपोगेंडा, परतंत्रता से मुक्त हो जाने पर चित्त अपनी सहज गति करता है सत्य की ओर।

असत्य से मुक्त हो जाएं--सत्य तो आपका स्वरूप है। असत्य से मुक्त हो जाएं--सत्य तो आपका निज घर है। असत्य से मुक्त हो जाएं। असत्य को देख लें असत्य की भांति, फिर सत्य तक पहुंचने में कोई भी कठिनाई नहीं है। आप पहुंचे ही हुए हैं। असत्य को, जो फाल्स है, उसको फाल्स की तरह देख लेना, असत्य की तरह देख लेना, सत्य के खोजी के लिए बड़ी अनिवार्य भूमिका है। इसलिए मैंने सुबह ये बातें आपसे कहीं।

और भी कुछ प्रश्न पूछे हैं, उनकी रात आपसे चर्चा करूंगा। एक छोटे से प्रश्न का उत्तर, और शाम की यह चर्चा पूरी होगी।

एक मित्र ने पूछा है कि आपने जो ध्यान की विधि कही, उसमें और एकाग्रता के हमेशा से चलने वाले मार्ग में क्या फर्क है?

बहुत फर्क है। जितना फर्क हो सकता है, उतना फर्क है।

एकाग्रता चित्त का श्रम है। एकाग्रता का मतलब है, कंसनट्रेशन का--किसी एक चीज पर चित्त को जबर्दस्ती रोकना, शेष सारी चीजों पर चित्त को बंद करना, केवल एक चीज पर खोलना। चाहे नाम पर, चाहे मूर्ति पर, चाहे शब्द पर, चाहे किसी और प्रतीक पर, कोई सिंबल पर। एक पर मन को रोकना और शेष सबके प्रति मन को बंद करना।

यह मन के स्वभाव के प्रतिकूल है। यह जबर्दस्ती है। इस जबर्दस्ती में चित्त पर तनाव पैदा होगा, श्रम होगा, स्ट्रैन होगा, परेशानी होगी। और परेशानी के दो फल हो सकते हैं। अगर चित्त बहुत परेशान हो जाएगा तो बचने के दो उपाय हैं। या तो चित्त सो जाए तो परेशानी से छुटकारा हो जाता है। और या चित्त पागल हो जाए तो भी परेशानी से छुटकारा हो जाता है।

कंसनट्रेशन या तो नींद में ले जा सकता है, या पागलपन में। और कहीं भी नहीं ले जा सकता। जो अनेक साधु पागल होते देखे जाते हैं, उसका कोई और कारण नहीं है। लेकिन हम तो अजीब ही लोग हैं। हम कहते हैं ईश्वर का उन्माद चढ़ गया है, ईश्वर के आनंद में मस्त हो गए हैं! हो गए हैं पागल। और या चित्त सो जाता है। क्योंकि चित्त को ज्यादा हम परेशान करें तो फिर चित्त परेशानी से ऊब जाता है और नींद में चला जाता है, वह उसकी एस्केप है।

तो, अनेक लोग जो माला-वाला जपते रहते हैं, अक्सर गहरी नींद में सोए रहते हैं। राम-राम जपते रहते हैं, उससे नींद अच्छी आती है। उतनी देर नींद अगर आ जाती है तो उन्हें अच्छा लगता है। क्योंकि उतनी देर सब भूल जाता है। जहां सब भूल जाता है, वहां दुख, चिंताएं भी भूल जाती हैं। दुख, चिंताओं का भूल जाना--परमात्मा को, आनंद को, या सत्य को पा लेना नहीं है। वह तो शराब पीने वाला भी यही कर रहा है; दुख, चिंताओं को भूल रहा है।

तो कंसनट्रेशन, एकाग्रता, चित्त की जबर्दस्ती से, चित्त को या तो निद्रा में और या असंतुलन में ले जाने का उपाय है। इस पर हम कल सुबह जब ध्यान के लिए बात करेंगे, तो और विचार कर सकेंगे।

लेकिन जिसे मैं ध्यान कह रहा हूं, वह कंसनट्रेशन नहीं है, वह एकाग्रता नहीं है। वह केवल सहज जागरूकता है। जागरूकता का अर्थ एक चीज के प्रति नहीं, समस्त के प्रति केवल जागे हुए होना है। और जागरूकता का कोई भी उपाय नींद में ले जाने वाला नहीं हो सकता है। क्योंकि जागरूकता नींद से बिलकुल विपरीत दिशा है। और चूंकि जागरूकता में कोई तनाव, कोई टेंशन का कोई कारण नहीं है। क्योंकि तनाव तब पैदा होता है, जब हम चुनाव करते हैं। जब हम चुनाव ही नहीं करते और सब चीजों के प्रति सरलता से जागते हैं; कोई दबाव नहीं डालते मन पर, तो मन के विक्षिप्त होने का भी कोई कारण नहीं है।
मन स्वस्थ होता है जागरूकता से। और जो जागरूकता को उपलब्ध हो जाता है, उसके चित्त में न तो चंचलता रह जाती है। और चंचलता न रह जाने के कारण एकाग्र करने की कोई जरूरत भी नहीं रह जाती। उसका चित्त तो सहज ही किसी भी चीज पर पूरे रूप से जाग जाता है।

एकाग्रता की जरूरत ही इसीलिए पड़ती है कि हमारा चित्त एक चीज पर जाग नहीं पाता, इसलिए हम सब तरफ से सुलाकर एक तरफ जगाने की कोशिश करते हैं।

इस पर हम कल सुबह और विचार कर सकेंगे। आपके और जो प्रश्न हों, वे आप पहुंचा देंगे, रात हम उनकी बात करेंगे। और रात्रि उस चर्चा के बाद, हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे। दोपहर की यह बैठक समाप्त हुई।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक १९-१०-६७ दोपहर

४. ध्यान की आंख

एक मित्र ने पूछा है, कि क्या मैं संन्यास के पक्ष में नहीं हूं?

मैं संन्यास के तो पक्ष में हूं, लेकिन संन्यासियों के पक्ष में नहीं हूं। संन्यास बड़ी और बात है और संन्यासी हो जाना बड़ी और। संन्यासी होकर शायद हम संन्यास का धोखा देना चाहते हैं और कुछ भी नहीं। संन्यास तो अंतःकरण की बात है, अंतस की। और संन्यासी हो जाना बिलकुल बाह्य अभिनय है। और बाह्य अभिनेताओं के कारण इस देश में संन्यास को, धर्म को जितनी हानि उठानी पड़ी है, उसका हिसाब लगाना भी कठिन है।
संन्यास जीवन-विरोधी बात नहीं है। लेकिन तथाकथित संन्यासी जीवन-विरोधी होता हुआ दिखाई पड़ता है। संन्सास तो जीवन को परिपूर्ण रूप से भोगने का उपाय है। संन्यास त्याग भी नहीं है। वस्तुतः तो जीवन के आनंद को हम कैसे पूरा उपलब्ध कर सकें--इसकी प्रक्रिया, इसकी वैज्ञानिक प्रक्रिया ही संन्यास है। संन्यास दुख उठाने का नाम नहीं। और न जानकर अपने ऊपर दुख ओढ़ने का, न जानकर अपने को पीड़ा, तकलीफ और कष्ट देने का।
सच्चाई तो यह है कि जो लोग थोड़े आत्मघाती वृत्ति के होते है, थोड़े स्युसाइडल होते हैं, वे लोग संन्यास के नाम से स्वयं को सताने का, खुद को टार्चर करने का रास्ता खोज लेते हैं। दुनिया में जिनकी दुष्ट प्रकृति है, जिनका मस्तिष्क और मन वायलेंट और हिंसक है, वे दो तरह के काम कर सकते हैं। एक तो यह कि वे दूसरों को सताएं। और दूसरा यह कि अगर वे दूसरों को न सताएं, तो खुद को सताएं। ये दोनों ही हिंसा के रूप हैं। जो आदमी दूसरों को सताने से अपने को रोकता है जबर्दस्ती, वह अनिवार्य रूप से खुद को सताने में लग जाता है। तो फिर चाहे वह उसे तपश्चर्या कहता हो, त्याग कहता हो, या कोई और अच्छे नाम चुन लेता हो। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता है।
और स्मरण रखें, जो आदमी अपने को सताता है, वह आदमी कभी भी अहिंसक नहीं हो सकता है। जो अपने को ही प्रेम नहीं करता, वह इस पृथ्वी पर किसी दूसरे को कभी प्रेम नहीं कर सकता है। दूसरों के प्रति दिखाया जाने वाला प्रेम धोखा और पाखंड है। क्योंकि जो खुद को ही प्रेम करने में समर्थ नहीं हो सका, वह और किसको प्रेम कर सकेगा?

मेरी दृष्टि में संन्यासी वह है, जो स्वयं को इतना प्रेम करता है कि इस स्वयं को प्रेम करने के कारण ही उसका जीवन आमूल परिवर्तित हो जाता है। स्वयं के प्रति इस गहरे प्रेम में ही उसके भीतर सबके प्रति प्रेम का जन्म होता है।
संन्यास ऐसी चित्त दशा का नाम है, जहां भीतर व्यक्ति ऐसे जीने लगता है, जैसे कि हो ही नहीं। जैसे उसकी अस्मिता, उसका अहंकार, उसका इगो खो गया हो, शून्य हो गया हो। वह हवा, पानी की भांति जीने लगता है। बाहर, इसका यह अर्थ नहीं होता है कि वह

निष्क्रिय हो जाएगा, बल्कि उलटे ही इसका यह अर्थ होता है कि वही सबसे ज्यादा सक्रिय हो जाएगा। जिसके चित्त के तल पर शून्य है, उसके परिधि पर, उसके जीवन की परिधि पर बड़ी सृजनात्मक क्रियाओं का आविर्भाव होता है।

एक गाड़ी को आप चलते देखते हैं। चक्के घूमते चले जाते हैं, लेकिन चाक के बीच में जो कील है, वह थिर बनी रहती है। वह कील की थिरता के कारण ही चक्का घूम पाता है। अगर कील भी घूम जाए तो फिर चक्का नहीं घूम पाएगा। कील ठहरी रहती है और जितनी थिर होती है, उतना ही चाक घूम सकता है, सहजता से, सरलता से।

संन्यासी ऐसा व्यक्ति है, जिसका चित्त तो थिर है, लेकिन जिसके जीवन का चाक बड़ी गति से घूमता है।

जिसके जीवन का चाक ही रुक गया हो, वह आदमी मर गया; वह आदमी संन्यासी नहीं है। ऐसे ही मरे लोगों को हमने हजारों साल तक पूजा है। और ऐसे मरे लोगों की पूजा के कारण हमारे पूरे कौम की आत्मा धीरे-धीरे जड़ हो गई है, मर गई है।

इस देश में संन्यास के नाम पर पलायनवादी, एस्केपिस्ट प्रवृत्तियों को अदभुत रूप से पूजा मिली है। जो लोग जीवन को छोड़ दें, जीवन से भाग जाएं, जीवन के शत्रु हो जाएं, उन सबको हम आदर देते हैं! तो फिर अगर जीवन उजड़ जाता हो तो कसूर किसका है? फिर अगर जीवन बेरौनक हो जाता हो, अगर जीवन दुख से भर जाता हो, और जीवन में आनंद की कोई वर्षा न होती हो, तो कौन जिम्मेवार है? फिर इसमें आश्चर्य क्या है?

एक संन्यासी अपने भक्तों के बीच बोलता था। उसने एक प्रश्न किया। उसने अपने भक्तों से कहा, तुम में से कितने लोग स्वर्ग जाना चाहते हैं? सभी हाथ उठ गए, सिर्फ एक हाथ को छोड़कर। संन्यासी बहुत हैरान हुआ। हाथ नीचे गिरवाकर उसने कहा, अब वे लोग हाथ उठाएं, जो नरक जाना चाहते हैं। एक भी हाथ नहीं उठा। उस आदमी ने भी हाथ नहीं उठाया, जिसने स्वर्ग जाने के लिए भी हाथ नहीं उठाया था! संन्यासी हैरान हुआ, उसने कहा, महानुभाव, आप कहां जाना चाहते हैं?

उस आदमी ने कहा, न तो मैं स्वर्ग जाना चाहता हूं, न नरक। मैं इस जमीन पर रहना चाहता हूं। और इस जमीन को, और इस जमीन के जीवन को आनंदित देखना चाहता हूं। ये तुम्हारे स्वर्ग जाने वाले लोग इस जमीन को नरक बनाने के कारण बने हैं। और नरक तो जाने को कोई तैयार नहीं है, सारे लोग स्वर्ग जाने को तैयार हैं, इस कारण यह पृथ्वी नरक हो गई है। क्योंकि इस पृथ्वी को कौन स्वर्ग बनाए? इस जीवन को कौन सुंदरता दे? इस जीवन की कुरूपता को कौन मिटाए?

जो लोग जीवन को छोड़ने की शिक्षा देते हैं, वे तो जीवन को सुंदर न बनाना चाहेंगे, क्योंकि जीवन अगर सुंदर हो जाए, उसकी सारी अग्लीनेस, उसकी कुरूपता मिट जाए, तो शायद कोई जीवन को छोड़ने की, भागने की कल्पना भी न करे।

इसलिए जो लोग जीवन से भागने की शिक्षा देते हैं, वे तो चाहते हैं कि जीवन जितना दुख और जितनी कुरूपता से भर जाए, उतना अच्छा। क्योंकि तब छोड़ने की प्रेरणा और तीव्रता से अर्थ और अपील पकड़ लेगी।

हमारे देश में, या पुराने हजारों वर्षों में ऐसे लोग बहुत कम रहे हैं, जिन्होंने इस पृथ्वी के प्रेम को प्रदर्शित किया हो। जिन्होंने यह कहा हो, हम इस जीवन को सुंदर, सत्य बनाना चाहते हैं।

मैं तो ऐसे ही व्यक्ति को धार्मिक कहता हूं, जो इस जीवन को सुंदर बनाने की चेष्टा में संलग्न है। जो इस जीवन की कुरूपताओं को दूर करना चाहता है, जो इस मौजूदा जिंदगी को, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिए चेष्टारत है--वही आदमी धार्मिक है। और जिस आदमी ने अपने पूरे प्राणों को इस दिशा में संलग्न कर दिया है, वह संन्यस्त है। उसकी अपनी अब कोई आकांक्षा नहीं, इस जीवन को सुंदर बनाने के अतिरिक्त।

और यह भी मैं आपसे कह दूं, जो थोड़े से लोग इस जीवन को सुंदर बनाने के लिए श्रम करते हैं, वे यहां तो स्वर्ग को उपलब्ध हो ही जाते हैं। और अगर कहीं भी कोई स्वर्ग होगा तो वे उससे वंचित नहीं रह सकते। उन्होंने वह दूसरा स्वर्ग भी कमा लिया, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने में।

लेकिन जो लोग इस जीवन को उजाड़ते हैं--और तथाकथित साधुओं और संन्यासियों के ऊपर ही यह सारा जिम्मा है कि उन्होंने भागने की, छोड़ने की ऐसी हवा पैदा की, ऐसी वृत्ति पैदा की कि इस जीवन को बसाने का और बनाने का तो खयाल ही--खयाल ही खो गया।

यह हैरानी होगी जानकर कि हमारे जीवन में जितना अकल्याण-अमंगल दिखाई पड़ता है, जितना दुख; उसमें तथाकथित साधु और संन्यासियों का हाथ है। और इस तथ्य को जब तक हम न देखेंगे, तब तक न तो जीवन को बदलने के लिए हमारी, हमारी दृष्टि स्पष्ट हो सकती है और न ही संन्यास का, धर्म का सही अर्थ। और न संन्यस्त जीवन की सही प्रक्रिया का ही हमें बोध हो सकता है।

हम तो एक पलायनवादी दृष्टि में, एक एस्केपिस्ट दृष्टि के अंतर्गत बड़े हुए हैं। और हमने भागते हुए आदमी को आदर दिया है। इस आदर से जितना अमंगल हुआ है, उसकी कल्पना करनी भी कठिन है।

मैं ऐसे संन्यास, ऐसे संन्यासी के पक्ष में नहीं हूं। मेरी तो समझ यही है कि जीवन के अतिरिक्त और कोई परमात्मा नहीं। यह जो विराट जीवन है, सब तरफ अनंत तक छाया और फैला हुआ, यह जो हम में, और आप में, और पत्तों में, और पक्षियों में, और पत्थरों में, और आकाश के तारों में--यह जो विराट जीवन सब तरफ प्रगट होता है, इसी जीवन की समग्रता का नाम परमात्मा है।

इस जीवन की समग्रता में जो अपने को इस भांति खो देता है, अपने अहंकार को--कि उसे इससे कोई पृथकता की दीवाल नहीं रह जाती, उसके बीच और जीवन के बीच कोई फासला, कोई डिस्टेंस नहीं रह जाता। क्योंकि एक ही फासला है--अहंकार का, और कोई फासला है

भी नहीं। एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य के बीच भी अहंकार का फासला है। एक जीवन और समस्त जीवन के बीच भी अहंकार का फासला है।

सामान्यतः संन्यासी मैं उसे कहना चाहूंगा, जिसने इस फासले को पार कर लिया। जिसके और जीवन के बीच अब कोई फासला नहीं है। लेकिन ऐसा आदमी जीवन से भागेगा नहीं, ऐसा आदमी तो परिपूर्ण रूप से जीवन में सम्मिलित हो जाएगा। जीवन का सब कुछ उसे स्वीकार हो जाएगा। अब वह है ही नहीं--अस्वीकार कौन करे, भागे कौन? और भागे तो कहां भागे? अब तो वह जीवन से एक है। जीवन से एकता की अनुभूति धार्मिक चित्त की आधारशिला है। जो उस अनुभूति को उपलब्ध होता है, उसे मैं संन्यासी कहूंगा।

लेकिन संन्यासी के नाम से जो सब चलता रहा है--तो चूंकि हम उसके आदी हो गए हैं देखने के, इसलिए हमें खयाल नहीं आता कि संन्यासी के नाम से कैसा पाखंड, कैसी एक्टिंग, कैसा अभिनय चल रहा है।

अगर हमारी आंखें गहरी होंगी देखने को, तो हम यह देख पाएंगे कि फिल्मों के अभिनेता भी इतने कुशल अभिनेता नहीं हैं। क्योंकि बेचारे वे कम से कम इतना तो जानते ही हैं कि अभिनय कर रहे हैं। लेकिन वस्त्रों को बदल लेने वाले संन्यासी, उनको यह भी पता नहीं है कि वे ये क्या कर रहे हैं। वस्त्रों को बदल लेना, घर-द्वार को बदल लेना, जीवन के बाह्य आवरण में परिवर्तन कर लेने से कोई संन्यास नहीं उपलब्ध हो जाता है। कपड़े बदल लेने से, आत्मा बदलने का क्या कोई संबंध है? कपड़े रंग लेने से, क्या आत्मा के बदल जाने का कोई भी नाता है? और जिसको यह दिखाई पड़ता हो कि कपड़े बदल लेने का इतना मूल्य है, वह बहुत चाइल्डिश है, बहुत बचकाना है। अभी उसकी समझ जरा भी मेच्योरिटी को उपलब्ध नहीं हुई, वह प्रौढ़ नहीं हुआ है। लेकिन यह चलता रहा है, चल रहा है और हम सब इसके चलने में सहयोगी हैं।

मैं निवेदन करना चाहूंगा ऐसे किसी संन्यास की मेरे मन में कोई आदर, ऐसे संन्यास के प्रति कोई सदभाव, कोई सहयोग मेरे मन में नहीं है और आप भी सोचेंगे, तो बहुत कठिन है कि आपके मन में भी रह जाए। लेकिन हम देखते नहीं जीवन को उघाड़कर। हम तो स्वीकार कर लेते हैं, जो चलता है उसे चुपचाप।

अगर मनुष्य के भीतर थोड़ी सी भी अस्वीकार की हिम्मत आ जाए, तो जीवन के हजारों तरह के पाखंड इसी क्षण छूट जाएं, इसी क्षण टूट जाएं, उनके टिकने की कोई जगह न रह जाए। लेकिन हम अपनी शिथिलता में, हम अपने आलस्य में, हम अपनी नींद में आंख खोलकर देखते भी नहीं। जो चल रहा है--हम भी उसमें सहयोगी और साथी हो जाते हैं।

जीवन का इतना जो कुरूप रूप उपस्थित हो गया है, इसमें किन लोगों का हाथ है?

उन्हीं लोगों का जिन्होंने किसी न किसी रूप में भी जीवन से भागने की, पलायन की, मोक्ष की, किन्हीं दूर की कल्पनाओं के लिए, इस जीवन को कुर्बान कर देने की बातें की हैं; लोगों को समझाया है और लोगों में जीवन-विरोधी, लाइफ-निगेटिव दृष्टि को जन्म दिया है।

मैं तो लाइफ-अफरमेशन को, जीवन के स्वीकार को, जीवन के प्रति आदर को, जीवन के प्रति परिपूर्ण प्रेम को, जीवन जैसा है--उस जीवन की समग्रता में, उसकी स्वीकृति को ही संन्यास कहता हूं। जीवन को पूरे ढंग से जीना ही संन्यास है। भाग जाना नहीं, आंख बंद कर लेना नहीं।

लेकिन ऐसा संन्यासी अभी पैदा होने को है, जो जीवन का शत्रु न हो, मित्र हो। और जिस दिन भी हम ऐसे संन्यासी को जन्म दे सकेंगे, उसी दिन धर्म और जीवन के बीच जो आज खाई खुदी है, वह समाप्त हो जाएगी। जीवन और धर्म एक हो सकेगा। तब मंदिर और दुकान को अलग रहने की जरूरत न रहेगी। तब दुकान मंदिर हो सकती है।

वैसे मंदिर तो बहुत दिनों से दुकान हो ही चुका है। लेकिन दुकान मंदिर नहीं हो पाई है। तब बाजार, जीवन की सघनता से पहाड़ की चोटियों पर भागने का कोई सवाल नहीं है। कपड़े बदलने का, घर-द्वार छोड़ देने का नहीं कोई सवाल है। तब सवाल है स्वयं को बदल लेने का। और जो लोग स्वयं को नहीं बदलना चाहते, वे छोटी-मोटी बदलाहट करके स्वयं को कंसोलेशंस दे लेते हैं, सांत्वना दे लेते हैं--कि हमने अपने को बदल लिया।

यह धोखा बहुत चल चुका। ऐसे संन्यास को अब कोई जगह, आने वाली मनुष्य की चेतना में नहीं होनी चाहिए। और हमने बहुत अहित भी भोग लिया। हमने बहुत अमंगल भी भोग लिया। हमने जीवन को बहुत रूप से उपेक्षित करके; दुखी, परेशान; बेचैन भी, अशांत भी बना लिया। लेकिन अब तक भी जीवन की परिपूर्ण स्वीकृति को लेने वाले धर्म को, विचार को हम जन्म नहीं दे सके। कहीं आसमान से वह पैदा होगा भी नहीं। हम ही उसे मार्ग देंगे, तो वह पैदा हो सकता है।

तो मैं संन्यास के तो पक्ष में हूं, लेकिन संन्यासी के नहीं। क्योंकि संन्यास एक और ही क्रांति है, जिससे व्यक्ति गुजर जाता है। और संन्यासी हो जाना एक ढोंग है। जो लोग क्रांति से बिना गुजरे, क्रांति से गुजर जाने का वहम पाल लेना चाहते हैं, उनके लिए बड़ा सुगम उपाय है।

और कभी तो हैरानी होती है कि तथाकथित बड़े-बड़े नाम भी बच्चे मालूम पड़ते हैं। उनके आग्रह इतनी छोटी-छोटी बातों के होते हैं कि हैरानी होती है। और इतनी क्षुद्र बातों में जिनका चित्त लीन होता हो, इतनी क्षुद्र बातों में जो निरंतर ग्रस्त रहते हों, वे भी विराट की तरफ उड़ान भर पाते होंगे, इसकी कल्पना भी नहीं हो सकती।

एक और मित्र ने पूछा है--कि मैंने कहा कि शास्त्रों में सत्य नहीं है, तो फिर मेरी किताबें क्यों हैं? क्यों बेची जाती हैं? क्यों लोगों को दी जाती हैं?

वे शास्त्र और किताब के फर्क को नहीं समझ पाए। किताबों के विरोध में मैं नहीं हूं। गीता एक किताब हो, तो ठीक। कुरान एक किताब हो, तो ठीक। जिस दिन कोई किताब शास्त्र बनती है, उसी दिन से खतरा शुरू होता है।

शास्त्र और किताब में फर्क क्या है?

जब कोई किताब आथारिटी बन जाती है, आप्त बन जाती है--जब कोई किताब यह दावा करती है कि ईश्वरीय है, होली है, पवित्र है--जब कोई किताब यह दावा करती है कि इसमें जो लिखा है, वह त्रिकाल में सत्य है--जब कोई किताब यह दावा करती है कि इससे अन्यथा जो है, वह सब गलत है--जब कोई किताब यह कहती है कि मेरी पूजा करो--जब कोई किताब पूजा पाने लगती है, आप्त बन जाती है, दावे करने लगती है कि जो कुछ है मैं हूं, यही सत्य है, इस पर श्रद्धा लाने से ही ज्ञान उपलब्ध होगा--तब किताब, किताब नहीं रह जाती, शास्त्र बन जाती है। और शास्त्र खतरनाक सिद्ध होते हैं--किताबें--किताबें तो बहुत निर्दोष हैं। उनमें कोई खतरा नहीं है।

तो ये जो मेरी किताबें हैं, जब तक किताबें हैं, तब तक कोई खतरा नहीं है। लेकिन अगर कुछ नासमझ यहां इकट्ठे हो गए, और इनमें से किसी किताब को उन्होंने शास्त्र कह दिया, तो खतरा शुरू हो जाएगा। उस दिन इनको जला देना, इनको एक क्षण बचने मत देना--जिस दिन भी कोई इनको शास्त्र कहे। क्योंकि तब यह मनुष्य को बांधने वाली हो जाती हैं।

एक खलीफा सिकंदरिया पहुंचा था। और सिकंदरिया के बहुत बड़े विराट पुस्तकालय में उसने आग लगवा दी थी। उस पुस्तकालय में, कहा जाता है संभवतः दुनिया की सर्वाधिक किताबें संगृहीत थीं। एक बड़ी संपदा थी वह। इतनी पुस्तकें थीं वहां कि आग लगाने पर छह महीने तक आग बुझ नहीं सकी। छह महीने तक पुस्तकालय जलता रहा।

जिस खलीफा ने वहां आग लगाई थी, वह अपने हाथ में एक शास्त्र लेकर पहुंचा था, वह कुरान लेकर पहुंचा था। अगर कुरान भी एक किताब होती तो उस लाइब्रेरी में आग लगाने की कोई जरूरत न थी। वहां और किताबें थीं, कुरान भी एक किताब थी। यह भी उन किताबों में सम्मिलित हो सकती थी।

लेकिन कुरान था एक शास्त्र। लाइब्रेरी में कोई शास्त्र नहीं था। क्योंकि एक शास्त्र, दूसरे शास्त्र को नहीं मानता; दूसरे शास्त्र के प्रति बड़ार् ईर्ष्यालु होता है, क्योंकि शास्त्र हो सकता है एक, पच्चीस दावे सही नहीं हो सकते। एक ही दावा सही हो सकता है।

उस खलीफा ने जाकर उस पुस्तकालय के अध्यक्ष को कहा था--एक हाथ में कुरान लेकर और एक हाथ में मशाल--उससे कहा था कि मैं यह पूछने आया हूं कि कुरान में जो कुछ लिखा है, तुम्हारे इस पुस्तकालय में जो किताब हैं, क्या उनमें भी वही लिखा है जो कुरान में लिखा है? अगर वही लिखा है तो इतनी किताबों की कोई जरूरत नहीं, कुरान काफी है, कुरान पर्याप्त है। अगर वही बातें लिखी हैं तो इतना यहां...इतना उपद्रव मचाने की क्या जरूरत है? और अगर तुम्हारी इन किताबों में ऐसी बातें भी लिखी हैं जो कुरान में नहीं हैं, तब तो इस पुस्तकालय को एक क्षण बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। क्योंकि कुरान के अतिरिक्त जो कुछ भी है, सब गलत है। सत्य तो कुरान है।

तो उस खलीफा ने कहा, दोनों हालत में--तुम्हारा उत्तर चाहे कुछ भी हो, मैं आग लगाने आया हूं। चाहे तुम कहो कि इनमें भी वही बातें लिखी हैं जो कुरान में हैं, तब मैं कहूंगा कि

फिजूल हैं ये किताबें। और अगर तुम कहो कि इनमें ऐसी बातें भी हैं जो कुरान में नहीं, तो मैं कहूंगा खतरनाक हैं ये किताबें। इनको इसी वक्त जला देना जरूरी है।

उसने एक हाथ में...कुरान को नमस्कार करके और उस पुस्तकालय में आग लगा दी।

यह कुरान शास्त्र था, अगर किताब होती तो इस पुस्तकालय में आग नहीं लग सकती थी।

मैंने किताबों के विरोध में कुछ भी नहीं कहा है। जो कहा है शास्त्र के विरोध में कहा है। शास्त्र किताब नहीं है--पागल हो गई किताब है।

एक साधारण आदमी, एक आदमी है। और फिर एक आदमी पागल हो जाए और कहने लगे मैं ईश्वर हूं, परमेश्वर हूं, सर्वज्ञ हूं, केवली हूं, तीर्थंकर हूं, अवतार हूं, ईश्वर का पुत्र हूं, यह आदमी पागल हो गया है। यह आदमी जितना ज्ञान से भरता है, उतना भूल जाता है कि मैं हूं। इसके तो दावे और बड़े हो गए हैं कि मैं मनुष्य ही नहीं, मैं ईश्वर हूं! यह ईश्वर के जितने निकट पहुंचता, उतना विलीन हो जाता। इससे कोई पूछता कि तुम हो? तो शायद यह कहता कि मैं तो बहुत खोजता हूं, लेकिन पाता नहीं कि कहां हूं। लेकिन यह तो कहने लगा मैं ईश्वर हूं! और इतना ही कहे तो ठीक। यह, यह भी कहता है कि और अगर कोई कहता हो कि मैं ईश्वर हूं, तो वह झूठ कहता है।

एक मुसलमान राजधानी में, एक आदमी ने आकर घोषणा कर दी कि मैं पैगंबर हूं। उसे पकड़ लिया गया। उस बादशाह ने उसे कैद में बंद करवा दिया और चौबीस घंटे बाद उसके पास गया। और उससे कहा स्मरण रखो, मोहम्मद के बाद अब कोई पैगंबर नहीं। इस तरह की बातें कहोगे, तो मौत के सिवाय और कोई सजा नहीं होगी। चौबीस घंटे में कुछ अकल आई? उसे बहुत कोड़े मारे गए थे, पीटा गया था, भूखा रखा गया था, लहूलुहान कर दिया था, चमड़ी कट गई थी, वह बंधा था एक खंभे से। होश आया हो, माफी मांग लो, तो छूट सकते हो?

वह पैगंबर हंसा। और उसने कहा कि तुम्हें पता नहीं, जब परमात्मा ने मुझसे कहा था मैं तुम्हें पैगंबर बनाकर भेज रहा हूं, तो उसने मुझे यह भी कहा था कि पैगंबरों पर मुसीबतें आती हैं। सो मुसीबतें आनी शुरू हो गईं। इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मैं पैगंबर नहीं हूं। इससे तो यह बिलकुल सिद्ध होता है कि मैं पैगंबर हूं। क्योंकि हमेशा पैगंबरों पर मुसीबतें आती हैं, पत्थर मारे जाते हैं, चोटें की जाती हैं। यह बात वह कह ही रहा था कि पीछे सींखचों में बंद एक आदमी चिल्लाया कि यह बिलकुल झूठ बोल रहा है। इस आदमी को एक महिने पहले बंद किया गया था।

उस सुलतान ने पूछा कि कैसे तुम कहते हो, यह झूठ बोल रहा है? उस आदमी ने कहा, आप भूल गए। मैं खुद परमात्मा हूं। मोहम्मद के बाद मैंने किसी को भेजा ही नहीं, यह आदमी बिलकुल झूठ बोल रहा है। वे परमात्मा के जुर्म में गिरफ्तार किए गए थे एक महीने पहले। उसने कहा, यह बिलकुल सरासर झूठ बोल रहा है कि यह पैगंबर है, मैंने इसको कभी पैगंबर बनाया ही नहीं। मोहम्मद के बाद मैंने किसी को बनाया ही नहीं।

अब इनको हम जानते हैं, इनका इलाज होना चाहिए। ये आदमी पागल हो गए। इनके अहंकार ने अंतिम घोषणा कर दी। इनका अहंकार फूलकर अंतिम गुब्बारा बन गया। अब यह विक्षिप्त स्थिति की अंतिम सीमा पर हैं। जब आदमी पागल होते हैं, तो वे पैगंबर होने के दावे शुरू कर देते हैं। और जब किताबें पागल हो जाती हैं भक्तों के कारण, तो वे शास्त्र बन जाती हैं।

शास्त्र के तो मैंने जो कुछ कहा, जरूर कहा। लेकिन किताब के खिलाफ मैंने कुछ भी नहीं कहा है। गीता किताब रहे, कुरान किताब रहे, वेद किताब रहें--बड़ा स्वागत है उनका पुस्तकालय में, और सब किताबों के साथ उनको भी रैक पर जगह होगी। लेकिन शास्त्र अब दुनिया में नहीं चल सकते। क्योंकि शास्त्रों ने एक तरह का पागलपन पैदा किया है। और शास्त्र सत्य की खोज में बाधा बन गए अपने दावों के कारण। और शास्त्रों पर विश्वास की शिक्षा ने मनुष्य को जड़ता सिखा दी है। विचार नहीं, चिंतन नहीं--आस्था, अंधी आस्था, अंधविश्वास। इसलिए मैंने कहा।

तो मैं फिर से कह दूं, ये किताबें जरूर हैं यहां, जब तक ये किताबें हैं, ठीक हैं, जिस दिन ये किताबें न हों, इनके साथ वही करना, जो शास्त्रों के साथ करना उचित होता है।

एक साधु का अंतिम क्षण आ गया था मृत्यु का। जीवनभर उसके भक्त, उसे पूजने वाले, उसकी तरफ आंख उठाकर देखने वाले--उसके शिष्यों ने बार-बार उससे कहा था कि तुम अपने जीवन के अनुभव एक किताब में लिख दो। वह साधु हमेशा टालता रहा था। अंतिम दिन, लाखों लोग इकट्ठे हुए थे। उसने घोषणा कर दी थी कि आज सूरज के डूबने के साथ मैं समाप्त हो जाऊंगा। हजारों लोग उसके दर्शन को आए थे।

सुबह ही सुबह उठकर उसने कहा कि मुझसे बहुत बार कहा गया था कि मैं कोई किताब लिख दूं। मैंने वह किताब अंततः लिख दी। और जो उसका सबसे प्यारा निकटतम मित्र था, उससे उसने कहा कि यह तुम किताब सम्हालो, इसे सम्हालकर रखना। यह बहुत बहुमूल्य है। इसमें मैंने सब कुछ लिख दिया है, जो सत्य है। और यह हजारों वर्ष तक मनुष्य के लिए बड़ी ऊंची संपदा सिद्ध होगी। यह कहकर उसने अपने मित्र और शिष्य के हाथ में वह किताब दी। लोगों ने जय-जयकार किया, तालियां पीटीं, उनकी वर्षों की आकांक्षा पूरी हो गई थी।

लेकिन उस शिष्य ने, जिसे किताब दी गई थी, किताब हाथ में लेकर पास में जलती अंगीठी में डाल दी। झट से किताब जल गई। सारे लोग हैरान रह गए, सारे लोग परेशान हो गए कि यह क्या किया। इतने वर्षों की प्रार्थना के बाद किताब लिखी गई थी और खुद गुरु ने कहा सम्हालकर रखना और इसने आग में डाल दी!

लेकिन गुरु की आंखों में खुशी के आंसू आ गए। उसने उस युवक को अपनी छाती से लगा लिया। और उसने कहा कि मैं खुश हूं। कम से कम एक आदमी मुझे समझ सका है। मैंने जीवनभर यही कहा कि किताबों से सत्य नहीं मिल सकता है। अगर तुम किताब को सम्हालकर रख लेते, तो मैं दुखी मरता। मैं सोचता एक भी आदमी मुझे नहीं समझा। तुमने

आग में डाल दी बात, तुमने किताब आग में फेंक दी, मैं बहुत आनंदित हूं इस अंतिम क्षण में। और आखिर में तुम्हें बताए देता हूं कि उस किताब में मैंने कुछ भी नहीं लिखा था, क्योंकि सत्य लिखा नहीं जा सकता है। वह किताब कोरी थी। अगर तुम बचा भी लेते, तो कोई खतरा नहीं हो सकता था, वह किताब शास्त्र नहीं बन सकती थी।

लेकिन मैं आपसे कह सकता हूं कि वह गुरु गलती में भी हो सकता था। क्योंकि भक्त ऐसे हैं कि किताब खोलकर कभी देखते नहीं कि उसमें लिखा क्या है। वह गुरु गलती में भी हो सकता था। हो सकता था वह किताब भी शास्त्र बन जाती। उसकी भी पूजा चलती और घोषणाएं चलतीं कि हमारी किताब में सबसे बड़ा सत्य है। झगड़े चलते, हत्याएं हो जातीं। और शायद यह भी हो सकता था कोई खोलकर देखता ही नहीं कि वहां कोरे पन्ने हैं, वहां कुछ भी नहीं है। और अगर आप कोई भी शास्त्र खोलकर देखेंगे, तो पाएंगे वहां भी कोरे पन्ने हैं, वहां भी कुछ नहीं है। कोई सत्य वहां नहीं है।

स्याही के धब्बों से थोड़े ही सत्य मिल सकता है। कागज के पन्नों पर थोड़े ही सत्य लिखा जा सकता है। सत्य तो जीवंत अनुभूति है, जो अपने हृदय के द्वार खोलता है उसे उपलब्ध होता है। कागजों पर आंखें गड़ा लेने से नहीं, बल्कि जीवन में आंखें खोलने से।

अगर पूछते ही हों कि क्या कोई भी शास्त्र नहीं है--एक भी? सभी किताबें हैं?

तो अंत में इतना आपको जरूर कहूंगा, एक शास्त्र है। लेकिन वह कोई किताब नहीं है। जितनी किताबें हैं, उनमें कोई भी शास्त्र नहीं है। एक शास्त्र है, लेकिन वह कोई किताब नहीं है। और वह शास्त्र किसी आदमी का बनाया हुआ नहीं है। वह यह जो सब तरफ फैला हुआ जीवन है, यह जरूर परमात्मा का शास्त्र है। जो इसे पढ़ने में समर्थ हो जाते हैं, वे जरूर सत्य को उपलब्ध होते हैं।

लेकिन इस शास्त्र को पढ़ने के रास्ते बड़े अलग हैं, उन रास्तों से जो स्कूल में पढ़ने के सिखाए जाते हैं। स्कूल में तो किताब ही पढ़ने का रास्ता सिखाया जा सकता है, शास्त्र पढ़ने का नहीं। शास्त्र पढ़ने का, इस शास्त्र को जो परमात्मा का है, चारों तरफ मौजूद, इसको पढ़ने का कोई और ही रास्ता है। उसी रास्ते के संबंध में कोई--कोई झलक हमें खयाल में आ जाए, उसी तरफ कोई इशारा हमें दिखाई पड़ जाए, उसी तरफ कोई ध्वनि हमें सुनाई पड़ जाए। इसलिए हम यहां इकट्ठे भी हुए हैं।

ऐसे मैं शास्त्रों के विरोध में बोलता हूं, बोल रहा हूं। लेकिन अगर आप मुझे समझेंगे, तो मैं परमात्मा के शास्त्र के बहुत पक्ष में हूं और उसके पक्ष में हूं इसीलिए आदमियों की किसी भी किताब को शास्त्र का ओहदा नहीं देना चाहता हूं। आदमी की कोई भी किताब जब शास्त्र बनती है, तो परमात्मा के शास्त्र की खोज बंद हो जाती है। फिर उस तरफ हमारी आंखें नहीं उठती हैं। फिर यही किताब दीवाल बन जाती है। हम इसको ही शास्त्र समझ लेते हैं और रुक जाते हैं।

तो, अगर शास्त्र ही पढ़ना हो प्रभु का तो आदमी के सब शास्त्र बीच में बाधा हैं, यह जान लेना जरूरी है। और आंखें उनसे मुक्त हो जानी चाहिए, तो ही आंखें उस विराट शास्त्र की

तरफ, उस सत्य की तरफ उठ सकती हैं। और वह शास्त्र बड़ा अजीब है। वह पत्ते पर भी लिखा है, हवाओं में भी, बादलों में भी, चांदत्तारों में भी, आदमी की आंखों में भी। लेकिन आदमी की आंखें बहुत झूठी हो गई हैं, शायद वहां पढ़ा न जा सके।

मैंने सुना है, एक बहुत बड़ा राजनीतिज्ञ अपने सेक्रेटरी के लिए चुनाव कर रहा था। उसने अनेक लोगों को बुलाया हुआ था, उनका इंटरव्यू ले रहा था। एक बहुत योग्य युवक उसे दिखाई पड़ा। पच्चीसों युवक आए थे, एक युवक बहुत योग्य मालूम पड़ता था। सोचा उसने इसको चुन लें। लेकिन चुनने के पहले उसने एक परीक्षा लेनी चाही।

उसने उस युवक से कहा कि मैं तुम्हें नौकरी पर रख लूंगा। इन पच्चीस युवकों में तुम्हीं मुझे सबसे ज्यादा योग्य मालूम पड़े हो। लेकिन एक शर्त, एक परीक्षा पहले। और वह परीक्षा यह, मेरी दो आंखों में एक आंख नकली है और एक असली। क्या तुम पहचानकर बता सकते हो, कौन सी नकली है और कौन सी असली है?

उस युवक ने आंखों को थोड़ी देर गौर से देखा और फिर कहा, आपकी बाईं आंख असली है। वह राजनीतिज्ञ हैरान हुआ। उसने कहा, तुमने पहचाना कैसे। उसने कहा, आपकी बाईं आंख असली है। राजनीतिज्ञ ने पूछा, तुमने पहचाना कैसे?

उसने कहा, आपकी दाईं आंख जो कि नकली है, उसमें थोड़ी सहानुभूति दिखाई पड़ती है। असली आंख में तो आपके सहानुभूति हो ही नहीं सकती, इतना मैं भी समझता हूं। तो जिस आंख में सहानुभूति दिखाई पड़ती है, उसको मैंने नकली समझ लिया। और जिसमें कोई सहानुभूति नहीं दिखाई पड़ती, उसको मैंने असली समझ लिया। ऐसे ही नाप-जोख करके मैंने बताया कि आपकी बाईं आंख असली है। बाईं आंख असली थी।

आदमी तो, हो सकता है कि उसकी आंख में न भी दिखाई पड़े। फिर जितना पंडित हो, जितने बड़े पद पर हो, जितना बड़ा ज्ञानी हो, जितना बड़ा संन्यासी हो, उतना ही उसकी आंख में दिखाई पड़ना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन हो सकता है सीधे-साधे सरल लोग, विनम्र लोग, जो कुछ भी नहीं हैं, जो नो-बडी हैं, उनकी आंखों में शायद परमात्मा की किताब का अभी भी कोई अंश आपको दिखाई पड़ जाए। लेकिन उतना सवाल किसी की आंख में दिखाई पड़ने का नहीं, पहले तो आपकी आंख देखने वाली होनी चाहिए। नहीं तो आपको कहीं भी दिखाई नहीं पड़ेगा।

जिनके पास देखने की आंख होती है, उन्हें तो न मालूम कैसी चीजों में क्या दिखाई पड़ जाता है, जिसकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। एक वृक्ष से सूखा पत्ता गिरता हो और उनका जीवन बदल जाता है। एक मटकी फूट जाए और उनका जीवन बदल जाता है।

मैंने सुना है, एक युवा सत्य की खोज में था। और न मालूम कहां-कहां भटका। और एक दिन पतझड़ होती थी और वृक्ष से सूखे पत्ते गिर रहे थे और हवाएं उन पत्तों को जगह-जगह नचा रही थीं--पूर्व और पश्चिम। और वह युवक खड़ा देख रहा था--और वह नाच उठा, और उसे वह मिल गया जिसकी वह खोज में था।

और बाद में जब लोग उससे पूछे, तुम्हें मिला क्या उन सूखे पत्तों को हवा में उड़ते देखकर? उसने कहा, सूखे पत्तों को हवा में उड़ते देखकर मुझे मेरे संबंध में सारी समझ आ गई। मुझे दिखाई पड़ा--मैं भी एक पत्ते से ज्यादा कहा हूं। जिसे हवाएं पूरब ले जाती हैं, तो पूरब जाता है; पश्चिम ले जाती हैं, तो पश्चिम जाता है। और तब से मैं एक सूखा पत्ता ही हो गया हूं। अब मेरा कोई रेजिस्टेंस नहीं है, अब जीवन के प्रति मेरा कोई विरोध नहीं। जीवन जहां ले जाता है, मैं चला जाता हूं।
और जिस दिन से मैंने अपना विरोध छोड़ दिया है जीवन से, उसी दिन से मेरे जीवन का सारा दुख विलीन हो गया। अब मैं जानता हूं कि मैं दुखी था, अपने कारण--चूंकि मैं था। अब मैं सूखे पत्ते की तरह हूं--हवाएं जहां ले जाती हैं, चला जाता हूं। हवाएं नहीं ले जातीं, तो वहीं पड़ा रह जाता हूं। हवाएं आकाश में उठा लेती हैं, तो आकाश में उठ जाता हूं। हवाएं नीचे गिरा देती हैं, तो नीचे गिर जाता हूं। अब मेरा अपना कोई होना नहीं है। अब मैं नहीं हूं। अब हवाएं हैं और मैं एक सूखा पत्ता हूं। लेकिन यह मुझे एक सूखे पत्ते से ही दिखाई पड़ा था।
देखने वाली आंख होगी, तो दिखाई पड़ गया। नहीं तो सूखे पत्ते इस माथेरान में कितने नहीं हैं? और आपके पैरों के नीचे कितने नहीं आकर कुचल जाते होंगे? और आपकी आंखों के सामने कितने नहीं वृक्षों से गिर जाते होंगे?
लेकिन सूखे पत्ते क्या करेंगे। अगर सूखे पत्ते कुछ करते होते तो बड़ी आसान बात थी। हम हर गांव में एक वृक्ष लगा लेते और उसमें से सूखे पत्ते टपकाते रहते, और गांव में जो भी निकलता ज्ञान को उपलब्ध हो जाता। नहीं, लेकिन सूखे पत्ते में हम तभी देख पाएंगे, जब हम देखने में समर्थ हैं।

एक युवक सत्य की खोज पर था। बहुत घूमा, बहुत भटका था। एक दिन कुएं से पानी भरकर आ रहा था। दोनों कंधे पर लकड़ी डालकर दो मटकियां बांधी हुई थीं। लकड़ी छूट गई, मटकी फूट गई, पानी बह गया। वह नाच उठा, लोगों ने उससे पीछे पूछा, तुम्हें क्या हो गया? उसने कहा, मटकी क्या फूटी, मैं ही फूट गया। मटकी के फूटने के क्षण में मुझे दिखाई पड़ा, अरे! मटकी में जो पानी था, वह भी सागर का था, लेकिन मटकी रोके थी। मटकी फूट गई, पानी बह गया और एक हो गया उससे, जिससे वह एक था। केवल बीच में एक मिट्टी की दीवाल थी। उसी दिन मेरे मन की मटकी फूट गई और अब तो मेरा भीतर जो है, वह उस सागर से मिल गया, जो सबका सागर है। अब मैं नहीं हूं, अब परमात्मा ही है।

लेकिन मटकी फूटने से! घर में रोज मटकी फूट जाती हैं, घर-घर में मटकी फूटती रहती हैं। लेकिन किसी को यह नहीं दिखाई पड़ता! देखने वाली आंख चाहिए, तो कहीं भी दिखाई पड़ जाता है।

एक वृद्ध, एक घर के द्वार से निकलता था। सुबह घूमने निकला था। उस वृद्ध का बचपन का नाम ही बुढ़ापे तक चलता आया था। उसे सभी लोग--बूढ़ा हो गया था तो भी राजा बाबू ही कहते थे। घूमने निकला था, एक झोपड़े के भीतर--सूरज उग रहा था बाहर, कोई मां अपने बेटे को, या अपने देवर को, या किसी को उठाती होगी। और भीतर कह रही थी कि राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहोगे? और यह राजा बाबू जो बाहर घूमने निकले थे, वे एकदम ठिठककर खड़े हो गए। उन्हें सुनाई पड़ा--राजा बाबू उठो, कब तक सोए रहोगे। वे वापस लौट पड़े।

घर आकर उन्होंने कहा, मैं दूसरा आदमी हो गया। अब राजा बाबू सोए नहीं रह सकते। मैं उठ गया। मुझे एक जगह बात सुनाई पड़ी और मैं बदल गया।

उस स्त्री को पता भी नहीं होगा कि बाहर भी कोई मौजूद था। उसे खयाल भी नहीं होगा कि उसने जो कहा था...उसके राजा बाबू तो शायद सोए ही रहे होंगे, क्योंकि राजा बाबू जिनको हम कहते हैं, वे जल्दी नहीं उठते। लेकिन बाहर एक आदमी जाग गया होगा, इसकी कल्पना भी नहीं थी। हम भी उस घर के सामने से निकल सकते हैं। घर-घर में औरतें राजा बाबूओं को उठाती रहती हैं, लेकिन हमको शायद ही वह बात सुनाई पड़े।

जीवन में तो सब कुछ है। आंख हमारे पास होनी चाहिए। वह आंख ध्यान से उपलब्ध होती है। ध्यान ही उस आंख का दूसरा नाम है। शांत क्षणों में, मौन क्षणों में, सायलेंस में वह आंख उपलब्ध होती है।

थोड़ी सी बातें उस आंख, यानी ध्यान के संबंध में और फिर उसके बाद हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

ध्यान के संबंध में दोत्तीन छोटी सी बातें समझ लेनी बहुत जरूरी हैं।

एक तो...क्योंकि ध्यान ही आंख है। और उस ध्यान से ही परमात्मा का शास्त्र पढ़ा जा सकता है। और उस ध्यान से ही जीवन के जो छिपे हुए रहस्य हैं, वे अनुभव में आ सकते हैं।
तो ध्यान को ठीक से समझ लेना जरूरी है कि ध्यान क्या है?

ध्यान को समझने में सबसे बड़ी जो बाधा है, वह ध्यान के संबंध में हमारी बहुत सी धारणाएं हैं। वे धारणाएं रोक देती हैं--समझ हम नहीं पाते कि ध्यान क्या है।

ध्यान के संबंध में, एक तो निरंतर हजारों वर्षों से यह खयाल पैदा हुआ है कि ध्यान कोई एफर्ट है, कोई प्रयत्न है, कोई चेष्टा है। कोई बहुत चेष्टा करनी है ध्यान के लिए। ध्यान चेष्टा नहीं है। बल्कि ध्यान चित्त की बड़ी निश्चेष्ट, बड़ी एफर्टलेस, बड़ी प्रयत्नरहित अवस्था और

दशा है। जितनी आप ज्यादा चेष्टा करेंगे, उतना ही ध्यान मुश्किल हो जाएगा। क्योंकि चेष्टा में आपका चित्त तन जाएगा, खिंच जाएगा, तनाव से बेचैन हो जाएगा और जो चित्त बेचैन है, वह ध्यान में नहीं जा सकता है।

तो ध्यान के संबंध में पहली बात तो यह समझ लेनी जरूरी है कि ध्यान है एफर्टलेसनेस, समस्त प्रयास रहितता। कोई प्रयास नहीं है ध्यान।

क्या आप बैठे हैं आंख बंद करके, प्राणायाम करके--दबा रहे हैं खुद के चित्त को, खींच रहे हैं, ला रहे हैं--यहां से वहां, इस पर लगा रहे हैं, उस पर लगा रहे हैं--यह सब ध्यान नहीं है। यह होगा व्यायाम। इससे ध्यान का कोई संबंध नहीं। कोई कसरत करनी हो, तो बात अलग है। यह कसरत है--इस तरह का जो ध्यान है।

मेरी दृष्टि में ध्यान तो एक विश्राम है, टोटल रिलेक्सेशन है। चित्त इतना निष्क्रिय, इतना अक्रिय, इतना निश्चेष्ट कि जैसे कुछ भी नहीं कर रहा है। जैसे कोई झील चुपचाप सोई है। और उस चुपचाप सोई झील में चांद का प्रतिबिंब बन रहा है, रिफ्लेक्शन बन रहा है। ऐसा ही चित्त जब एक झील की तरह शांत, चुपचाप सोया है, चुपचाप मौन पड़ा है, तब, तब चित्त एक दर्पण बन जाता है। और उसमें जीवन का जो शास्त्र है, परमात्मा का जो शास्त्र है, वह प्रतिफलित होने लगता है, उसके प्रतिबिंब बनने लगते हैं।

तो ध्यान के लिए पहली तो बात है--कि हम प्रयास न करें। हमारा जीवन तो सब प्रयास है। हम जो भी करते हैं, प्रयास से ही करते हैं। अप्रयास का हमें कोई पता ही नहीं, कोई खयाल ही नहीं। वह हमारे जीवन का अनुभव ही नहीं है।

लेकिन कुछ चीजें हैं जो प्रयास से नहीं आतीं। जैसे आपके परिचय में एक चीज है--नींद। नींद प्रयास से नहीं आती। अगर आप कोशिश करें नींद लाने की, तो आपकी कोशिश ही नींद नहीं आने देगी। करें, कोशिश करके देखें? किसी दिन नींद लाने की कोशिश करके देखें? करवट बदलें, जंत्र-मंत्र पढ़ें, कुछ और करें, कुछ देवी-देवताओं का स्मरण करें, और नींद लाने की कोशिश करें? उठें, बैठें, दौड़ें, नींद लाने की कोशिश करें? आप जितनी कोशिश करेंगे, नींद उतनी दूर हो जाएगी।

जिन लोगों को नींद न आने की बीमारी होती है, उनको असल में पता ही नहीं है, उनको नींद न आने की बीमारी नहीं है, उनको नींद लाने की बीमारी है। वह नींद लाने की जो कोशिश में पड़ गए हैं, तो एक चक्कर खड़ा कर लिया है, अब नींद उन्हें नहीं आ सकती। नींद न आने की बीमारी किसी को भी नहीं है। नींद लाने की बीमारी जरूर कुछ लोगों को पैदा हो जाती है। और फिर, फिर नींद आनी बंद हो जाती है। नींद लाने की कोशिश से नींद नहीं आ सकती, क्योंकि कोशिश नींद विरोधी है।

अमरीका में कोई तीस प्रतिशत लोग बिना नींद की दवाओं के नहीं सो रहे हैं। और वहां के मनोचिकित्सकों का खयाल है कि सौ वर्ष बाद अमरीका में एक भी आदमी स्वाभाविक रूप से सोने में समर्थ नहीं रह जाएगा। एक ही शर्त खयाल में रखकर--अगर अमरीका या आदमी बचा सौ साल बाद। तो ऐसा नहीं हो सकता कि कोई आदमी बिना ही दवा के सो जाए।

अगर सौ साल बाद अमरीका के उन लोगों को कहा जाएगा कि एक जमाना ऐसा भी था कि लोग बस जाते थे, सिर रखा बिस्तर पर और सो जाते थे। तो क्या वे लोग विश्वास कर सकेंगे? क्या वे मान सकेंगे कि ऐसा भी कभी हो सकता है कि कोई आदमी जाए और बस सो जाए! हद हो गई। यह तो हो ही नहीं सकता।

अभी भी जिसको नींद नहीं आती है, उससे आप कहिए कि हम तो तकिए पर सिर रखते हैं और सो जाते हैं। तो वह कहेगा, आप क्या झूठी बातें कर रहे हैं, कोई तरकीब होगी जरूर आपकी, बताते नहीं हैं। क्योंकि मैं तो तकिए पर बहुत सिर रखता हूं, लेकिन नहीं सो पाता।
ध्यान भी इतनी ही सरल बात है, इतनी ही सरल। लेकिन प्रयास करिएगा, तो बाधा पड़ जाएगी।

अभी हम जब यहां, अभी रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे, तो एक बात खयाल में रखिए, कोई प्रयास नहीं करना है। ऐसा ढीले-ढाले चुपचाप रह जाना है, कोई चेष्टा नहीं करनी। ध्यान लगाने की, लाने की कोई कोशिश नहीं करनी। फिर आप कहेंगे, हम क्या करेंगे? बस, आप एक ही कृपा करें, कुछ न करें। और ध्यान आना शुरू हो जाएगा।

लेकिन यह काम बड़ा कठिन है। अगर करने का होता तो आप कर देते, चाहे वह कितना ही कठिन होता। लेकिन न करने का काम बड़ा कठिन है। क्योंकि हमारी पकड़ में नहीं आता कि हम क्या करें? और न करने की हमारी कोई आदत नहीं है कि हम खाली बैठ जाएं और कुछ न करें। हम कहेंगे, कुछ तो बताइए--राम-राम जपें, माला दे दीजिए, कुछ बताइए, हम कुछ करें?

मेरे पास रोज लोग आते हैं। वे कहते हैं, सब ठीक है। लेकिन आप कुछ तो बता दीजिए कि हम करें। करने जैसा कुछ बता दीजिए तो फिर सब ठीक हो जाए। अब कठिनाई यह है कि जैसे ही आपने करना शुरू किया, आप ध्यान के बाहर हो गए। करना यानी ध्यान के बाहर हो जाना। न करना, नो एक्शन, यानी ध्यान में हो जाना। न करने की सारी बात है। कुछ भी न करें।

लेकिन आप कुछ न भी करेंगे, तो भी भीतर तो विचार चलेंगे ही। उनकी तो आदत है निरंतर की। वे भीतर गतिमान होते रहेंगे, उनका चक्कर भीतर चलता रहेगा। उनके साथ क्या करें? उनके साथ भी कुछ न करें। चुपचाप उन्हें देखते रहें। वे आपका बिगाड़ भी क्या रहे हैं? वे आपका क्या हर्ज कर रहे हैं? आपका कौन सा नुकसान हुआ जा रहा है? झींगुर बोल रहे हैं दरख्तों पर, आकाश में बादल चल रहे हैं, हवाएं बह रही हैं, ऐसे ही विचार चल रहे हैं--आप परेशान क्यों हैं उनसे?

लेकिन हमें सिखाया गया है, विचारों को रोको। विचारों को रोक लिया तो ध्यान हो जाएगा। हो गई मुसीबत। विचार रोक नहीं सकेंगे आप और ध्यान कभी होगा नहीं।
विचार को रोकने की कोशिश ही विचार को निमंत्रण है।

विचार का सीधा सा सूत्र है। जिस चीज को हम रोकना चाहेंगे विचार के तल पर, वह चीज दुगने बल से आनी शुरू हो जाएगी। रोककर देख लें कोई एकाध विचार। कोशिश कर लें कि इसको हम न आने देंगे।

सुनी होगी कथा आपने। तिब्बत के एक फकीर के पास एक युवक गया था। उससे चाहता था कोई मंत्र दे दे, कोई सिद्धि हो जाए। उस फकीर ने बहुत समझाया, कोई मंत्र मेरे पास नहीं, कोई सिद्धि मेरे पास नहीं, मैं बिलकुल सीधा-साधा आदमी हूं। मैं कोई बाजीगर नहीं हूं, कोई मदारी नहीं हूं। किन्हीं मदारियों के पास जाओ। वैसे कई मदारी साधु-संन्यासी के वेश में उपलब्ध होते हैं, उन्हें खोज लो कहीं, वे शायद कोई तुम्हें मंत्र दे दें।

लेकिन वह युवक माना नहीं। जितना उस साधु ने समझाया कि जाओ, उतना ही उसे लगा कि है कुछ इसके पास, रुको। पर उसे पता नहीं चला कि यही सीक्रेट था, इसी में वह उलझ गया। साधु धक्के देने लगा कि जाओ, दरवाजे बंद कर लेता।

हमारे मुल्क में...ऐसे साधु सारी दुनिया में होते हैं। पत्थर मारेंगे, गाली देंगे...जितना पत्थर मारेंगे, जितना गाली देंगे, उतने ही रसलीन भक्त उनके आसपास इकट्ठे होंगे! क्योंकि यह आकर्षण बन गया कि जरूर कुछ होना चाहिए यहां। जहां कुछ होता है, वहां से भगाए जाते हैं। तो जरूर यहां कुछ होना चाहिए। कई होशियार लोगों को यह तरकीब पता चल गई। वे पत्थर फेंकने लगे, गाली देने लगे, गोबर फेंकने लगे, लोगों को चिल्लाने लगे, यहां मत आओ--और लोग वहां इकट्ठे होने लगे। इकट्ठा करने का यह एक ढंग हुआ।

उस साधु ने, बिचारे को पता नहीं था, वह तो सहज ही उसे भगाता था, लेकिन वह युवक पीछे पड़ गया। वह आकर दरवाजे पर बैठा रहता, पैर पकड़ लेता। आखिर उसने देखा कि कोई रास्ता नहीं है, इसे मंत्र देना ही पड़ेगा। और उसने मंत्र दिया भी। लेकिन उसको मंत्र मिल नहीं सका। एक कंडीशन, एक शर्त लगा दी और सब गड़बड़ हो गया।

सभी होशियार लोग कुछ न कुछ शर्त जरूर पीछे लगा देते हैं। ताकि जब मंत्र सिद्ध न हो, तो कहने को रह जाए कि शर्त पूरी नहीं हुई। नहीं तो मंत्र तो बराबर सिद्ध होता। शर्त तुमने पूरी नहीं की, कसूर तुम्हारा है। और शर्त कुछ ऐसी होती हैं कि वे पूरी हो ही नहीं सकतीं। उसने एक शर्त लगा दी। उसने कहा, यह मंत्र ले जाओ, पांच ही बार पढ़ना, सिद्ध हो जाएगा आज रात। लेकिन जैसे ही वह उतरने लगा, सीढ़ियों से मंत्र लेकर। उसने कहा, ठहरो, मैं शर्त तो भूल ही गया बताना। उसके बिना तो कुछ होगा नहीं। कौन सी शर्त? कहा, बंदर का स्मरण न आए। बस पांच बार पढ़ लेना बिना बंदर को स्मरण किए, सब ठीक हो जाएगा।

उस युवक ने कहा, क्या शर्त बताई है आपने भी फिजूल, जिंदगी हो गई मुझे बंदर का स्मरण नहीं आया। मैं कोई डार्विन का भक्त थोड़े ही हूं कि मुझे बंदर का स्मरण आता हो। मैं डार्विन को मानता ही नहीं। मैं यह विकासवाद, यह ईवलूशन कुछ नहीं मानता। बंदर से मेरा क्या नाता। बंदर कोई मेरे मां-बाप थोड़े ही हैं।

लेकिन उसे पता चला कि डार्विन को मानो या न मानो--बंदर को रोक लगा दी गई थी, बंदर आना शुरू हो गया। वह चला भी था, सीढ़ियां भी नहीं उतर पाया था कि उसने देखा भीतर बंदर मौजूद हो गया। वह बहुत घबड़ाया। बाहर बंदर हो तो भगा भी सकते हैं, अब भीतर हो तो क्या करें? घर पहुंचते-पहुंचते उसने एक बंदर को हटाने की कोशिश की, उसने पाया कि और बंदर चले आ रहे हैं। घर पहुंचते-पहुंचते उसके मन में बंदर ही बंदर बैठ गए। सब तरफ से वे उसे चिढ़ा रहे हैं। सब तरफ से पूंछ हिला रहे हैं। अब बहुत मुश्किल हो गई। वह तो बहुत घबराया कि अजीब बात है। आज तक जीवन में ये बंदरों से कभी कोई संबंध नहीं रहा, कोई मैत्री नहीं रही। कोई वास्ता नहीं रहा इन बंदरों से, यह हो क्या गया है मुझे! नहाया, धोया, सब उपाय किए, अगरबत्ती जलाई, धूप-दीप जलाए--जैसे कि धार्मिक लोग करते हैं, जैसे इनसे कुछ हो जाएगा! कमरा बंद किया, नहा-धोकर बैठा, लेकिन कितने ही नहाओ-धोओ, बंदर कोई पानी से डरते नहीं हैं। और कितने ही धूप-दीप जलाओ, बंदरों को पता भी नहीं उनका। और बंदर बाहर होते तो कोई उपाय भी था। बंदर थे भीतर। उनको निकालने का कोई रास्ता न था। वह जितनी आंख बंद करने लगा, रात जितनी बीतने लगी--मंत्र हाथ में उठाता था, मंत्र बाहर ही रह जाता था, बंदर भीतर। सुबह तक वह घबड़ा गया। समझ गया कि यह मंत्र इस जीवन में अब सिद्ध नहीं हो सकता।

गया, साधु को मंत्र वापस दिया और कहा, अगले जन्म में फिर मिलेंगे। लेकिन खयाल रखना यह कंडीशन फिर से मत लगा देना। यह शर्त मत लगा देना दोबारा, मुश्किल हो जाएगा। यह बंदर तो! हद हो गई! निकालना चाहा, तो बंदर मौजूद हो गए।

आप भी कुछ निकालना चाहें, जिसे निकालना चाहें, वह मौजूद हो जाएगा। यह सीक्रेट ट्रिक है। यह तरकीब है भीतर कि आपको समझाया जाता है विचारों को निकालो, फिर आप आंख बंद करके बैठे हैं, वे निकलते नहीं हैं, वे और चले आ रहे हैं। अब आप परेशान हुए जा रहे हैं।

और जिनने कहा है आपसे, विचारों को निकालो, उन्हीं के पास पहुंच रहे हैं सलाह के लिए कि कैसे विचारों को निकालें! वे कहते हैं और ताकत लगाओ। जितनी आप ताकत लगाओगे, उतना ही निकालना असंभव होता चला जाएगा। और तब आप सिर पीट लोगे। और उनसे पूछोगे कि एक्सप्लेनेशन क्या है इस बात का कि मैं निकालने की कोशिश करता हूं, विचार तो निकलते नहीं है?

वे कहेंगे, इसमें पिछले जन्मों के पापों का फल है! इसमें प्रारब्ध है! इसमें परमात्मा का हाथ है! इसमें और न मालूम कितनी बातें वे आपसे कहेंगे। और आपको वे भी मान लेनी पड़ेंगी, क्योंकि विचार आप निकाल नहीं सकते। तो कोई एक्सप्लेनेशन तो चाहिए, कि आपको समझ में आ जाए कि विचार क्यों नहीं निकलते। आप कमजोर हैं, पापी हैं--वे पच्चीस बातें आपको समझा दी जाएंगी। एक बात छोड़कर कि विचार इसलिए नहीं निकल रहे हैं, क्योंकि आप उन्हें निकालना चाहते हैं। इतना सा सीक्रेट है, इतनी सी सच्चाई है, बाकी सब बकवास है।
तो विचार को निकालने की कोशिश न करें।
फिर क्या करें?

तो चुपचाप देखते रहें। आने दें, जाने दें--आप देखते रहें। देखने में इतनी घबड़ाहट क्या है, इतना डर क्या है? लेकिन डर है और आपको पता नहीं है। और जब तक आपको उस भय का, उस फिअर का पता न हो जाए, तब तक आप देखने में भी समर्थ नहीं हो सकते। मैं लाख कहूं कि देखते रहें--आप देख नहीं सकते। क्योंकि देखने के पीछे भी हजारों साल की परंपरा ने एक भय पैदा कर दिया। वह परंपरा यह कहती है कि बुरे विचार मन में नहीं होने चाहिए। सो आपने सब बुरे विचार भीतर दबाकर और उनके ऊपर बैठ गए हैं आप।

तो जब भी आप शांत होकर देखना शुरू करेंगे, तो अच्छे विचार तो कम आएंगे, बुरे विचार ज्यादा आएंगे। फिजूल विचार ज्यादा आएंगे, जिनको आप दबाकर बैठे हुए हैं। और उनसे डर लगता है, क्योंकि सिखाया गया है बुरे विचार नहीं होने चाहिए। तो उस भय के कारण देख भी नहीं सकते। भय के कारण दबाना चाहते हैं, दबाते हैं, उपद्रव शुरू हो जाता है। मन में बंदर इकट्ठे होने लगते हैं। फिर मंत्र सिद्ध नहीं होता है।

पहली बात। यह भय छोड़ दें कि बुरा विचार है या अच्छा विचार है। सब विचार एक जैसे हैं। सब विचार एक जैसे हैं। विचार सिर्फ विचार हैं। उनको तो सिर्फ देखें। यह भय मन से

निकाल दें कि बुरा विचार न उठ आए कहीं। जो भी विचार चल रहे हैं, उनके चुपचाप साक्षी रह जाएं--उन्हें चलने दें, बुरा चले तो बुरे को, अच्छा चले तो अच्छे को। आप कौन हैं बाधा देने वाले? आप कौन हैं निर्णय करने वाले कि कौन बुरा है, कौन अच्छा? आप क्यों यह जजमेंट लेना चाहते हैं? यह क्यों आप तय करना चाहते हैं कि यह अच्छा है, यह बुरा? आपको पता है, क्या अच्छा है और क्या बुरा है?

काश! यही पता होता तो सब बदल गया होता अब तक। यह बिलकुल पता नहीं है। तो चुपचाप निकलने दें जो भी निकल रहा है। लाल मुंह के बंदर अच्छे हैं और काले मुंह के बंदर बुरे हैं--ऐसा मत सोचें। बंदर, बंदर हैं--चाहे लाल मुंह के, चाहे काले मुंह के।

वह अच्छे और बुरे का सवाल न रखें। अच्छे और बुरे के कारण ही आपका चित्त दुविधा से भर जाता है। डर जाते हैं आप कि कहीं बुरा विचार तो नहीं आ रहा है।

नहीं, विचार सब एक जैसे हैं। न कोई बुरा है और न कोई अच्छा है। विचार, विचार हैं। आप सिर्फ देख रहे हैं। एक रास्ते पर खड़े हैं, लोग जा रहे हैं। एक साधुजी जा रहे हैं, वे बहुत अच्छे हैं। एक चोर जा रहा है, वह बहुत बुरा है। आपको क्या लेना-देना है--वे रास्ते से जा रहे हैं?

और किसको पता कौन अच्छा है, कौन बुरा है। हो सकता है साधुजी चोरी का विचार कर रहे हों और हो सकता है चोर साधु हो जाने की योजना बना रहा हो। कोई पक्का नहीं है। कोई हिसाब तय नहीं है कि कौन, कौन है।

तो भीतर क्या-क्या है--इसका बहुत ज्यादा निर्णय आप करेंगे, तो आप जागरूक नहीं हो सकते। आप निर्णय में उलझ जाएंगे और निर्णय में उलझ गए, तो आप विचार में उलझ जाएंगे। और विचार में आप उलझ गए तो--वह तो आप उलझे ही हुए हैं, उससे निकलने का कैसे रास्ता बन सकता है?

खयाल में लें यह बात कि विचार सिर्फ विचार हैं। और हम केवल तटस्थ साक्षी हैं। हम सिर्फ देख रहे हैं। न उन्हें निकालना है, न निकालने की कोई जरूरत है, न कोई सवाल है। सिर्फ देखना है। और जैसे-जैसे आपका देखना गहरा होगा, आप पाएंगे कि जिनको आप कभी नहीं निकाल पाए थे, वे नहीं आ रहे हैं। जैसे-जैसे देखना गहरा होगा, आप पाएंगे--न अच्छा, न बुरा, कोई भी नहीं आ रहा है।

जिस दिन देखना पूरा होता है, जिस दिन वह अंतर्दृष्टि पूरी सजग होती है, उस दिन कोई विचार नहीं रह जाता। न अच्छा, न बुरा--विचार-मात्र नहीं रह जाता है।

तो लोग आपसे कहेंगे कि विचार अलग कर दें तो ध्यान उपलब्ध हो जाएगा। मैं आपसे उलटी बात कहना चाहता हूं। ध्यान को उपलब्ध हो जाएं, विचार विलीन हो जाएंगे।
और ध्यान का अर्थ है: दर्शन, देखना।

वह जो विचारों की धारा बह रही है, उसे देखना चुपचाप।

इस प्रयोग को अभी हम करेंगे।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक १९-१०-६७, रात्रि

५. क्रांति का क्षण

मेरे प्रिय आत्मन्,

एक बहुत पुरानी कथा है। किसी पहाड़ की दुर्गम चोटियों में बसा हुआ एक छोटा सा गांव था। उस गांव का कोई संबंध, वृहत्तर मनुष्य जाति से नहीं था। उस गांव के लोगों को प्रकाश कैसे पैदा होता है, इसकी कोई खबर न थी।
लेकिन अंधकार दुखपूर्ण है, अंधकार भयपूर्ण है, अंधकार अप्रीतिकर है, इसका उस गांव के लोगों को भी बोध होता था। उस गांव के लोगों ने अंधकार को दूर करने की बहुत चेष्टा की। इतनी चेष्टा की कि वे अंधकार को दूर करने के प्रयास में करीब-करीब समाप्त ही हो गए। वे रात को टोकरियों में भरकर अंधकार को घाटियों में फेंक आते। लेकिन पाते कि टोकरियां भरकर फेंक भी आए हैं, फिर भी अंधकार अपनी ही जगह बना रहता है।
उन्होंने बहुत उपाय किए। वह पूरा गांव पागल हो गया अंधकार को दूर करने के उपायों में। अंधकार को धक्के देने की कोशिश करते, तलवारों, लाठियों से अंधकार को धमकाते। लेकिन अंधकार न उनकी सुनता, न उनसे हटता, न उनसे मिटता। और अंधकार को मिटाने की कोशिश में और बार-बार हार जाने के कारण वे इतने दीन-हीन, इतने दुखी, इतने पीड़ित हो गए कि उन्हें जीवन में कोई रस, जीवन में कोई आनंद फिर दिखाई नहीं पड़ता था। एक ही बात दिखाई पड़ती थी कि शत्रु की तरह अंधकार खड़ा है और उस पर वे

विजय पाने में असफल हैं। आखिर वह गांव अंधकार को दूर करने की कोशिश में पागल हो गया।

उस गांव में एक यात्री भूला-भटका हुआ पहाड़ों पर किसी दूसरे गांव का पहुंचा, उस गांव से निकला। उसने उस गांव की हालत देखी। वह हैरान हो गया। उसे विश्वास न आया कि अंधकार को दूर करना भी इतनी कठिन बात है क्या? अंधकार से भी हारने की कोई वजह, कोई कारण है क्या?

उसने उस गांव के लोगों को कहा कि पागल हो तुम। अंधकार बहुत शक्तिशाली नहीं है। तुम इसलिए नहीं हारते हो कि अंधकार शक्तिशाली है और तुम कमजोर हो। तुम हारते इसलिए हो कि तुम अंधकार को सीधा हटाने का उपाय करते हो। अंधकार सीधा नहीं हटाया जा सकता है। इसलिए नहीं हटाया जा सकता कि अंधकार की कोई सत्ता, कोई एक्जिस्टेंस ही नहीं होता है। अंधकार तो केवल प्रकाश की अनुपस्थिति का नाम है। वह तो केवल प्रकाश की एबसेंस है। उसका अपना कोई होना नहीं है कि तुम उसे हटा सको।

अंधकार को मत हटाओ, प्रकाश को जलाओ। और प्रकाश जल आता है तो अंधकार कहीं भी नहीं पाया जाता है। उसने दो पत्थरों से चोट की और प्रकाश को जलाकर उन्हें बताया। वे हैरान हो गए। वे अपनी आंखों पर विश्वास न कर सके कि जो बात इतनी कठिन थी, वह इतनी सरल निकलेगी। प्रकाश आया और अंधकार नहीं था।

पता नहीं यह कहानी कहां तक सच है। और सच हो या न हो, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। लेकिन पूरी मनुष्य जाति अंधकार को दूर करने में लगी हुई है! और अंधकार को दूर करने की इस चेष्टा में अंधकार तो दूर नहीं होता, प्रकाश भी उपलब्ध नहीं होता--लेकिन मनुष्य जरूर दीन-हीन फ्रस्ट्रेटेड, मनुष्य जरूर चिंतातुर, मनुष्य जरूर तनाव से भर जाता है और इस सीमा तक यह बात पहुंच जाती है कि मनुष्य विक्षिप्त हो उठता है।

आज हम करीब-करीब रुग्ण और विक्षिप्त हैं। और इस सारी विक्षिप्तता के पीछे, इस पागलपन के पीछे, जिसमें मनुष्य जाति ग्रसित है--मनुष्य के इस चित्त की रुग्णता के पीछे एक ही, एक ही बात काम कर रही है--वही जो उस गांव में काम कर रही थी। हम अंधकार को दूर करने के प्रयास में संलग्न हैं। प्रकाश को जलाने के प्रयास में नहीं--अंधकार को दूर हटाने के प्रयास में।

हर मनुष्य अस्वस्थ, बीमार और रुग्ण है चित्त के तल पर, क्योंकि वह अंधकार को दूर करने की कोशिश में लगा है। अंधकार दूर नहीं किया जा सकता। इसका यह अर्थ नहीं है कि अंधकार दूर नहीं हो सकता। अंधकार निश्चित ही दूर हो जाता है। लेकिन प्रकाश के जलने से। सीधे अंधकार के साथ कुछ भी करने का उपाय नहीं है। वह है ही नहीं, उसके साथ करने का उपाय होगा कैसे?

हम सब एक निगेटिव, एक नकारात्मक जीवन-विधि से पीड़ित हैं। अंधकार को दूर करने की विधि से पीड़ित हैं। स्वभावतः हम अपने भीतर हिंसा दूर करना चाहते हैं; घृणा दूर करना चाहते हैं; क्रोध दूर करना चाहते हैं; द्वेष, लोभ, मोह दूर करना चाहते हैं;र् ईष्या दूर

करना चाहते हैं। ये सब अंधकार हैं। इनको दूर नहीं किया जा सकता सीधा। इनकी अपनी कोई सत्ता नहीं है।

क्रोध, घृणा, द्वेष यार् ईष्या किसी के अभाव हैं, किसी प्रकाश की अनुपस्थिति हैं। स्वयं किसी चीज की मौजूदगी नहीं हैं। घृणा, प्रेम की अनुपस्थिति है। जैसे अंधकार प्रकाश की अनुपस्थिति है। घृणा को दूर नहीं किया जा सकता सीधा। न द्वेष को, नर् ईष्या को, न हिंसा को। और जब हम इनको सीधा दूर करने में लग जाते हैं, तो अगर हम पागल न हो जाएं तो और क्या होगा। क्योंकि वे दूर नहीं होते। उनको दूर करने की सारी कोशिश व्यर्थ सिद्ध हो जाती है। और जब वे दूर नहीं होते तो दो ही उपाय रह जाते हैं--या तो व्यक्ति पागल हो जाता है, या पाखंडी हो जाता है। जब वे दूर नहीं होते तो उन्हें छिपा लेता है। ऊपर से जाहिर करने लगता है वे दूर हो गए और भीतर, भीतर वे उबलते रहते हैं, भीतर वे मौजूद रहते हैं, भीतर वे चित्त की पर्तों पर सरकते रहते हैं। ऐसा दोहरा व्यक्तित्व पैदा हो जाता है। एक जो ऊपर से दिखाई पड़ने लगता है। और एक, एक जो भीतर होता है।

इस द्वैत में इतना तनाव है, इतनी अशांति है, इतनी कानफ्लिक्ट है। होगी ही, क्योंकि जब एक आदमी दो हिस्सों में टूट जाएगा--एक जैसा वह है, और एक जैसा वह लोगों को दिखलाता है कि मैं हूं।

मैंने सुना है लंदन में एक बहुत अदभुत फोटोग्राफर था। उसने अपने स्टूडियो के सामने एक तख्ती लगा रखी थी। उस तख्ती पर उसने लिख रखा था अपनी फोटो उतारने के दाम की सूची लिख रखी थी। उस पर उसने लिख रखा थाः जैसे आप हैं, अगर वैसा ही फोटो उतरवाना है तो पांच रुपया। जैसे आप दिखाई पड़ते हैं, अगर वैसी फोटो उतरवानी है तो दस रुपया। जैसा आप चाहते हैं कि दिखाई पड़ें, अगर वैसी फोटो उतरवानी है तो पंद्रह रुपया।

एक गांव का ग्रामीण पहुंचा। वह भी चित्र उतरवाना चाहता था। वह हैरान हुआ कि चित्र भी क्या तीन प्रकार के हो सकते हैं। और उसने उस फोटोग्राफर से पूछा कि क्या पांच रुपए को छोड़कर कोई दस और पंद्रह का फोटो भी उतरवाने आता है?

उस फोटोग्राफर ने कहा, तुम पहले आदमी हो, जो पांच रुपए वाला फोटो उतरवाने का विचार कर रहे हो। अब तक तो यहां कोई पांच रुपए वाला फोटो उतरवाने नहीं आया। जिनके पास पैसे होते हैं, वे पंद्रह रुपए वाला ही उतरवाते हैं। मजबूरी, पैसे कम हों तो दस रुपए वाला उतरवाते हैं। लेकिन मन उनका पंद्रह वाला ही रहता है कि उतरे तो अच्छा। पांच रुपए वाला तो कोई मिलता नहीं। जो जैसा है, वैसा चित्र कोई भी उतरवाना नहीं चाहता है।

हम अपने व्यक्तित्व को ऐसी पर्त-पर्त ढांके हुए हैं। इससे एक पाखंड पैदा हुआ है। इस पाखंड से सारा मनुष्य-चित्त रुग्ण हो गया है। और अगर कोई बहुत जिद्दी हो और अगर कोई पाखंडी न होना चाहता हो और आग्रह करता रहे अंधकार को, घृणा को, क्रोध को हटाने का, तो उसके लिए विक्षिप्त हो जाने के सिवाय कोई उपाय नहीं। वह पागल हो जाएगा।

सभ्यता के बढ़ने के साथ-साथ पागलों की संख्या अकारण ही नहीं बढ़ती गई है। जितना सभ्य मुल्क, उतनी ही पागलों की अधिक संख्या।

अमरीका शायद सभ्यता में अग्रणी है, इसीलिए सर्वाधिक पागल वहां होते हैं। और एक न एक दिन यह बात जब समझ में आ जाएगी कि सभ्यता और पागलों का कोई अनिवार्य संबंध है तो आप पक्का समझ लें, जिस मुल्क को पूरा सभ्य होना हो, उसे पूरा पागल हो जाना पड़ेगा। या अगर कोई कौम बिलकुल पागल हो जाए तो समझ लेना कि वह सभ्यता के शिखर पर पहुंच गई है।

यह जो, अगर हम चित्त की बदलाहट की कोई गलत कीमिया, कोई गलत केमिस्ट्री पकड़ लेंगे तो स्वभावतः चित्त विकृत हो जाएगा।

आज की सुबह मुझे स्वस्थ चित्त के संबंध में ही थोड़ी बात करनी है। कल मैंने युवा, ताजा, नया चित्त होना चाहिए इस संबंध में आपसे कुछ कहा था। दूसरे दिन की सुबह, आज मैं, स्वस्थ-चित्त होना चाहिए, इस संबंध में कुछ कहना चाहता हूं। क्योंकि स्वस्थ चित्त न हो तो सत्य की कोई अनुभूति संभव नहीं है।

लेकिन स्वस्थ चित्त होना चाहिए, इसे समझने के लिए, यह समझ लेना जरूरी है कि यह चित्त अस्वस्थ कैसे हो गया ह? यह अनहेल्दी माइंड पैदा कैसे हो गया? यह आदमी का चित्त इतना ज्वर-ग्रस्त, इतना विकृत इतना कुरूप कैसे हो गया? इतना अग्ली कैसे हो गया? क्या बीमारी इस चित्त को लग गई है?

इस चित्त को अंधकार को दूर करने की बीमारी लग गई है। एक बीमारी तो है अंधकार को दूर करने की। और जब यह अंधकार दूर नहीं होता--जिसे हम बुरा कहते हैं, जिसे हम पाप कहते हैं, जिसे हम अनीति कहते हैं--जब वह दूर नहीं होती तो फिर क्या करे आदमी? फिर दो ही रास्ते हैं--या तो पागल हो जाए, या पाखंडी हो जाए।

फिर क्या करे?

तीसरा रास्ता भी है एक। और वह यह कि वह किन्हीं आदर्शों की कल्पना में जो है उसे भूल जाए, एक एस्केप ले ले, एक पलायन ले ले। हिंसक आदमी है, वह अहिंसा का आदर्श बना ले और अहिंसा की योजना और कल्पना में लीन हो जाए और हिंसा को भूल जाए। क्रोधी आदमी है, वह क्षमा का आदर्श बना ले, क्षमा की योजना में लग जाए कि कल मैं क्षमाशील हो जाऊंगा। और कल की इस योजना में आज जो क्रोध है, उसे भूल जाए।

यह तीसरा विकल्प भी मनुष्य के चित्त को अस्वस्थ करता है। क्योंकि तब उसके आज और कल में एक तनाव, एक टेंशन पैदा हो जाता है। वह कल की कल्पना में जीने लगता है और असलियत में जीता है आज। जो आदमी कल अहिंसक होने का विचार कर रहा है कि मैं कोशिश करके कल अहिंसक हो जाऊंगा, प्रेमपूर्ण हो जाऊंगा, क्षमाशील हो जाऊंगा; वह आज क्रोधी है, हिंसक है। और हिंसक आदमी अहिंसक बनने की कोशिश भी करेगा, उस कोशिश में भी हिंसा मौजूद रहेगी।

इसीलिए तथाकथित अहिंसक साधु-संन्यासी, साधक इतनी गहरी हिंसा में संलग्न होते हैं, जिसका कोई हिसाब नहीं। यह जरूर बात सच है कि वे हिंसा दूसरे पर न करके अपने पर ही करते हैं। हिंसा की धारा वे अपने पर ही लौटा लेते हैं। वे खुद के ही विनाश में, खुद के ही

डिस्ट्रैक्शन में संलग्न हो जाते हैं। और किस-किस भांति वे अपने को पीड़ा देने लगते हैं, और उन्हें खयाल भी नहीं होता कि यह सब हिंसा है। लेकिन वे अहिंसा की साधना के लिए यह सब कर रहे हैं।

हिंसक आदमी अहिंसक हो कैसे सकता है? वह जो कुछ भी करेगा उसमें हिंसा होगी। अहिंसा की साधना भी करेगा तो हिंसा होगी। उसका माइंड तो वायलेंट है, वह तो हिंसक है। इसलिए जो भी वह मन करेगा, उसमें हिंसा होगी। क्रोधी आदमी प्रेम की तैयारी करेगा तो उसमें भी क्रोध होगा। बातें प्रेम की होंगी, पीछे क्रोध होगा।

मैंने सुना है। एक क्रोधी बाप का बेटा घर छोड़कर भाग गया था। उसने अखबार में विज्ञापन निकलवाया कि प्यारे बेटे, तुम वापस आ जाओ। तुम्हारी मां तुम्हारे प्रेम में बहुत दुखी है और दिन-रात रो रही है। मैं खुद भी तुम्हारे प्रेम में पागल हुआ जा रहा हूं। शीघ्र वापस लौट आओ। और अंत की पंक्ति थी कि अगर वापस न लौटे तो चमड़ी उधेड़ दूंगा।

वह सारी प्रेम की बातचीत--और शायद क्रोध में उसे खयाल ही न रहा कि अगर वापस न लौटे तो चमड़ी उधेड़ दूंगा। तो तुम चमड़ी उधेड़ोगे कहां, जब वह वापस ही नहीं लौटेगा?

लेकिन लड़का फिर वापस नहीं लौटा। क्योंकि लड़के ने समझ लिया होगा कि न लौटने पर तो चमड़ी नहीं उधेड़ी जा सकती, लेकिन लौटने पर उसका उधेड़ा जाना निश्चित है।

यह बिचारे का प्रेम कितने दूर तक जाएगा--ऊपर-ऊपर होगा। पीछे? पीछे वह मौजूद है आदमी, जो वह है। हमारी सारी इन आदर्शों की बातचीत में--प्रेम की, अहिंसा की, दया की--भीतर हमारी हिंसा, हमारा क्रोध, हमारी क्रूरता सब मौजूद होती है।

मैंने सुना है एक सुबह एक पति अपना अखबार पढ़ रहा था। उसकी पत्नी ने उसे अखबार पढ़ते देखकर चिंता अनुभव की होगी। क्योंकि पत्नियां यह कभी पसंद नहीं करतीं कि उनका पति उनके अतिरिक्त और किसी चीज में उत्सुक हो। अखबार में भी उत्सुक हो तोर् ईष्या पैदा होती है। तो उस पत्नी ने कहा कि ऐसा मालूम होता है कि अब तुम मुझे प्रेम नहीं करते। मैं आधे घंटे से बैठी हूं लेकिन तुमने मेरी तरफ देखा नहीं, तुम अपना अखबार ही पढ़े जाते हो। उसके पति ने कहा, गलती में हो तुम। अब तो मैं तुम्हें और भी ज्यादा प्रेम करता हूं। अब तो तुम्हारे बिना मैं एक क्षण नहीं जी सकता। तुम्हीं मेरी श्वास, तुम्हीं मेरी प्राण हो। और आखिर में कहा कि अब बकवास बंद करो, अब मुझे अखबार पढ़ने दो। अब बहुत हो गया, अब बकवास बंद करो, अब मुझे अखबार पढ़ने दो!

एक ऊपर, एक आवरण जीवन में हम प्रेम का ओढ़े बैठे रहते हैं। और पीछे? पीछे वह हमारी सारी क्रूरता और सारी हिंसा मौजूद होती है। अगर आदमी को जरा खरोंच दो, उसका सारा झूठा व्यक्तित्व खतम और उसके भीतर से असली आदमी बाहर। जरा किसी के पैर पर चोट लगा दो, जरा किसी को धक्का दे दो--वह गई बात, वह जो ऊपर से आदमी था विलीन हो गया, दूसरा आदमी मौजूद हो गया। इस आदमी का पता भी नहीं था कि यह इतनी ही दूरी पर, पास ही मौजूद है।

हम सब के भीतर वह आदमी मौजूद है। और उस आदमी की मौजूदगी और ऊपर से यह आवरण--झूठा, विरोधी--और हमने इस विरोध को, भीतर हिंसा मालूम पड़ती है। तो जो अपोजिट है, जो विरोधी है--अहिंसा, उसका वस्त्र ओढ़ लिया। भीतर क्रोध है तो हमने ऊपर क्षमा का वस्त्र ओढ़ लिया। भीतर घृणा है तो हमने ऊपर प्रेम का वस्त्र ओढ़ लिया।

आदमी का चित्त विकृत है, इस अपोजिट के कारण। यह जो विरोधी ओढ़े हुए है, इसके कारण मनुष्य कभी स्वस्थ नहीं हो सकता। क्योंकि इस विरोधी के ओढ़ने से वह जो भीतर है, वह नष्ट नहीं होगा। बल्कि वह नष्ट हो सकता था, अगर यह विरोधी न ओढ़ा जाता। क्योंकि उसके साथ जीना बहुत कठिन था। उसके साथ एक क्षण जीना कठिन था। इस विरोधी को ओढ़ लेने के कारण उसके साथ जीना आसान हो गया है।

अगर किसी भिखमंगे को यह खयाल हो जाए कि मैं सम्राट हूं--और ऐसा अक्सर भिखमंगों को खयाल हो जाता है, तो फिर भिखमंगेपन के मिटने की कोई संभावना न रही। उसे तो खयाल है कि मैं सम्राट हूं। वह आदमी भिखमंगा है, भिखारी है लेकिन खयाल है कि मैं सम्राट हूं! तो अब उसके भिखमंगेपन के मिटने का क्या मार्ग रहा?

लेकिन इस खयाल से वह सम्राट हो नहीं जाता है। रहता तो भिखमंगा ही है। एक सपना ओढ़ लेता है सम्राट के होने का। और इस सपने ओढ़ लेने के कारण भिखमंगे में रहने की सुविधा मिल जाती है। अगर यह खयाल न हो कि मैं सम्राट हूं और वह जाने कि मैं भिखारी हूं, तो भिखारी होने के साथ जीना कठिन है। उसे बदलना होगा, उसे भिखारीपन से छुटकारा और मुक्ति पानी होगी।

अगर एक बीमार आदमी को खयाल हो जाए कि मैं स्वस्थ हूं, तो फिर? फिर उसकी बीमारी के उपचार की क्या संभावना रही? वह अपनी बीमारी को मिटाने के लिए क्या करेगा?

वह कुछ भी नहीं करेगा। लेकिन इस खयाल से कि मैं स्वस्थ हूं, वह स्वस्थ हो नहीं जाता है; रहता तो बीमार है। लेकिन इस खयाल के कारण बीमारी को भीतर सरकने का, जीने का, मौका मिल जाता है। बीमारी की मिटने की सारी संभावना समाप्त हो जाती है।

बीमारी को मिटाने के लिए, बीमारी को पूरी तरह जानना जरूरी है। बीमारी से मुक्त होने के लिए बीमारी को भुलाना सबसे घातक बात है। और हम सब अपनी बीमारियों को भुलाकर बैठ जाते हैं। हम सब तरकीबें निकाल लेते हैं कि बीमारी भूल जाए। और फिर बीमारी जीती है, भीतर सरकती है। अपरिचित और अनजान हो जाने के कारण, अनकांशस हो जाने के कारण, अचेतन हो जाने के कारण, हमारा उससे ऊपर से कोई संबंध नहीं रह जाता, लेकिन प्राणों को भीतर-भीतर वह रौंद डालती है। मनुष्य इसलिए अस्वस्थ है। मनुष्य का चित्त इसलिए अस्वस्थ है।

इस पूरी बात को अगर हम संक्षिप्त में समझें तो इसका यह अर्थ हुआ कि मनुष्य तथ्यों को छिपाने के लिए आदर्शों का उपयोग करता है। वह जो फैक्टस हैं, उनको छिपाने के लिए फिक्शन खड़े करता है। जो तथ्य हैं, जो सच्चाइयां हैं, उन्हें छिपाने के लिए झूठी कल्पनाएं

और आदर्श और आइडिअल्स खड़े करता है। और फिर इन आदर्शों के कारण तथ्यों को भूल जाता है। लेकिन तथ्य हैं, वे भूलने से मिटते नहीं हैं।

अगर कोई चीजें भूलने से मिटती होतीं, तब तो बहुत आसान बात थी। तब तो एक आदमी शराब पी लेता और और दुख मिट जाता। लेकिन शराब पीने से दुख मिटता नहीं, केवल भूलता है। आदर्शों की शराब पी लेने से भी जीवन के तथ्य बदलते नहीं, मौजूद रहते हैं।

यह हमारा ही देश है, यह अहिंसा की शराब हजारों साल से पी रहा है। लेकिन एक भी आदमी अहिंसक नहीं हो पाया है। हिंसा मौजूद है। हमारे चित्त में सब तरफ हिंसा मौजूद है। लेकिन हम अहिंसा की बातें करके अपनी हिंसा को छिपाए रखते हैं। जरा सी चोट और हमारे हिंसा के फब्बारे निकलने शुरू हो जाते हैं। हमारे कवि हिंसा के गीत गाने लगते हैं। हमारे नेता हिंसा की बात करने लगते हैं। हमारे साधु-संन्यासी भी कहने लगते हैं, अहिंसा की रक्षा के लिए अब हिंसा की बहुत जरूरत है। वह सारी अहिंसा एक क्षण में विलीन हो जाती है। हम हजारों साल से प्रेम की बातें करते रहे हैं। लेकिन हमारे जीवन में कहां है प्रेम? हम दया की, सेवा की बातें करते रहे हैं। कहां है दया और कहां है सेवा? और हमारी सारी सेवा और हमारी सारी दया भी हमारे गहरे से गहरे स्वार्थों की अनुचर हो गई है।

एक आदमी को मोक्ष जाना है, इसलिए वह दया करता है, दान करता है। यह दया और दान है, या कि सौदा है? एक आदमी को आत्मा को पाना है, इसलिए वह सेवा करता है गरीबों की। यह सेवा है, या अपने स्वार्थ के लिए गरीब को भी उपकरण बनाना है?

एक चर्च में एक पादरी ने रविवार के दिन आने वाले बच्चों को समझाया कि जिन्हें भी स्वर्ग जाना है, उन्हें सेवा जरूर करनी चाहिए। उन बच्चों ने पूछा, हम कैसे सेवा करें, क्योंकि स्वर्ग तो हम सब जाना चाहते हैं? उस पादरी ने कहा, कई प्रकार हैं सेवा के। डूबता हुआ कोई हो तो उसे बचाना चाहिए। किसी घर में आग लग गई हो तो जाकर घर का सामान या व्यक्तियों को बाहर निकालना चाहिए। या बहुत सरल सी बात, कोई भी, किसी तरह का किसी को सहायता पहुंचानी हो तो पहुंचानी चाहिए।

अगले रविवार को जब वे बच्चे फिर आए तो उस पादरी ने पूछा, तुमने कोई सेवा का कार्य किया? तीन बच्चों ने हाथ उठाए। एक बच्चे से पूछा, उसने क्या किया? उसने कहा, मैंने एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई। दूसरे से पूछा, उसने धन्यवाद दिया कि खुश हूं मैं, तुमने बहुत अच्छा काम किया। दूसरे बच्चे से पूछा, तुमने क्या किया? उसने कहा मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई। वह थोड़ा हैरान हुआ। लेकिन फिर उसको भी धन्यवाद दिया। और तीसरे से पूछा, तुमने क्या किया? उसने कहा, मैंने भी एक बूढ़ी औरत को सड़क पार करवाई।

वह बहुत हैरान हुआ। उसने कहा, क्या तीन बूढ़ी औरतें तुम्हें पार करवाने को मिल गईं। उन तीनों ने कहा, तीन कहां, एक ही बूढ़ी औरत थी। तो वह बहुत हैरान हुआ कि तुमको, तीन को उसे पार करवाना पड़ा! उन तीनों ने कहा, वह पार होना ही नहीं चाहती थी, बड़ी

मुश्किल से पार करवाया। वह तो बिलकुल भागती थी--पकड़कर, बिलकुल जबर्दस्ती हमने पार करवाई। क्योंकि स्वर्ग जाना तो जरूरी है, और सेवा करनी ही पड़ेगी।

उस पादरी ने कहा, अब कृपा करके ऐसी सेवा मत करना। अच्छा किया कि तुमने औरत को ही पार करवाया। कहीं मकान में आग लगवाकर लोगों को नहीं बचाया। या किसी को नदी में डुबाकर प्राण नहीं बचाए। यही बहुत है। अब तुम और सेवा मत करना।

सेवकों ने दुनिया में ऐसे बहुत से काम किए हैं। लेकिन उन्हें सेवा करनी जरूरी है, क्योंकि स्वर्ग जाना जरूरी है। ये सारी सेवा, ये सारे दान, ये सारी दया, ये सारी अहिंसा की बकवास--हमारे भीतर जो असली आदमी है, उसको छिपा लेती है। और वह जो असली आदमी है, वही है। जो कुछ भी होना है, उसके द्वारा होना है। जो भी जीवन में क्रांति या न-क्रांति, जीवन में कोई परिवर्तन या न-परिवर्तन, जो कुछ भी होना है, उस असली आदमी से होना है, उस फैक्चुअल आदमी से, जो मैं हूं, जो आप हैं।

यह आदर्शों से कुछ भी होना नहीं है। लेकिन आदर्शों में हम अपने को छिपा लेते हैं। एक बुरा आदमी अच्छे बनने की कोशिश में यह भूल जाता है कि मैं बुरा आदमी हूं। यही वह भूलना चाहता है। यही वह भूलना चाहता है कि मैं बुरा आदमी हूं।

इसलिए सब बुरे आदमी अच्छे आदर्शों को पकड़ लेते हैं। अच्छे आदर्श की जो बात करता हो--पहचान लेना, उसके भीतर बुरा आदमी मौजूद है। बुरा आदमी मौजूद न हो तो अच्छे आदर्श की बात हो ही नहीं सकती। क्योंकि तब आदमी अच्छा होगा, अच्छे आदर्श का सवाल कहां है। अच्छा आदर्श भीतर छिपे हुए बुरे आदमी की तरकीब है और बहुत गहरी तरकीब है, जिससे वह अपने को बचा लेता है।

अच्छे बनने की कोशिश में बुरा आदमी भूल जाता है। और बुरा आदमी जब तक मौजूद है भीतर, तब तक कोई अच्छा आदमी बन कैसे सकता है? वह लाख उपाय करे, वह जो भी करेगा, उसमें बुरा आदमी भीतर से लौटकर फिर खड़ा हो जाएगा।

रोज हम देखते हैं, लेकिन शायद देखने की क्षमता हमने खो दी। बुरा आदमी भीतर मौजूद है, वह हिंसा और घृणा से भरा हुआ चित्त--तो फिर आप कुछ भी करें, आप जो भी करेंगे, चाहे कितना ही पवित्र काम करें, आपके पवित्रतम काम के पीछे भी चूंकि बुरा आदमी मौजूद है, आपका पवित्रतम काम भी धोखा होगा। उसके पीछे भी असलियत कुछ और ही होगी।

लेकिन हो सकता है ऊपर से वह दिखाई पड़नी बंद हो जाए। शायद लोगों को दिखाई न पड़े। लेकिन आपको भलीभांति दिखाई पड़ सकती है। और आपको दिखाई पड़ जाए तो आप स्वस्थ चित्त की दशा में, स्वस्थ चित्त के मार्ग पर अग्रसर हो जाते हैं।

पहली बात है, स्वस्थ चित्त की दिशा में पहला कदम, पहला सूत्र इस सत्य को देखना कि तथ्य में मैं क्या हूं? आदर्शों में नहीं। फैक्चुअलिटि क्या है? मेरी आयाडियोलाजी क्या है, यह नहीं। आप क्या मानते हैं, यह नहीं। आप क्या हैं? सच्चाई क्या है आपकी?

अगर हम इसको जानने के लिए राजी हो जाएं--और इसको हम जानने को तभी राजी हो सकते हैं, जब यह व्यर्थ खयाल हमारा छूट जाए कि आदर्शों की कल्पना और आदर्शों की

दौड़ में हम बदल सकते हैं, परिवर्तित हो सकते हैं। कभी कोई आदर्शों के द्वारा परिवर्तित नहीं हुआ है। ऊपर से दिखाई भी पड़े कि यह आदमी बदल गया, भीतर वही आदमी मौजूद रहेगा।

एक गांव में एक बहुत क्रोधी आदमी था। इतना क्रोधी था कि उसने अपनी पत्नी को कुएं में फेंक दिया। उसकी पत्नी मर गई। पीछे उसे पश्चात्ताप हुआ होगा। सभी क्रोधी लोग पीछे पश्चात्ताप जरूर कर लेते हैं। उस भांति उनका जो अपराध भाव है, समाप्त हो जाता है। वे फिर से क्रोध करने के लिए तत्पर और तैयार हो जाते हैं। पश्चात्ताप तरकीब है--किए गए बुरे से साफ कर लेने की स्वयं को।

उसने पश्चात्ताप किया। उसने मित्रों से कहा कि मैं बहुत दुखी हुआ हूं। अब इस क्रोध से मुझे किसी न किसी रूप में छुटकारा पाना है। हद हो गई। यह तो सीमा के बाहर चला गया। जिस पत्नी को मैं प्रेम करता था, उसी की मैंने हत्या कर दी। यह वाक्य कितना ठीक लगता है कि जिस पत्नी को मैं प्रेम करता था, उसी की मैंने हत्या कर दी। लेकिन यह वाक्य क्या ठीक हो सकता है? क्योंकि जिसको हम प्रेम करते हैं, उसकी हत्या कर सकते हैं? लेकिन हम रोज यह कहते हैं कि जिस बच्चे को मैं प्रेम करता था, उसको मैंने चांटा मार दिया। जिस मित्र को मैं प्रेम करता था, उससे मैंने बुरे शब्द बोल दिए। जिस पत्नी को मैं प्रेम करता था, उससे मेरा झगड़ा हो गया। झगड़ा सच है, चांटा मारना सच है, हत्या करना सच है--प्रेम का खयाल झूठा है।

लेकिन उसके मित्रों ने कहा कि तुम्हें पश्चात्ताप हो रहा है, यह बड़ी अच्छी बात है। गांव में एक मुनि आए हुए हैं, तुम वहां चलो। शायद उनसे तुम्हें कोई रास्ता मिल जाए। मुनि के पास उस क्रोधी व्यक्ति को ले गए। और मुनि जो हमेशा से रास्ता बताते रहे हैं, पेटेंट, वह उन्होंने उसे बता दिया--कि तुम संन्यासी हो जाओ, बिना संन्यासी हुए क्रोध इत्यादि से छुटकारा नहीं हो सकता। संसार में रहोगे, तो तो क्रोध और लोभ और मोह में फंसे ही रहोगे। यह तो संसार में स्वाभाविक है। संन्यासी हुए बिना क्रोध के बाहर तुम नहीं हो सकते हो।

वह आदमी तो दुख में था ही। उसने अपने वस्त्र फेंक दिए, वह नग्न खड़ा हो गया। उसने कहा कि मैं संन्यासी हो गया। वह मुनि भी नग्न थे। मुनि बहुत हैरान हुए और बहुत उन्होंने धन्यवाद किया उस व्यक्ति का कि ऐसा मैंने व्यक्ति नहीं देखा। इतना संकल्पवान! तत्क्षण इतनी शीघ्रता से परिवर्तित हो जाने वाला! एक तो वह बाल्या भील की कथा थी, एक दूसरी तुम्हारी है, उन्होंने कहा।

लेकिन मुनि धोखे में आ गए। और पूरे गांव ने भी प्रशंसा की। लेकिन उनको पता नहीं था, यह क्रोधी आदमी का सहज लक्षण था। क्रोधी आदमी शीघ्रता से कुछ भी कर सकता है। वह उसके एंगर का ही, वह उसके क्रोधी होने का ही सबूत था। संकल्प वगैरह का सबूत नहीं था। और न ही उसके दृढ़ शक्ति वाले और विल पावर होने का सबूत था। वह सिर्फ, उसके

क्रोधी होने का सबूत था। जिस शीघ्रता से उसने पत्नी को कुएं में धक्का दिया था, उतनी ही शीघ्रता से खुद को संन्यास में धक्का दे दिया। ये दोनों एक ही चित्त के लक्षण थे।

लेकिन गांव धोखे में आ गया। वह मुनि भी धोखे में आ गए। उन्होंने कई लोगों को संन्यास की शिक्षा दी थी। लेकिन अब तक वे लोग कहते थे कि हां, कभी संन्यास लेंगे जरूर। लेकिन इस आदमी ने तत्क्षण कपड़े फेंक दिए। गुरु के मन में भी शिष्य का बड़ा आदर हो गया। और फिर उस शिष्य ने जो तपश्चर्या की, उसका तो पूरे देश में कोई मुकाबला न रहा। उसने जैसे कष्टपूर्ण उपवास किए, वह एक-एक पैरों पर घंटों खड़ा रहा। जैसे-जैसे कठिन उसने शीर्षासन किए; जितने उपद्रव हो सकते थे, सब उसने अपने साथ किए। उसके तप की सब जगह प्रशंसा और हवा फैल गई। दूर-दूर से लोग उसके दर्शन को आने लगे कि वह महातपस्वी, उसके तप का कोई प्रतियोगी न रहा।

लोग फिर भी भूल में पड़ गए। उन्हें पता नहीं कि वही क्रोधी आदमी है। और यह क्रोध का ही रूपांतरण है। यह क्रोध का ही रूप है कि वह आदमी आज धूप में खड़ा हुआ है, आज रेत में लेटा हुआ है, कल कांटों पर सोया हुआ है, महीनों भूखा है, सूखकर हड्डी हो गया है। यह क्रोध का ही रूप है। यह किसी को खयाल न आया। लोग कहने लगे महातपस्वी है! ऐसा तपस्वी नहीं देखा गया था।

और जितनी उसको प्रशंसा मिलने लगी, उतना अहंकार उसका मजबूत होने लगा। उतना ही वह और तपस्या करने लगा। फिर तो उसकी ख्याति बहुत फैली। और जब किसी तपस्वी की ख्याति बहुत फैल जाए तो वह राजधानी की तरफ यात्रा करता है। उसने भी यात्रा की। वह तपस्वी राजधानी की तरफ चला। सभी तपस्वी अंततः राजधानी पहुंच जाते हैं। चाहे तप का कोई रूप हो--धार्मिक कि राजनैतिक, कि समाज सेवा का। लेकिन तपस्वी अंत में राजधानी जरूर पहुंचता है!

वह भी राजधानी की तरफ चला। क्योंकि अब छोटे-मोटे गांव काम नहीं कर सकते थे। अब इस तपस्वी के लिए, महातपस्वी के लिए महा-राजधानी चाहिए थी।

वहां राजधानी में उसके बचपन का एक मित्र, उसके साथ पढ़ा हुआ मित्र रहता था। उसने सुनी प्रशंसा अपने इस मित्र की। वह उसके दर्शन को गया। मन में उसके संदेह जरूर था कि वैसा क्रोधी व्यक्ति--कहीं यह सब क्रोध का ही रूपांतरण न हो? यह जो इतनी, इतनी तीव्र तपश्चर्या चल रही है, यह कहीं क्रोध का ही रूप न हो? यह कहीं क्रोध खुद पर ही न लौट आया हो? यह कहीं क्रोध धार्मिक न बन गया हो?

क्रोध धार्मिक बन गया था। उसके मन में शक तो था। वह पहुंचा। सोचा था कि शायद अगर मित्र सचमुच में ही साधु हो गया होगा तो कम से कम मुझे पहचान लेगा। बचपन में वर्षों वे साथ रहे थे। लेकिन जो लोग भी अहंकार की सीढ़ियां चढ़ जाते हैं, वे फिर किसी को भी पहचानते नहीं। सभी उनको पहचानें, यह तो वे चाहते हैं। लेकिन किसी को उन्हें न पहचानना पड़े, ऐसा वे कभी नहीं चाहते हैं। क्योंकि जो किसी को पहचानता है, वह छोटा

हो जाता है। और जो सबसे पहचाना जाता है, सब जिसे रिकग्नाइज करते हैं, वह बड़ा हो जाता है।

देख तो लिया मित्र को उसने, लेकिन पहचाना नहीं। कौन पद पर पहुंचे लोग मित्रों को कब पहचानते हैं? मित्र पास जाकर बैठ गया चरणों में। शक तो मित्र को हुआ कि मुझे पहचान तो उन्होंने लिया है, क्योंकि वे तिरछी-तिरछी आंख से देखकर इधर-उधर देखने लगते थे। क्योंकि न पहचाना होता तो बार-बार देखने की उस तरफ जरूरत भी न थी। और देखने से बच भी रहे थे, उसकी भी कोई जरूरत न थी।

उस मित्र ने पूछा कि क्या महाराज मैं पूछ सकता हूं आपका नाम? महाराज ने कहा, मेरा नाम! अखबार नहीं पढ़ते हो, रेडियो नहीं सुनते हो! मेरा नाम कौन है जो नहीं जानता! लेकिन फिर भी तुम पूछते हो! मेरा नाम है मुनि शांतिनाथ।

कहने से ही मित्र को खयाल आ गया कि शांति कितनी उपलब्ध हुई होगी। लेकिन दो-चार मिनट शांतिनाथ आत्मा-परमात्मा की बातें करते रहे। फिर दो-चार मिनट के बाद उस मित्र ने पूछा कि मुनि जी क्या मैं पूछ सकता हूं, आपका नाम क्या है? मुनि जी तो हैरान हो गए। हद हो गई! अभी इसने पूछा। बताया। कहा कि सुनते हो या कि बहरे हो, कहा मैंने मुनि शांतिनाथ।

मित्र का संदेह मजबूत होने लगा। शांति खो गई थी। दो-चार मिनट आत्मा-परमात्मा की फिर बात चलती रही। मित्र ने फिर पूछा, क्या मैं पूछ सकता हूं आपका नाम? उन्होंने डंडा उठा लिया! उन्होंने कहा कि अब मैं तुम्हें बताता हूं मेरा नाम। उसके मित्र ने कहा, मैं पहचान गया, शांतिनाथ जी। आप मेरे पुराने ही मित्र हैं, कोई फर्क कहीं भी नहीं हुआ है।

चित्त स्वयं को, सबको धोखा देने में समर्थ है। लेकिन धोखे से चित्त रुग्ण होता चला जाता है, अस्वस्थ होता चला जाता है। हम सब भी ऐसे धोखे रोज दे रहे हैं। हमारी मुस्कुराहटें झूठी, हमारा प्रेम झूठा, हमारी दया झूठी, हमारी अहिंसा झूठी और भीतर हमारी जो सच्चाई है, वह बिलकुल और। बाहर से हम मुनि शांतिनाथ हैं, भीतर हम कौन हैं--वह हमें खोजना है और जानना है। वह हमें पहचानना है कि भीतर हम कौन हैं?

यह जो बाहर का सारा का सारा हमने एक फिक्शन, एक कल्पना, एक सपना खड़ा कर रखा है, एक आदर्श अपने ऊपर ओढ़ रखा है--यही है, जो हमारे जीवन में क्रांति को, ट्रांसफार्मेशन को नहीं आने देता है। इसके कारण हम तथ्यों को देख ही नहीं पाते। तो फिर तथ्यों को बदलने का सवाल कहां उठता है?

और, एक और बहुत मजे की बात है कि तथ्यों को देखना ही, उनकी बदलाहट हो जाती है। किसी तथ्य को पूरी तरह देख लेना ही उसकी बदलाहट हो जाती है। लेकिन तथ्य की तीव्रता से हम दर्शन नहीं कर पाते तो बदलाहट नहीं हो पाती।

एक वैज्ञानिक एक प्रयोग करता था। उसने दो बाल्टियों में पानी भरा और दो मेंढक पकड़कर लाया। एक बाल्टी में उसने उबलता हुआ पानी भरा और मेंढक को उसमें छोड़ा। जानते हैं आप क्या हुआ? मेंढक छलांग लगाकर बाहर निकल गया। उबलता हुआ पानी था। क्या

होता? और होना क्या था? इतना तीव्र था उत्ताप जल का--मेंढक दौड़ा, वह छलांग लगाकर बाहर निकल गया। इस बात का दिखाई पड़ जाना मेंढक को कि आग सा पानी है--फिर कुछ करना थोड़े ही पड़ा। हो गई बात। निकल गया बाहर।

दूसरी बाल्टी में उसने मेंढक को डाला। उसमें कुनकुना पानी--ल्यूक-वार्म और धीरे-धीरे बाल्टी को नीचे से वह गरम करता गया। मेंढक मर गया। धीरे-धीरे पानी गरम होता गया, धीरे-धीरे पानी गरम होता गया। मेंढक को किसी तल पर यह पता नहीं चला कि पानी इतना गरम हो गया है कि मैं निकल जाऊं। धीरे-धीरे पानी गरम हुआ, मेंढक एडजस्ट होता गया। मेंढक जो था, वह धीरे-धीरे उस पानी से राजी होता गया, वह धीरे-धीरे गरम होता गया--डिग्री, आधा-डिग्री गरम होता रहा। मेंढक भी उसके साथ तैयारी करता रहा और गरम होता गया। मेंढक, थोड़ी देर में जब वह पानी उबला तो मेंढक उसी में उबल गया और मर गया।

पहला मेंढक छलांग लगाकर क्यों निकल सका? दूसरा मेंढक छलांग लगाकर क्यों नहीं निकल सका?

दूसरे मेंढक को पानी के गरम होने का तथ्य तीव्रता से दिखाई नहीं पड़ सका। धीरे-धीरे पानी गरम होता गया, वह एडजस्ट होता गया और अंत में मर गया।

जो अहिंसक दिखाई पड़ते हैं, वे अपनी हिंसा को कभी नहीं देख पाते अहिंसा के कारण। उनके भीतर की हिंसा ल्यूक-वार्म मालूम पड़ने लगती है, कुनकुनी मालूम पड़ने लगती है। वे रोज छानकर पानी पी लेते हैं। रात भोजन नहीं करते हैं। मांस नहीं खाते हैं। ऐसे वे अहिंसक हो जाते हैं। भीतर की हिंसा कुनकुनी मालूम पड़ने लगती है। लेकिन अगर वे अहिंसा की इस सारी बातचीत को अलग कर दें और पूरी दृष्टि से भीतर की हिंसा को देखें तो जैसे मेंढक छलांग लगाकर बाहर निकल गया, वैसे ही मनुष्य हिंसा के बाहर निकल सकता है। वैसे ही मनुष्य दुख के भी बाहर निकल सकता है। वैसे ही मनुष्य अज्ञान के भी बाहर निकल सकता है।

लेकिन हमारे आदर्श हमारे जीवन को कुनकुना बना देते हैं। और जो आदमी अपने जीवन को जितना आदर्शों से घेर लेता है, उतना ही उसके जीवन में ट्रांसफार्मेशन, वह क्रांति का क्षण कभी भी नहीं आ पाता, जो जीवन को बदल दे और नया कर दे।

अस्वस्थ चित्त है आदर्शों के कारण। लेकिन हम तो यही सोचते रहे हैं हजारों वर्षों से कि आदर्शों के कारण ही हम मनुष्य हैं! पशु नहीं हैं, फलां नहीं हैं, ढिकां नहीं हैं! आदर्श ही हमारे जीवन का लक्ष्य हैं। आदर्श जिसके जीवन में है, वही महान है! आदर्श जिसके जीवन में है, वही नैतिक, वही धार्मिक है!

झूठी हैं ये सब बातें। आदर्श जिसके जीवन में है, वह कभी धार्मिक हो ही नहीं सकेगा। आदर्श खुद को धोखा देने का, सेल्फ डिसेप्शन की तरकीब है, साइंस है। और हजारों साल से आदमी अपने को धोखा दे रहा है। इस प्रवंचना को तोड़ना जरूरी है।

जिस व्यक्ति को भी स्वस्थ चित्त उपलब्ध करना हो, उसे आदर्शों के जाल से मुक्त हो ही जाना चाहिए। फिर हम जीवन के तथ्यों को जैसे वे हैं, देखने में समर्थ हो सकते हैं। फिर हम अपने भीतर उतर सकते हैं और खोज सकते हैं--हिंसा को, क्रोध को, घृणा को।

स्वास्थ्य तो आधा इससे ही उपलब्ध हो जाएगा, जिस क्षण आपके आदर्शों से चित्त मुक्त हो गया। आप एकदम सरल हो जाएंगे। एक ह्यूमिलिटी, एक विनम्रता आ जाएगी। आदर्श की वजह से एक दंभ आ जाता है--मैं अहिंसक हूं, मैं फलां हूं, मैं ढिकां हूं, मैं धार्मिक हूं--ये सब अहंकार के रूप हैं, रोग हैं।

लेकिन जो आदमी सारे आदर्शों को मन से हटा देता है, और मन की तथ्यात्मकता को, वह जो मन है--हिंसा, क्रोध, घृणा से भरा हुआ,र् ईष्या से भरा हुआ--उसको जानता है वह एकदम विनम्र हो जाता है। एक ह्यूमिलिटि अचानक उसके ऊपर आ जाती है। वह देखता है, मैं क्या हूं? तथ्य बताते हैं कि मैं क्या हूं? मेरी असलियत क्या है? और जिस दिन वह पूरी शांति से और पूरी सरलता से, पूरी विनम्रता से इन तथ्यों को देखता है--वह देखना ही, वह दर्शन एक छलांग बन जाती है--एक जंप, उसके जीवन में आ जाता है, एक क्रांति उसके जीवन में आ जाती है।

कैसे हम उन तथ्यों को देख सकेंगे, उसकी बात तो कल सुबह मैं करूंगा।

अभी मैं इतना ही कहना चाहता हूं कि आदर्शों के कारण हम नहीं देख पाते हैं। आदर्शों के कारण एक भ्रमजाल, एक इलूजन पैदा हो जाता है। और हम सब आदर्शों में पाले गए हैं और जी रहे हैं। इससे एक हिपोक्रेसी, एक पाखंड, एक झूठ, एक वंचना खड़ी हो गई है। और वही झूठ, वही वंचना, वही स्वयं को कुछ और समझना--जो कि हम हैं, उससे भिन्न, उससे विरोधी--वही वंचना हमारे जीवन का सारा स्वास्थ्य है।

एक युवक सारी पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकला हुआ था। उस विस्तृत यात्रा में एक अनजान-अपरिचित रास्ते पर एक फकीर से उसका मिलना हो गया। वह फकीर भी अपने गांव को लौटता था। वह युवक जिस देश से आता था, उस देश के सभी लोग सफेद कपड़े पहनते थे। और यह फकीर बड़ा अजीब मालूम पड़ा। यह पूरे ही काले कपड़े पहने हुए था। तो उस युवक ने उस फकीर से पूछा कि आप एकदम काले कपड़े पहने हुए हैं। हमारे देश में तो सभी लोग सफेद कपड़े पहनते हैं। उस फकीर ने कहा, सफेद कपड़े पहन सकूं ऐसा अभी मेरा मन कहां? मन है मेरा काला, इसलिए काले कपड़े पहने हुए हूं।

वह युवक बोला, तब तो सफेद बिलकुल ही पहनने चाहिए। और अगर खादी के मिल जाएं तो और भी अच्छा। क्योंकि काला मन हो तो सफेद कपड़े में छिप जाता है। और खादी के हों, तब तो सोने में सुगंध आ जाती है।

हमारे मुल्क में तो लोग ऐसी नासमझी कभी नहीं करते कि कोई काला कपड़ा पहनता हो और काले चित्त का आदमी। कभी ऐसा हो ही नहीं सकता।

उस फकीर ने कहा, लेकिन मैं दुखी हूं। मैं वही कपड़े पहनना चाहता हूं, जो मैं हूं। क्योंकि सफेद कपड़े पहनने से तुम्हें धोखा हो जाएगा, लेकिन मुझे तो धोखा नहीं होगा। मैं तो जानूंगा। और सफेद कपड़ों के कारण और भी जानूंगा कि भीतर, भीतर सब काला है।

उस युवक ने कहा कि किस गांव में आप रहते हैं? मैं वहां जरूर आना चाहूंगा। और संभव है, अपनी यात्राओं में वहां से मैं निकलूं। तो मैं आपके दर्शन करने आना चाहूंगा। किस मोहल्ले में आप रहते हैं?

उसने कहा, तुम पूछ लेना मेरे गांव में आकर कि झूठों की बस्ती कहां है। मैं वहीं रहता हूं।

झूठों की बस्ती! उस युवक ने कहा हद हो गई। ऐसा नाम हमने सुना नहीं। हजारों बस्तियां हैं हमारे देश में, हजारों मोहल्ले, हजारों नगर, हजारों गांव। हमारे यहां तो ऐसा कभी नहीं सुना गया कि कोई झूठों की भी बस्ती हो। हमारे यहां तो जिस मोहल्ले में लोग एक-दूसरे की गर्दन काटने को तैयार रहते हैं, उसका नाम शांति नगर रखते हैं। और जिस मोहल्ले में हर आदमी एक-दूसरे की जेब में हाथ डाले रहता है, उसका नाम सर्वोदय नगर रखते हैं। हमारे मुल्क में ऐसा कभी हमने सुना नहीं। क्या कहते हैं, झूठों की बस्ती!

लेकिन उसने कहा, हां, मेरी बस्ती का तो यही नाम है। आओ तो पूछ लेना।

वह युवक लंबी यात्राओं में उस गांव में पहुंचा। उसने गांव में जाकर बहुत लोगों को पूछा कि झूठों की बस्ती कहां है। गांव के लोगों ने कहा, पागल हो गए हो? ऐसे तो सारी दुनिया ही झूठों की बस्ती है, लेकिन नाम कौन रखेगा अपनी बस्ती का, झूठों की बस्ती।

उसने कहा, एक फकीर था काला कपड़ा पहने हुए। तो किसी ने कहा, हां, ऐसा एक फकीर है इस गांव में। लेकिन वह झूठों की बस्ती में नहीं, वह तो मुर्दों की बस्ती में रहता है, मरघट में रहता है। तुम्हें मालूम होता है कोई भूल हो गई। उसने कहा होगा मुर्दों की बस्ती, तुम झूठों की बस्ती के खयाल में आ गए। तुम पूछो मरघट कहां है। मरघट पर एक फकीर रहता है इस गांव में, जो काले कपड़े पहनता है।

खैर, वह खोजता हुआ मरघट पहुंचा और बात सच निकली। वह मरघट पर फकीर का झोपड़ा था। फकीर के पास जाकर...वह अंदर गया तो देखा बड़ी हड्डियां, बड़े सिर, खोपड़ियां, उस झोपड़े में चारों तरफ रखी हुई हैं, ढेर लगा हुआ है, और फकीर बीच में बैठा हुआ है। उसने कहा कि आप तो मुझसे कहे थे कि मैं झूठों की बस्ती में रहता हूं और आप तो यहां मुर्दों की बस्ती में रहते हैं। तो मुझे बड़ी परेशानी हुई। पूछते-पूछते हैरान हो गया।

उस फकीर ने कहा, दोनों ही बातें सच हैं। इन मुर्दों की खोजबीन करने से मुझे इस बस्ती का नाम झूठों की बस्ती रखना पड़ा। कैसी खोजबीन? तुम देखते हो, ये हड्डियां और खोपड़ियां रखी हैं। मैंने ब्राह्मण की खोपड़ी को बहुत खोजबीन की कि पता चल जाए शूद्र की खोपड़ी से भिन्न है। लेकिन कुछ पता नहीं चलता। मैंने साधु की हड्डियां खोजीं और असाधु की, और दोनों में बहुत पता लगाया कि कोई फर्क पता चल जाए। फर्क पता नहीं चलता। और ये सारे लोग जब तक जिंदा थे, तब तक ये बहुत फर्क मानते थे कि मैं यह हूं, तुम

वह हो। और मरने पर मैं पाता हूं कि सब मिट्टी साबित हुए। और एक ने भी जिंदगी में यह नहीं कहा कि मैं मिट्टी हूं। इसलिए मैंने इनकी बस्ती का नाम झूठों की बस्ती रख दिया है। सब झूठे थे। असलियत मिट्टी थी। लेकिन न मालूम क्या-क्या दावे करते थे कि मैं यह हूं, मैं वह हूं। मैं ब्राह्मण हूं, तू शूद्र है। मैं नेता हूं, तू अनुयायी है। मैं गुरु हूं, तू शिष्य है। फलां हैं, ढिकां हैं--न मालूम क्या। असलियत एक थी कि सब मिट्टी थे। मरघट पर आकर मुझे यह पता चला, इसलिए मैंने इसका नाम झूठों की बस्ती रख ली।

और शायद तुम्हें हैरानी होगी कि मरघट को बस्ती कहना उचित है या नहीं। तो मैंने इसलिए इसका नाम बस्ती रखा है कि जिसको तुम बस्ती कहते हो, वहां तो रोज कोई न कोई मरता है और उजाड़ हो जाती है। यहां जो एक दफे बस जाता है, फिर कभी नहीं उजड़ता। इसका नाम मैंने बस्ती रख छोड़ा है। और ये सब झूठे थे, मरने से यह पता चल गया।

हम सब भी झूठे लोग हैं। और जब तक हम झूठे लोग हैं, तब तक हम अस्वस्थ रहेंगे। हम स्वस्थ नहीं हो सकते। स्वस्थ होने के लिए झूठ से मुक्त होना जरूरी है।

किस झूठ से?

वह जो हमने अपने व्यक्तित्व के संबंध में सृजन कर रखी है, निर्माण कर रखी है। इस झूठ से मुक्त होना जरूरी है, जो हमने अपने बाबत आदर्शों का जाल खड़ा करके निर्मित कर ली है। और जो इस झूठ से मुक्त नहीं होता, उसका सत्य से कभी कोई संबंध नहीं हो सकता। व्यक्तित्व झूठा हो तो सत्य से मिलन कैसे होगा? सत्य से मिलने के लिए कम से कम सच्चा व्यक्तित्व तो होना चाहिए। कम से कम सच्चाई तो साफ होनी चाहिए कि मैं क्या हूं।

तो आज की सुबह तो इतना ही कहना चाहूंगा कि यह भ्रम-जाल, जो हमने आदर्शों का अपने आसपास खड़ा कर रखा है--उस भ्रम-जाल में हम झूठे आदमी हो गए हैं। और हमारी दुनिया झूठों की बस्ती हो गई है।

कैसे इसको हम देख सकें--उस देखने की प्रक्रिया के लिए कल सुबह मैं आपसे बात करूंगा। अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे।

सुबह के ध्यान के संबंध में दो बातें आपसे कह दूं फिर हम बैठें।

रात हमने ध्यान किया। उसमें हम लेट गए थे। सुबह के इस ध्यान में हम बैठे रहेंगे अपनी जगह। और कोई ज्यादा फर्क नहीं है। शरीर को सीधा रखकर, लेकिन सीधा रखने में कोई तनाव न पड़े। बहुत आहिस्ता से, आराम से। सारे शरीर को ढीला भी छोड़ देना है, ताकि शरीर पर कोई किसी तरह का स्ट्रेन न हो। ऐसे बैठ जाना है, जैसे हम विश्राम कर रहे हैं। फिर बहुत आहिस्ता से आंख बंद कर लेनी है। वह भी बहुत आहिस्ता से। आंख पर भी जोर न पड़े कि हमने आंख भींचकर बंद कर ली हो--पलक गिर जाए।

फिर क्या करेंगे?

फिर कुछ भी नहीं करेंगे। चुपचाप बैठे रहेंगे। जस्ट सिटिंग, कुछ भी नहीं करना है।

वह, जापान में तो ध्यान के लिए कहते हैं--झाझेन। और झाझेन का मतलब होता है: जस्ट सिटिंग, बस खाली बैठे रहना।

एक बहुत बड़ा आश्रम था जापान में। और जापान का बादशाह उस आश्रम को देखने गया। कोई हजार भिक्षु उस आश्रम में रहते थे। आश्रम का जो प्रधान था भिक्षु, उसने बादशाह को सभी जगह दिखलाईं। जाकर दिखलाया एक-एक झोपड़ा--यहां भिक्षु स्नान करते हैं, यहां भोजन करते हैं, यहां अध्ययन करते हैं। बीच में एक विशाल भवन था--राजा बार-बार पूछने लगा और वहां क्या करते हैं? भिक्षु उसकी बात सुनकर चुप रह जाता था। राजा बहुत हैरान हुआ। बाथरूम, पाखाने सब बतलाए। लेकिन वह जो विशाल भवन था, जो देखने जैसा लगता था, उसकी वह भिक्षु बात भी नहीं करता था।

आखिर राजा के विदा का वक्त आ गया। द्वार पर लौट आया, अभी वह भवन नहीं दिखलाया गया था। राजा ने कहा, या तो मैं पागल हूं, या तुम। जिसे मैं देखने आया था, वह भवन तुम दिखलाते नहीं। और फिजूल के झोपड़े मुझे दिखलाते फिरे। अब मैं जा रहा हूं। क्या मैं पूछ सकता हूं, वहां क्या करते हो?

उस भिक्षु ने कहा, तुम्हारे इस पूछने के कारण ही मैं बताने में असमर्थ हो गया। वहां हम कुछ नहीं करते। वह हमारा ध्यान का कक्ष है। वहां हम कुछ भी नहीं करते। तुम बार-बार पूछते हो, वहां क्या करते हो? तो मैं वे झोपड़े तुमको बताता रहा, जहां हम कुछ करते हैं। कहीं स्नान करते हैं, कहीं भोजन करते हैं। इस भवन में हम कुछ भी नहीं करते। तो अब मैं कैसे बताऊं कि हम वहां क्या करते हैं? इसलिए मैं ले नहीं गया। मैं समझ गया कि यह करने की भाषा समझता है, न करने की भाषा समझेगा नहीं। इसलिए मैंने उस भवन को छोड़ दिया। वहां हम कुछ भी नहीं करते। वहां तो हम बस बैठ जाते हैं। कुछ भी नहीं करते। तो यहां भी हम बस बैठ जाएंगे और कुछ भी नहीं करेंगे। आवाजें सुनाई पड़ेंगी, हवाएं पत्तों को हिलाएंगी, वृक्षों से आवाज होगी, उस आवाज को चुपचाप सुनते रहेंगे।

साधना-शिविर, माथेरान, दिनांक २०-१०-६७, सुबह

६. मौन का स्वर

एक मित्र ने आज सुबह सलाह दी है कि मैं सभी प्रश्नों के उत्तर न दूं। उन्होंने कहा है कि बहुत से प्रश्न तो फिजूल होते हैं, उनको आप छोड़ दें।

मुझे उनकी बात सुनकर एक घटना स्मरण हो आई।

एक धर्मगुरु पहली बार ही चर्च में भाषण देने गया था। उसे डर था कि लोग कहीं कोई प्रश्न न पूछें। तो अपने एक मित्र को उसने दो प्रश्न सिखा रखे थे। इसके पहले कि लोग पूछें, तुम मुझसे यह प्रश्न पूछ लेना, उत्तर मेरे तैयार हैं।

जैसे ही उसका बोलना समाप्त हुआ, उसका मित्र खड़ा हुआ। उसने पहला प्रश्न पूछा--वह वही प्रश्न था, जो कि बोलने वाले ने उसे सिखाया हुआ था। बोलने वाले के पास उत्तर भी तैयार था। उसने उत्तर दिया। वह इतना अदभुत उत्तर मालूम पड़ा कि उस चर्च में इकट्ठे लोग अत्याधिक प्रभावित हुए। फिर उसी व्यक्ति ने खड़े होकर दूसरा प्रश्न पूछा। वह भी सिखाया हुआ था। उसका उत्तर और भी प्रभावपूर्ण था, चर्च तालियों से गूंज उठा और तभी वह मित्र तीसरी बार खड़ा हुआ और उसने कहा कि महानुभाव! आपने जो तीसरा प्रश्न पूछने को मुझे बताया था, वह मैं भूल गया हूं।

कोई यहां बंधे हुए प्रश्नों के...न तो बंधे हुए प्रश्न हैं, न कोई बंधे हुए उत्तर हैं। फिर एक व्यक्ति जिस प्रश्न को पूछने योग्य समझता है, वह प्रश्न चाहे कितना ही व्यर्थ क्यों न हो, मेरे मन में उस प्रश्न का आदर है। एक मनुष्य ने भी उसे पूछने योग्य समझा, इस कारण मेरे लिए तो उस प्रश्न में आदर हो जाता है। एक भी मनुष्य पृथ्वी पर उसे पूछने योग्य मानता है, यही बात काफी है कि मैं उस प्रश्न को आदर दूं।

फिर प्रश्न महत्वपूर्ण होते हों या न होते हों--प्रश्न को पूछने वाला चित्त जब किसी प्रश्न को पूछता है तो उस चित्त की सूचना मिलती है। उस प्रश्न में चाहे कुछ भी न हो, लेकिन वह प्रश्न उस चित्त के तरफ इशारा करता है जिसने पूछा। हो सकता है पूछने वाला ठीक से पूछ भी न पाया हो कि क्या पूछना चाहता था। लेकिन अगर हम समझपूर्वक उसके प्रश्न को समझें, तो उसकी उलझन को समझने में आसानी मिल सकती है।

और फिर यह भी मुझे दिखाई पड़ता है कि जो एक मनुष्य पूछ रहा है, वह किसी न किसी रूप में हर दूसरे मनुष्य का भी प्रश्न होता है। आदमी का मन इतना समान है, आदमी का चित्त इतना समान है; आदमी की बीमारी, परेशानी, उलझन, इतनी समान है कि अगर आप थोड़ी धीरज से उसे समझने को कोशिश करेंगे तो हर एक मनुष्य की समस्या में आपको अपनी समस्या का भी दर्शन हो सकता है।

लेकिन हम बहुत अधैर्य से काम लेते हैं। और अक्सर तो यह है कि हम इतने नासमझी से काम लेते हैं कि हमें अपना ही प्रश्न केवल महत्वपूर्ण मालूम पड़ता है, इसलिए नहीं कि वह महत्वपूर्ण है--बल्कि अपना है।

सभी प्रश्न महत्वपूर्ण हैं। असल में प्रश्न पूछने की चित्त की दशा महत्वपूर्ण है। सोच-विचार से भरी हुई है। व्यक्ति सोच रहा है, विचार कर रहा है। उसके सोच-विचार में हमें सहयोगी होना है, इसलिए मैं उत्तर दे रहा हूं। इसलिए नहीं कि मेरे उत्तर आप स्वीकार कर लें। मैं केवल साथी होना चाहता हूं आपके चिंतन में। आपने एक प्रश्न पूछा है तो इसलिए उत्तर नहीं दे रहा हूं कि मेरा उत्तर ही आपका उत्तर हो जाना चाहिए। बल्कि केवल इसलिए कि मैं भी आपके चिंतन की प्रक्रिया में साथी और मित्र हो सकूं। आप सोच रहे हैं--मैं भी साथ दे सकूं। हो सकता है, वह प्रश्न महत्वपूर्ण न भी हो। लेकिन सोचने की प्रक्रिया शुरू हो जाए तो वह आपको महत्वपूर्ण प्रश्नों और महत्वपूर्ण उत्तरों पर ले जा सकती है।

इसलिए प्रार्थना करूंगा, आपका प्रश्न हो या न हो, किसी का भी हो, उसे सहानुभूति से समझने की कोशिश करनी चाहिए।

एक मित्र ने पूछा है। उन्होंने कहा है कि वे मुझे प्रेम से भरा हुआ व्यक्ति समझते हैं। लेकिन मैं किन्हीं बातों के विरोध में इतनी कड़वी, इतनी तीखी भाषा का उपयोग कर देता हूं, इससे उन्हें चोट पहुंच जाती है, दुख हो जाता है। तो उन्होंने चाहा है कि मैं ऐसी भाषा का उपयोग करूं, जो किसी को चोट न पहुंचाए। थोड़ी कम कठोर भाषा में सत्यों के संबंध में कहूं।

उनकी बात तो ठीक है। लेकिन मुझे तो ऐसा लगता है, इतनी कठोर भाषा में कहे जाने पर भी मुश्किल से ही किसी के मन तक वह पहुंचती हो। और मधुर भाषा में कहे जाने पर शायद वह आपकी नींद में सुनाई भी न पड़े।

जिसे किसी की नींद तोड़नी हो, उसे जोर से झकझोरना पड़ता है, झकझोरने की इच्छा नहीं होती, क्योंकि झकझोरने में क्या रस है? लेकिन नींद तोड़ना बिना झकझोरे संभव नहीं होता। और कई बार तो हमारे चित्त की जड़ता इतनी गहरी हो जाती है कि बिना चोट पहुंचाए, वहां कोई खबर ही नहीं पहुंचती।

वे ठीक कहते हैं, मेरे हृदय में चोट पहुंचाने का किसी को भी कोई कारण नहीं है, कोई प्रयोजन भी नहीं है। लेकिन मेरा प्रेम ही मुझसे कहता है कि ऐसी जरूरतें हैं कि चोट पहुंचाई जाए।

यूरोप के एक बहुत बड़े चिकित्सक, केनिथ वाकर ने एक छोटी सी किताब लिखी है। और उस किताब को जार्ज गुरजिएफ को समर्पित किया है। और डेडीकेशन में, समर्पण में लिखा

है--टु दि डिस्टर्बर आफ माइ स्लीप। जार्ज गुरजिएफ को समर्पित किया है, लिखा है--मेरी नींद को तोड़ देने वाले जार्ज गुरजिएफ को।

किसी ने वाकर को पूछा कि नींद जब किसी ने तोड़ी होगी तो बड़ी चोट पहुंची होगी। तो उसने कहा, गुरजिएफ पर जितना क्रोध मुझे जीवन में आया था पहली बार, उतना किसी और पर नहीं आया। लेकिन वही आदमी मेरी नींद को तोड़ने वाला भी बन गया। और तब मैंने पीछे जाना कि उसने जो शाक, उसने जो धक्का मुझे दिया था, वह कितना प्रेमपूर्ण था। अगर वह, वह धक्का न देता तो शायद मैं जागता भी नहीं। यह उसकी दया थी कि उसने धक्का दिया और अब मैं अत्यंत आदर से स्मरण करता हूं उसका कि उसने मेरी नींद तोड़ दी।

कोई भी नींद तोड़ने वाले को कभी पसंद नहीं करता है। आप सो रहे हों गहरी नींद में और सुबह चार बजे कोई आपको जगाने लगे, तो मन को बड़ा गुस्सा आता है। मन शायद नींद पसंद करता है। तो आप अगर उस जगाने वाले को कहें कि इस तरह जगाएं कि मुझे धक्का न लगे। मेरी नींद खराब न हो, इस तरह जगाएं। तो वह कहेगा, फिर जगाना भी नहीं हो सकता है।

तो आप ठीक कहते हैं, मेरे शब्द कुछ कठोर हो सकते हैं। लेकिन मेरी समझ में अभी वे इतने कठोर नहीं हैं, जितने होने चाहिए। वे थोड़े और कठोर होने चाहिए। क्योंकि आदमी की नींद बहुत गहरी है, हजारों वर्ष की है। अगर चोट पहुंचे तो चिंतन शुरू होता है, विचार शुरू होता है। हम फिर से पुनर्विचार करने को तैयार होते हैं।

इस देश में हजारों वर्ष से हमने चोट पहुंचानी ही बंद कर दी मस्तिष्क को, उसकी वजह से हम एक सोई हुई कौम हो गए हैं। हमारा कोई भला आदमी कठोर शब्दों का उपयोग नहीं करता। मीठे-मीठे शब्दों का उपयोग करता है। वे मीठे शब्द नींद में लोरियां बन जाते हैं और सोने में सहयोगी हो जाते हैं।

इस देश को, इस देश की सोई हुई चेतना को तो अब उन लोगों की जरूरत है, जो बहुत बेरहमी से आपरेशन करने को तैयार हों--बहुत बेदर्दी से, बहुत सख्ती से। इस मुल्क के कुछ घावों को, कुछ पीड़ाओं को, कुछ बीमारियों को दूर करने के लिए तैयार होना जरूरी है। अगर आपमें से किसी को भी थोड़ी चोट पहुंच जाती हो तो मैं बहुत खुश हूं। आप कृपा करके...और थोड़ी ज्यादा चोट मैं पहुंचा सकूं, ऐसी परमात्मा से आपको प्रार्थना करनी चाहिए।

प्रेम चोट पहुंचाने से नहीं डरता है। बल्कि प्रेम ही अकेला है, जो चोट पहुंचाने की हिम्मत करता है। प्रेम यह देखता जरूर है कि चोट फायदा करेगी या नुकसान। चोट पहुंचाने से प्रेम कभी नहीं डरता है। लेकिन प्रेम यह जरूर देखता है कि चोट फायदा करेगी या नुकसान। अगर चोट न पहुंचाने से हानि होती हो तो प्रेम जरूर चोट पहुंचाता है। और उनका प्रेम कच्चा होगा, जो चोट पहुंचाने से डर जाते हों।

मुझे तो ऐसा ही मालूम पड़ता है कि इस जमीन पर जिन थोड़े से लोगों ने मनुष्य जाति के चिंतन को, चित्त को चोटें पहुंचाई हैं, झकझोर दिया है, हिला दिया है, वे ही थोड़े से लोग मनुष्य को आगे गतिमान करने में सहयोगी और साथी हुए।

धर्म कोई सांत्वना की बात नहीं है, धर्म एक क्रांति है। धर्म एक कंसोलेशन नहीं है, एक रेव्यूल्यूशन है। और हम सारे लोग तो धर्म-मंदिरों में, संन्यासियों और साधुओं के पास, सत्संग में सांत्वना पाने के लिए जाते हैं। वहां तो हम जाते हैं कि हमारी नींद और अच्छी तरह से आए, इसकी वे कोई दवा दे दें। हम संतोष से भर जाएं, इसकी कोशिश करें। लेकिन आपको पता नहीं है; सांत्वना, संतोष और कंसोलेशन जीवन की गति में सबसे बड़ी बाधाएं हैं।

जीवन में चाहिए एक क्रांति, चाहिए एक परिवर्तन। और परिवर्तन अनेक अवसरों पर कष्टपूर्ण होता है। प्रसव की पीड़ा झेलनी पड़ती है। बच्चा पैदा होता है तो पीड़ा झेलनी पड़ती है। जीवन बदलता है तो बहुत सी पीड़ा झेलनी पड़ती हैं। उसकी तैयारी होनी चाहिए। आपकी तैयारी जितनी बढ़ती जाएगी, मैं उतनी ज्यादा चोट पहुंचाने के लिए हमेशा उत्सुक रहूंगा। शायद धीरे-धीरे आपको यह दिखाई पड़े कि चोटों ने आपको फायदा किया, आपको जगाया, आपको होश से भरा।

एक फकीर था हुई-हाई। एक युवक उसके पास आया। और उसने कहा; मैं सत्य को खोजने निकला हूं और साथ में वह शास्त्रों की एक पोटली रखे हुए था। हुई-हाई ने उसकी पोटली छीनकर आग में फेंक दी। वह युवक तो बहुत घबड़ा गया। उसने कहा, आप यह क्या करते हैं! मुझे बहुत चोट पहुंचाते हैं? उसने कहा, सत्य को खोजना हो तो शास्त्रों को आग में झोंक देना जरूरी होता है। और मैं जितनी देर करूंगा, उतनी ही देर सत्य तक पहुंचने में बाधा पड़ जाएगी। तो मैंने जल्दी की है। और अगर शास्त्र को फेंकने से चोट लगती हैं, दिल डरता है तो फिर सत्य की खोज छोड़ दो। शास्त्र को सिर पर रखकर घूमते रहो।

वह युवक डर गया था। चोट खा गया था। उसके आदृत शास्त्र को इस भांति फेंका जाना, बहुत चोट की बात थी। उसने कहा, शास्त्र तो फेंकते हैं ठीक, लेकिन कम से कम मैं भगवान बुद्ध का स्मरण तो कर सकता हूं? उस हुई-हाई ने कहा, जब भी भगवान बुद्ध का नाम मुंह से आ जाए कुल्ला कर लेना, मुंह साफ कर लेना, मुंह गंदा हो जाता है।

वह तो बहुत हैरान हो गया। मुंह साफ कर लेना! उसने कहा, मुंह गंदा हो जाता है! जब भी नाम आ जाए तो पहले मुंह साफ करना, फिर दूसरा काम करना।

पीछे, वर्षों बाद जब उस युवक को सत्य की अनुभूति हुई तो उसने कहा, धन्य था हुई-हाई, जिसने मुझे बुद्ध से बचाया। नहीं तो मैं बुद्ध का नाम ही रटता हुआ समाप्त हो जाता। और आज मैं कह सकता हूं कि मैंने वह जान लिया, जो मैं बुद्ध का नाम रट कर जानना चाहता था, लेकिन नहीं जान सकता था। आज मैं कह सकता हूं कि बुद्ध के प्रति मेरे मन में जो प्रेम और आदर उमड़ा है, वह उस नाम जपने में कहीं भी नहीं था।

लेकिन मैं भी अगर किसी को सलाह दूंगा, तो अब यही दूंगा कि बुद्ध से बचने की कोशिश करना। क्योंकि बुद्ध का नाम, राम का नाम, कृष्ण का नाम परमात्मा तक पहुंचने में बाधा बन जाता है। लेकिन इतना ही ड्रास्टिक, इतना ही सख्त और तीखा हुई-हाई ने उस पर प्रयोग किया था, जिसके लिए पीछे वह धन्यवाद से भरा हुआ रहा।

एक फकीर था। एक रात एक मंदिर में ठहरा हुआ था। सर्द रात थी। मंदिर में वह भीतर गया और बुद्ध की एक प्रतिमा लाकर--लकड़ी की प्रतिमा थी, उसने आग लगा ली और तापने लगा। पुजारी को आग जली दिखी, आधी रात को। वह भागा हुआ अंदर आया कि क्या हुआ। वहां देखकर तो उसके होश खो गए। जिसको साधु समझकर मंदिर में ठहरा लिया था, भूल हो गई--वह आदमी बुद्ध की प्रतिमा जलाकर आंच ताप रहा था। उस पुजारी ने कहा, पागल हो! यह क्या करते हो? भगवान की मूर्ति जला रहे हो!

वह फकीर बोला, भगवान! एक पास पड़ी लकड़ी उठाकर, वह जल गई मूर्ति की राख में टटोलने लगा। उस पुजारी ने पूछा, क्या खोजते हो? उसने कहा, भगवान की अस्थियां खोज रहा हूं। वह पुजारी बोला, निरे पागल हो! लकड़ी की मूर्ति में कहां अस्थियां? उस फकीर ने कहा, फिर रात अभी बहुत बाकी है, और सर्द भी बहुत है, एक मूर्ति और उठा लाओ, अंदर तीन मूर्तियां अभी और रखी हैं, सुबह तक तीन मूर्तियां काम दे देंगी।

वह जो पुजारी था घबड़ाया। लेकिन एक सत्य का उसे पहली दफा दर्शन हुआ। अगर लकड़ी की मूर्ति में अस्थियां नहीं होतीं--यह पागलपन है तो लकड़ी की मूर्ति में भगवान कहां हो सकते हैं--वह भी पागलपन है। लेकिन इसे दिखाने को चोट बड़ी भारी करनी पड़ी।

जो कौमें भयभीत हो जाती हैं चोट करने से भी--चिंतन के लिए भी चोट करने से--वे कौमें मर जाती हैं। जो आदमी चिंतन के लिए भी भयभीत हो जाता है और नपीत्तुली बातें करने लगता है--घेरे के भीतर, मर्यादा में, उसके भीतर प्राणों की ऊर्जा ऊपर उठनी बंद हो जाती है। जिन्हें मार्ग तय करना है, उन्हें तो बहुत सी चोटों के लिए तैयार होना चाहिए। यह मन बहुत कमजोर है जो छोटी-छोटी चोटों से इतना घबड़ा जाए। और हम छोटी-छोटी बातों से इतने भयभीत हो जाते हैं, जिसका कोई भी हिसाब नहीं। और पीछे छिपे प्रेम के भी दर्शन हमें नहीं हो पाते।

क्या कोई यह कह सकता है कि जिसने यह मूर्ति जला दी भगवान बुद्ध की--यह आदमी कठोर था, यह आदमी प्रेमपूर्ण नहीं था? जो जानते हैं, वे कहेंगे इस पुजारी के प्रति इससे बड़े प्रेम की और कोई, और कोई अभिव्यक्ति नहीं हो सकती थी। इस पुजारी को जगाना जरूरी था कि तू जिसे पूज रहा है, वह लकड़ी से ज्यादा नहीं है। अगर खोजना ही है उसे, जो जीवन...जो जीवन है, जो जीवंत-चेतना का केंद्र है तो मूर्तियों में उसे नहीं खोजा जा सकता। और जो उसे एक मूर्ति में खोजने बैठ जाता है, वह उसके चारों तरफ जो अनेक रूपों में अभिव्यक्ति हो रही है, उससे वंचित हो जाता है।

नानक जाकर मक्का में पैर करके सो गए थे--पवित्र मंदिर के पत्थर की तरफ। बड़े कठोर रहे होंगे। प्रेम मन में जरा भी नहीं रहा होगा, नहीं तो क्या जरूरत थी, पैर और कहीं भी

तो किए जा सकते थे। पवित्र पत्थर की तरफ पैर करके सोने की क्या जरूरत थी? पुजारी भागे हुए आए थे और उन्होंने कहा था, नासमझ! पैर किए हुए है पवित्र मंदिर की तरफ! हटाओ पैर यहां से। नानक ने कहा, तुम्हीं मेरे पैर उस तरफ कर दो, जहां परमात्मा न हो। बड़ी चोट थी।

उन थोड़े से लोगों ने, जिन्होंने आदमी को चोट पहुंचाने का प्रेम दिखलाया है, उन्होंने आदमी को विकसित किया है। जिनने थोड़ी चोट पहुंचाने का प्रेम दिखलाया, उन्होंने ही मनुष्य की चेतना को आगे बढ़ाया है। जिस दिन ऐसे लोगों की संख्या ज्यादा से ज्यादा होगी, जो चोट पहुंचा सकते हैं, जिनका प्रेम यह साहस कर सकता है, उस दिन मनुष्य के जीवन में बड़ी क्रांतियां संभावी हैं।

तो मैं तो प्रार्थना करूंगा मधुर शब्दों को मत खोजें। मधुर शब्द होने से ही प्रेम नहीं हो जाता। शब्दों की पीछे क्या आकांक्षा है उसे खोजें।

उन्होंने कहा है कि आप संन्यासियों के संबंध में जो कहते हैं, उससे संन्यासी आपके दुश्मन हो रहे हैं। अगर वे दुश्मन हो जाएंगे, तो मैं जो कह रहा हूं, वह सिद्ध हो जाएगा कि सही था।

एक मित्र ने आज सुबह खबर दी कि एक संन्यासी यहां आए हुए थे, वे बहुत नाराज हो गए। और वे कल रात यहां आकर दस-पांच मित्रों को लेकर कुछ रामधुन करने वाले थे, ताकि यहां मीटिंग न हो सके। मैंने कहा, उनसे कहो कि बड़ी गलती हो गई। आज वे आ जाएं, भजन करते हैं, उसकी जगह रामधुन हो जाएगी। उसमें हर्जा क्या है? इसमें मीटिंग में बाधा क्या पड़ेगी? और थोड़ा आनंद आ जाएगा। और वे नाराज हो गए हैं, तो फिर जिन मुनि शांतिनाथ की मैं बात कर रहा था--हमें खयाल भी नहीं था कि वे यहां हो सकते हैं। नाराज होने की क्या बात है। और अगर वे यहीं खड़े होकर नाराजगी जाहिर कर देते तो मेरा तो बड़ा हित हो जाता। हमें तो प्रमाण मिल जाता, जो मैं कह रहा था, वह बात बिना प्रमाण के न रह जाती, प्रूफ सामने खड़ा हो जाता।

अगर कोई संन्यासी शत्रु हो सकता है मेरी बातें सुनकर तो वह समझ ले कि वह मेरी बातें सिद्ध कर रहा है। संन्यासी और शत्रुता का क्या संबंध? संन्यासी के मन में और शत्रुता का क्या सवाल? और संन्यासी के मन में भी शत्रुता हो तो ऐसे संन्यासी पर दया नहीं की जा सकती। ऐसे संन्यासी को जमीन से विदा करना ही होगा। तो ही हम उस संन्यासी को जन्म दे सकेंगे, जिसके हृदय में शत्रुता नहीं होती, प्रेम होता है।

अगर चोट लगती हो, इसमें मेरी भूल नहीं है। इसमें आपका चोट खाने को तैयार मन ही भूल कर रहा है। इसमें मैं क्या करूं? अगर समझ हो तो वह आदमी देख लेगा इस तथ्य को कि जो मैंने कहा, वह उसके भीतर घटित हो रहा है। और तब उसे यह सच्चाई दिखाई पड़ जाएगी कि संन्यास वस्त्र बदल लेने का नाम नहीं है। और तब हो सकता है एक रिविलेशन, एक उसके भीतर एक आलोक हो जाए। फेंक दे वह वस्त्र और पहली दफे संन्यासी हो जाए।

लेकिन अगर वह क्रोध से भर जाता है और गुस्से से और शत्रुता की बातें करने लगता है। और फिर भी इतने जोर से मैं कह रहा हूं और उसे दिखाई नहीं पड़ता कि यह क्या हो रहा है, तो फिर अब इसमें, इसमें तो फिर मुझे और कठोर होना पड़ेगा और क्या रास्ता हो सकता है? और क्या रास्ता हो सकता है? मुझे और कठोर शब्दों के उपयोग करने पड़ेंगे। कठोर शब्दों से मुझे आनंद नहीं आता है। पीड़ा ही होती है यह देखकर कि कठोर शब्दों का उपयोग करना पड़ता है। लेकिन कोई और रास्ता नहीं है। कोई और उपाय नहीं है। और हम तो धीरे-धीरे कठोर शब्दों के भी फिर आदी हो जाते हैं। फिर उनसे भी हम पर चोट नहीं होती।

तो मैं तो चाहता हूं, संन्यासी क्रुद्ध हो जाएं तो उन्हें अपने संन्यास की व्यर्थता दिखाई पड़ जाए। उन्हें खयाल में आ जाए।

अभी एक सभा में मैं बोल रहा था। मैंने कहा कि पंडित के पास ज्ञान नहीं होता। एक पंडित क्रोध में आ गए। मुझे पता भी नहीं था कि वहां पंडित भी मौजूद है। वे इतने क्रोध में आ गए और इतनी ऊल-जलूल बातें कहने लगे--तो मैंने कहा कि देखिए जो मैं कहता था, वह यह पंडित जी सिद्ध करने लगे। यही तो मैं कह रहा था कि पंडित के पास ज्ञान नहीं होता, उसके पास ज्ञान की आंखें नहीं होतीं। अगर ज्ञान होता तो ऐसी बात तो नहीं हो सकती थी। यह इतने जल्दी, इतना क्रोध, इतना असंतुलन तो नहीं हो सकता था। थोड़ी समझ होती तो यह खयाल ही नहीं हो सकता था कि मैं पंडित हूं। ज्ञान होता तो यह खयाल हो सकता था कि मैं पंडित हूं? यह अहंकार हो सकता था कि मैं जानने वाला हूं? जिन लोगों ने भी जाना है, वे तो इतने विनम्र थे कि उन्होंने कहा, हमसे ज्यादा अज्ञानी और कोई भी नहीं है।

सुकरात ने मरने के पहले कहा, मैं तो परम अज्ञानी हूं। उसने कहा कि जब मैं युवा था, तब मुझे भ्रम था कि मैं जानता हूं। फिर जैसे-जैसे मेरी उम्र बढ़ी और अनुभव बढ़ा, जैसे-जैसे मेरा ज्ञान बढ़ा तो मुझे दिखाई पड़ा कि ज्ञान कहां है मेरे पास। सब तो अज्ञान है, कुछ भी तो नहीं जानता, सब तो अननोन है। और अब जब मैं बूढ़ा हो गया हूं, तो मैं कह सकता हूं कि मुझ जैसा अज्ञानी और कोई भी नहीं है।

सुकरात अंतिम क्षणों में अगर यह कह सके कि मैं परम अज्ञानी हूं--तो फिर हमें सोचना पड़ेगा कि जिनको यह भ्रम होता हो कि मैं ज्ञानी हूं, वे क्या होते होंगे? वे क्या होते होंगे, जिनको यह खयाल होता है कि मैं ज्ञानी हूं? वे अज्ञानी होते होंगे। क्योंकि ज्ञानियों को तो अज्ञान का बोध होता है कि हम कुछ भी नहीं जानते।

क्या जानते हैं? राह पर पड़े हुए पत्थर को भी नहीं जानते और आकाश में बैठे परमात्मा को जानने का दावा करते हैं! सामने घर के लगे वृक्ष के पत्ते और फूल को नहीं जानते, और वह जो सब तरफ अदृश्य है, उसको जानने का दावा अहंकार और पागलपन के सिवाय और क्या होगा?

तो मैंने उनसे निवेदन किया आपको यह खयाल है कि आप पंडित हैं? यहीं भूल हो गई। और इसी पंडित के लिए मैं कह रहा हूं कि इसके पास ज्ञान नहीं होता। क्योंकि जिसके पास

ज्ञान होता है, उसको पंडित होने का खयाल नहीं होता। उसके तो सारे खयाल गिर जाते हैं, वह तो इतना विनम्र हो जाता है कि उसे दिखाई पड़ता है, मैं कुछ भी नहीं जानता हूं।

एक साध्वी महिला ने, और साध्वी जब कह रहा हूं तो बहुत खयाल से। क्योंकि न तो उसके पास साधुओं के वस्त्र हैं, न उसके पास साधुओं का सारा ढोंग है। लेकिन कुछ उसने जाना है जीवन में। बहुत से लोग उसे प्रेम करते हैं। उन बहुत से लोगों ने उससे प्रार्थना की कि तुम अपना अनुभव लिख दो। मैं भी उसके गांव से निकलता था। उसने मुझसे कहा कि मैं अपना अनुभव लिखूं, ये सारे लोग मेरे पीछे पड़े हैं। लेकिन एक शर्त पर लिखूंगी कि मैं जो किताब लिखूं, आप आकर उसका उदघाटन कर देना। मैं राजी हो गया। फिर एक वर्ष बाद मिलना हुआ।

वह किताब लिखी जा चुकी थी। उस महिला के भक्त, एक सुंदर पेटी में उस किताब को रखकर मेरे पास लाए। मैंने खोला, एक छोटी सी आठ पन्नों की किताब निकली। पन्ने सफेद नहीं थे, बिलकुल काले थे और उनमें कुछ भी नहीं लिखा हुआ था।

उस महिला ने कहा कि मैंने इतना ज्यादा लिखा है इसमें कि लिखते-लिखते पूरी किताब काली हो गई। कुछ लोग थोड़ा सा लिखते हैं तो थोड़ा काला होता है। मैंने इतना लिखा, इतना लिखा कि सब काला हो गया। और अब, अब मैं समझती हूं, यह किताब तैयार हो गई। मेरा अनुभव इसमें है।

उसके भक्त तो हैरान हो गए। उन्होंने कहा, हम कुछ समझे नहीं कि यह क्या हुआ। तो उस साध्वी ने कहा, जिस दिन तुम्हारा मन इतना ही कोरा हो जाएगा, जिसमें कुछ न लिखा हो, उस दिन तुम उसको जान लोगे, जो है। मैं तो खाली होकर भर गई। मैंने तो सब जानना छोड़ दिया और मैं जान गई। मैंने तो सब ज्ञान भुला दिया और मैं ज्ञान को उपलब्ध हो गई। लेकिन जो मैंने जाना है, उसे शब्दों में कहना अब संभव नहीं है। शब्दों से उसे जाना भी नहीं है। निःशब्द में, मौन में उसे जाना है। यह किताब शायद तुम्हें खबर दे--मौन हो जाने को, शब्द से छूट जाने को।

पता नहीं, वे अपने मन में हंसे होंगे या क्या किया होगा? क्योंकि शायद ही यहां किताबों के स्टाल पर अगर एक ऐसी किताब मैं भी बिकवाऊं, जिसमें कुछ न लिखा हो तो आपमें से शायद ही कोई उसे खरीदे। लेकिन अगर कोई उसे भी खरीद ले तो समझना कि उसकी जिंदगी में समझ की शुरुआत हो गई।

मन जिस दिन कोरा हो जाता है, उस दिन कहां है पांडित्य, कहां है जानना, कहां है यह भ्रम कि मैं जानता हूं और तुम नहीं जानते हो?

इन्हीं भ्रम वाले लोगों ने कि मैं जानता हूं और तुम नहीं जानते हो--सारे गुरु-शिष्य के उपद्रव खड़े कर दिए हैं। जिसको भ्रम है, मैं जानता हूं, वह गुरु बन जाता है। एक कुर्सी पर चढ़कर। और जिसको वह समझता है कि नहीं जानता, उसको बिठा लेता है अपने पैरों में। वह हो जाता है गुरु, यह हो जाता है शिष्य। और यह खेल अत्यंत मूर्खतापूर्ण है, हजारों

वर्ष से चल रहा है। जो जानता है, उसे खयाल भी नहीं होता कि मैं जानता हूं--वह गुरु क्या बनेगा किसी का? गुरु बनने के पागलपन का उसे खयाल भी नहीं आ सकता।

तो मैं इधर कहना शुरू किया हूं, आध्यात्मिक जीवन में सीखने वाले लोग तो होते हैं, लेकिन सिखाने वाले लोग नहीं होते। शिष्य तो होते हैं, लेकिन गुरु नहीं होते। क्योंकि गुरुओं को कोई खयाल नहीं रह जाता, कि मैं सिखाऊं, कि मैं सिखा सकता हूं, कि मैं किसी का गुरु हो सकता हूं। यह खयाल, यह भ्रम हमारे अहंकार से ज्यादा नहीं है। और अहंकार को चोट लगती है। जब अहंकार को गिराने का कोई उपाय चलता है तो चोट लगती है।

मैं तो सारी जो बातें कर रहा हूं, इसी खयाल में कि किसी भांति यह अहंकार हमारा टूट जाए। यह खयाल हमारा टूट जाए कि हम जानते हैं। यह खयाल हमारा टूट जाए कि मैं संन्यासी हूं, यह खयाल हमारा टूट जाए कि मैं कुछ हूं, तो शायद, शायद हम उसे जान लें, जो कि हम हैं। शायद उसे पहचान लें, जो कि सबमें हैं। लेकिन जब तक हमें यह कुछ होने का खयाल है, यह समबडी होने का और इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह कुछ होने का खयाल किस कारण है।

एक आदमी एक बड़ी कुर्सी पर बैठ जाता है तो उसे खयाल होता है, मैं कुछ हूं! एक आदमी गैरिक वस्त्र पहन लेता है, गेरुए वस्त्र तो वह सोचता है, मैं कुछ हूं! एक आदमी दिल्ली पहुंच जाता है, वह सोचता है, मैं कुछ हूं! एक आदमी धन कमा लेता है और सोचता है, मैं कुछ हूं! एक आदमी धन छोड़ देता है और सोचता है कि मैं कुछ हूं! ये सारे एक ही बीमारी के बहुत-बहुत रूप हैं। इसमें कोई फर्क नहीं है।

जब तक आदमी सोचता है, मैं कुछ हूं--चाहे वह सोचता हो, मैं संन्यासी हूं; चाहे वह सोचता हो, मैं नेता हूं; चाहे वह सोचता हो, मैं गुरु हूं; चाहे वह सोचता हो, मैं त्यागी हूं, व्रती हूं, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। ये एक ही बीमारी की अलग-अलग शक्लें हैं। बीमारी यह है कि मैं कुछ हूं। और जहां यह खयाल है कि मैं कुछ हूं, वहां चोट पहुंचती है। क्योंकि जैसे ही कोई दिखाने की कोशिश करेगा कि नहीं, आप तो कुछ भी नहीं हैं, तो चोट पहुंचती है, तो घबड़ाहट होती है।

एक फकीर था इब्राहीम। जब फकीर नहीं हुआ था तो एक नगर का राजा था। एक रात अपने बिस्तर पर सोया था। ऐसा लगा कि छप्पर पर कोई चलता है ऊपर। तो उसने चिल्लाकर पूछा, कौन है ऊपर? ऊपर से आवाज आई, मेरा ऊंट खो गया है, उसे मैं खोजता हूं। अजीब पागल आदमी था कोई। उस राजा ने कहा, पागल हो गए हो! छप्परों पर ऊंट खोया करते हैं! यहां ऊंट खोजने का क्या मतलब? छप्परों पर कहीं ऊंट खोते हैं?

तो उस आदमी ने कहा, अगर छप्परों पर ऊंट खोजने से नहीं मिलेंगे तो सिंहासनों पर भी आनंद खोजने से नहीं मिलेगा। सिंहासनों पर आनंद भी नहीं खोया है। राजा उठा और दौड़ा कि उसे पकड़वा लें, कौन आदमी है। लेकिन वह नहीं मिल सका।

दूसरे दिन राजा रातभर सोचता रहा कि बात उसने क्या कही है। रातभर उसे खयाल रहा छप्परों पर--छप्परों पर नहीं मिल सकता है ऊंट, सिंहासनों पर सत्य नहीं मिल सकता।

सिंहासन भी छप्पर ही हैं। चाहे वे सिंहासन किसी तरह के हों--संन्यास के, शंकराचार्य होने के, फलां होने के, ढिकां होने के, राजनीतिज्ञों के या किसी तरह के सिंहासन हों, उन पर सत्य मिल सकेगा?

वह भी सोचता रहा। लेकिन सुबह जब वह दरबार में गया--उदास और चिंतित था। बैठा ही था जाकर कि एक, एक अक्खड़ आदमी अंदर घुसता चला आया। पहरेदार ने बहुत रोकने की कोशिश की कि रुको। उसने कहा, तुम रोकने वाले मुझे कौन हो? इस घर का मालिक कोई हो तो मुझे रोक सकता है। हर किसी से मैं रुकने वाला नहीं। कौन है मालिक?

नौकर भी डर गए उससे। ले गए राजा के पास कि यह है मालिक। उस आदमी ने कहा, मैं इसको मालिक नहीं मान सकता। और राजा से पूछा कि मैं इस सराय में रुकना चाहता हूं--दो-चार दिन ठहर सकता हूं? उस राजा ने कहा, तुम पागल मालूम होते हो। यह सराय है? यह मेरा निवास है, मैं मालिक हूं यहां का।

वह आदमी हंसने लगा और उसने कहा, मैं कुछ वर्ष पहले आया था, लेकिन तब दूसरा आदमी यही कहता था कि मैं मालिक हूं यहां का। उस राजा ने कहा, वे मेरे पिता थे। उसने कहा, और भी मैं कुछ साल पहले आया था, तब एक तीसरा ही आदमी यह कहता था कि मैं मालिक हूं यहां का। वे मेरे पिता के पिता थे।

उस संन्यासी ने कहा, मैं कुछ वर्षों बाद फिर आऊंगा, तुम मुझे मिलोगे यहां कहने को कि मैं मालिक हूं? जब हमेशा मालिक बदल जाते हैं तो उसका मतलब--यह सराय है--मैं ठहर सकता हूं, इस सराय में? अगर यह तुम्हारा निवास है तो फिर लोग कहां गए, जिनका पहले यह निवास था? वे कहां हैं?

उस राजा ने कहा कि शायद बात तुम्हारी ठीक है। हम कुछ दिन ठहरते हैं और चले जाते हैं। उसने द्वार बंद करवा दिए और कहा, कहीं ऐसा तो नहीं कि रात जो छप्पर पर ऊंट खोजता था, वह तुम्हीं हो? उस आदमी ने कहा, मैं ही हूं। छप्पर पर ऊंट खोजने आया था, ताकि तुम्हें कह सकूं कि सिंहासनों पर सत्य नहीं मिल सकता। और आज तुम्हारी सराय में मेहमान होने आया हूं, ताकि तुम्हें कह सकूं कि यह तुम्हारा घर नहीं है।

लेकिन ऐसा आदमी चोट बहुत पहुंचाता है। उस राजा के प्राण कंप गए। बात तो सच थी। जिसको उसने अपना घर समझा था तो यह उसका घर था नहीं। लेकिन बड़ी चोट पहुंची। अपने घर में बैठे-बैठे अचानक पता चल जाए कि आप धर्मशाला में बैठे हैं--चोट नहीं पहुंचेगी? अपनी तख्ती-वख्ती लगाए बैठे थे घर के सामने, अचानक पता चला यह धर्मशाला है--चोट नहीं पहुंचेगी?

लेकिन अगर वह धर्मशाला ही है तो मैं क्या करूं? मुझे कहना ही पड़ेगा कि यह धर्मशाला है। आपको चाहे चोट पहुंचे और चाहे न पहुंचे। मेरी मजबूरी। अब अगर आप छप्पर पर ऊंट खोज रहे होंगे और मुझे कहना पड़े कि क्षमा करिए छप्परों पर ऊंट नहीं खोया करते तो आप नाराज हो जाएंगे, कि कठोर वचन बोलते हैं आप। कुछ ऐसी बात कहिए कि चोट न लगे।

तो मैं क्या कहूं? क्या मैं यह कहूं कि खोजते रहिए, मैं भी साथ देता हूं, ऊंट मिल जाएगा?

मेरी भी मजबूरी है। आपकी भी मजबूरी मैं समझता हूं। लेकिन क्या करूं? आपकी मजबूरी को मान लूं या आप मेरी मजबूरी को मानते हैं? मुझे कहना ही पड़ेगा, छप्परों पर ऊंट नहीं मिलते। सिंहासनों पर भी सत्य नहीं मिलता है। क्योंकि जो आदमी जितने ऊंचे सिंहासन पर बैठता चला जाता है, उतना ही छोटा आदमी होता चला जाता है। जितना ऊंचा सिंहासन, उतना छोटा आदमी।

असल में छोटे आदमी के सिवाय ऊंचे सिंहासन पर कोई चढ़ना ही नहीं चाहता। वह छोटा आदमी ऊंची चीज पर खड़े होकर यह भ्रम पैदा करना चाहता है कि मैं छोटा नहीं हूं। छोटे-छोटे बच्चे भी यही करते हैं घरों में। कुर्सी पर खड़े हो जाएंगे ऊपर, कहेंगे हम आपसे बड़े हैं। तो दिल्ली में जो बैठ जाते हैं और कहते हैं हम आपसे बड़े हैं, वे इन बच्चों से भिन्न हैं? क्योंकि आपकी बड़ी कुर्सी है--आप बड़े हो गए?

बचकाना, चाइल्डिश माइंड है, अप्रौढ़--वह ऊंची चीज पर खड़े होकर यह घोषणा करना चाहता है, मैं बड़ा हूं! लेकिन उसे पता ही नहीं है कि यह छोटा आदमी ही घोषणा करना चाहता है कि मैं बड़ा हूं। बड़े आदमी को पता ही नहीं होता, बड़े और छोटे का। छोटे आदमी का, वह जो इनफीरिअरिटि कांप्लेक्स है, वह जो भीतर हीनता का भाव है, वह निरंतर कोशिश करता है दिखलाने की कि मैं हीन नहीं हूं, मैं कुछ हूं। और कुछ होने की दौड़ जीवनभर चलती रहती है--हजार-हजार रास्तों से।

हजार-हजार रास्तों से आदमी कोशिश कर रहा है, दिखला दे कि मैं कुछ हूं! लेकिन उसे पता नहीं कि जब तक वह दिखलाने की कोशिश कर रहा है कि मैं कुछ हूं, तब तक--तब तक उसके भीतर एक हीनता चल रही है। और उस हीनता से वह पीड़ित है। उस हीनता को भुलाने के लिए पहाड़ चढ़ रहा है। उस हीनता को भुलाने के लिए यात्राएं कर रहा है। छप्परों पर चढ़ रहा है, ताकि सारा गांव देख ले कि सबसे ऊंचा मैं हूं।

और अगर इसको हम कह दें कि तुम पागल हो--जितने ऊंचे तुम चढ़ते हो, उतने ही छोटे होने की तुम सूचना करते हो तो यह नाराज हो जाएगा। अब इसको नाराज करें कि इसको चढ़ने दें? इसको जाने दें, यह जहां भी जाए? एवरेस्ट की चोटी पर चढ़े, चढ़ने दें या कि इसको कहें कि पागल मत हो जाओ?

हीनता भीतर है तो उसे तुम पहाड़ों पर चढ़कर न मिटा पाओगे। हीनता भीतर है तो भीतर ही घुसना होगा। और हीनता वहां है तो उसे मिटाने के रास्ते हैं। लेकिन ऊपर चढ़ने से हीनता नहीं मिट जाती है। ऊपर चढ़ने से हीनता नहीं मिटती, भीतर घुसने से हीनता मिट जाती है। हीनता इसीलिए है कि हम स्वयं को नहीं जानते हैं। आत्म-अज्ञान के कारण हीनता है। नहीं तो आपको पता चलेगा आप क्या हो? और आपको पता चलेगा और सब कौन हैं? दिखाई पड़ेगा एक ही प्राण, एक ही जीवन, एक ही महिमा सबमें व्याप्त है, एक ही आलोक। फिर आप किससे ऊपर होना चाहोगे? आपके अतिरिक्त फिर कोई बचता नहीं, या आप भी नहीं

बचते हैं? जो बच रहता है, उसमें न आप होते हैं, न दूसरा होता है--न मैं होता है, न तू होता है। किससे ऊपर चढ़ेंगे, किससे नीचे उतरेंगे?

उस क्षण सब हीनता मिट जाती है, और सब सुपिरिआरिटि भी, श्रेष्ठता भी। उस दिन न आप हीन होते हैं, न श्रेष्ठ, उस दिन आप बस होते हैं। फिर कोई कंपेरिजन नहीं होता, क्योंकि कंपेअर करने को कोई नहीं होता। कोई तुलना नहीं होती। ऐसे व्यक्ति को तो मैं धार्मिक कहूंगा।

लेकिन ऐसे व्यक्ति को धार्मिक नहीं कह सकता, जो अभी कह रहा है कि तुम गृहस्थ हो, मैं संन्यासी हूं; तुम पापी हो, मैं पुण्यात्मा हूं; तुम हीनात्मा हो, मैं महात्मा हूं। यह जो आदमी है, क्या कर रहा है? और इसने जो तरकीब निकाल ली है, वह ज्यादा गहरी है उस आदमी से, जो कह रहा है मैं धनवान हूं, तुम गरीब हो। उससे ज्यादा गहरी है। धनवान को भी दिखाई पड़ता है, धन छिन सकता है, चोरी जा सकता है; कल वह भी गरीब हो सकता है। लेकिन यह त्याग और संन्यास ऐसी चीजें हैं कि न चोरी जा सकते, न खो सकते, न इनको कोई छीन सकता। ये ज्यादा स्थाई संपत्तियां हैं।

इसलिए जो लोग बहुत लोभी हैं, वे तिजोड़ी छोड़ देते हैं और स्थाई तिजोड़ी की खोज में निकल जाते हैं। संन्यासी हो जाएं, परमात्मा को पकड़ लें--क्या करें, क्या न करें। वे ऐसी संपत्ति खोजते हैं, जिसे कोई छीन न सके। यह बहुत गहरी ग्रीड, यह बहुत गहरे लोभ से पैदा होने वाली वृत्ति है, इसको हम कहें या न कहें?

एक गांव में मैं था। मुझसे पहले एक संन्यासी बोले और उन्होंने कहा, अगर आप लोभ छोड़ देंगे तो स्वर्ग उपलब्ध होगा। मैं उनके पीछे बोलता था। मैंने पूछा कि बड़ी अजीब बात आपने कही है, कि अगर आप लोभ छोड़ दें तो स्वर्ग उपलब्ध होगा। और स्वर्ग उपलब्ध करने की जो कामना है, वह लोभ नहीं है?

तो यहां इन सुनने वालों में जितने लोभी होंगे--बहुत ज्यादा, जो कम लोभी होंगे, वे सोचेंगे छोड़ो स्वर्ग को, अपना लोभ ही ठीक है। जो जरा ज्यादा लोभी होंगे, वे कहेंगे छोड़ो धन-संपत्ति को, स्वर्ग को पा लेना ज्यादा उचित है। तो ऊपर से दिखाई पड़ेगा वे लोभ छोड़ रहे हैं--लोभ छोड़ नहीं रहे, वे लोभ के कारण ही, लोभ की वजह से ही धन-संपत्ति छोड़ रहे हैं कि स्वर्ग उपलब्ध हो जाए। यह स्वर्ग का कामी, लोभी चित्त है। मोक्ष का कामी भी लोभी चित्त है। परमात्मा को पाने की कोशिश में लगा हुआ भी लोभी चित्त है। इसको कहें या न कहें?

आप कहेंगे, फिर मैं क्या कह रहा हूं आपसे? मैं आपसे यह कह रहा हूं जिस दिन चित्त में कोई लोभ नहीं होता, उस दिन जो आप जानते हैं, वह मोक्ष है। लेकिन मोक्ष की कोई कामना नहीं की जा सकती। मोक्ष को पाने के इरादे, योजनाएं, प्लानिंग नहीं बनाई जा सकतीं। जिस दिन आपका चित्त लोभ के बाहर होता है, उस दिन जिसे आप जानते हैं, वह परमात्मा है।

लेकिन परमात्मा को पाने का लोभ नहीं किया जा सकता। परमात्मा को पाने के लिए हिसाब-किताब नहीं लगाया जा सकता। और हिसाब-किताब लगाए जा रहे हैं! कोई आदमी कह रहा है, मैंने सौ उपवास किए! कोई कह रहा है, मैंने पचास किए! कोई कह रहा है, मैंने चालीस किए! कितना परमात्मा मिलेगा--एक सेर, दो सेर, तीन सेर, कितना परमात्मा मिलेगा? मैंने सौ उपवास किए हैं तो मुझे कितना मिलेगा! मैं तीस साल से संन्यास लिया हुआ हूं, मुझे कितना मिलेगा!

क्राइस्ट को जिस रात पकड़ा गया। पकड़ने के पहले खबर मिल गई थी कि शायद वे पकड़ लिए जाएंगे। तो क्राइस्ट ने अपने मित्रों से कहा कि तुम्हें कुछ पूछना हो तो पूछ लो। तो उनके मित्रों ने पूछा कि अब आप जा ही रहे हैं, तो एक बात बता दें। आपका स्थान तो तय है कि आप परमात्मा के बगल में बैठेंगे स्वर्ग में। हम लोग कहां बैठेंगे? हमारा स्थान क्या होगा? हमारी कुर्सियां कहां लगाई जाएंगी? हमने अपना सब घर-द्वार छोड़ा, आपके पीछे दीवाने हुए, हमारी उपलब्धि क्या होगी, किंगडम आफ गाड जो है, वहां? हम कहां होंगे? हमारी पोजीशंस क्या होंगी, वे सब स्पष्ट कर दें।

अब ये लोग लोभी नहीं हैं? क्या हैं ये लोग? इनके चित्त में निर्लोभ का जन्म हुआ है? अगर यह कहें तो चोट पहुंचेगी कि हमारा सब संन्यास, हमारी पूजा-प्रार्थना, हमारा मंदिर, हमारा दान-दक्षिणा, सब हमारे लोभ के रूपांतर हैं। और जब तक हम इस बात को नहीं देखेंगे, तब तक हम लोभ से मुक्त नहीं हो सकते। क्योंकि हम इनको लोभ समझेंगे ही नहीं तो मुक्त होने का कोई सवाल नहीं है।

हमारे तीर्थ-यात्रा, हमारा संन्यास, हमारा रिननसिएशंस, सब हमारे लोभ के ही रूप हैं। हमारी ग्रीड के ही अलग-अलग रास्ते हैं, जो अपने को प्रगट करती है। इनसे धर्म का कोई संबंध नहीं है। इस बात को तो जितनी स्पष्टता से कहा जा सके, उतना उचित है और उतना जरूरी है।

तो हो सकता है मेरी बात में कुछ बात कठोर लगती हो। है कठोर, लगनी चाहिए। लेकिन मैं मजबूर हूं। आप मुझे छप्पर पर ऊंट खोजते दिखाई पड़ते हैं तो मुझे कहना पड़ेगा कि वहां ऊंट नहीं है, और आपका घर आपका निवास नहीं है, धर्मशाला है। कितनी ही बुरी लगे यह बात, मुझे कहना पड़ेगा कि आप भूल से जिसे निवास समझे हुए हैं, वह निवास नहीं है, वह केवल सराय है। और जितने जल्दी आपको दिखाई पड़ जाए, उतना उचित है।

एक और अंतिम प्रश्न और फिर हम विदा होंगे। फिर जो प्रश्न होंगे, वह रात हम बात करेंगे।

एक मित्र ने पूछा है कि श्रद्धा, आदर्श हम सभी छोड़ दें, तो फिर हम कहां जाएंगे? फिर क्या होगा?

श्रद्धा होते हुए, आदर्श होते हुए, आप कहां चले गए हैं? क्या हो गया है? श्रद्धा भी है, आदर्श भी हैं। आप कहां चले गए हैं? क्या हो गया है?

भटक रहे हैं और तो कहीं नहीं चले गए हैं।

मैं कोई विश्वास नहीं दिलाता कि आप कहां चले जाएंगे। हालांकि आपका लोभ चाहेगा कि पक्का आश्वासन होना चाहिए कि अगर हम श्रद्धा और आदर्श सब अलग कर दें तो हम कहां पहुंचेंगे इसकी पक्की गारंटी होनी चाहिए। और नहीं तो हम छोड़ दें और पक्की गारंटी न हो तो हम हानि में पड़ जाएं।

इतना ही मैं निवेदन करता हूं कि अगर आदर्श और श्रद्धा इन सबसे आपका छुटकारा हो जाए तो जो आप हैं, उसे जानने में आप समर्थ हो जाएंगे। चाहे आपके भीतर नरक हो तो उस नरक को देखने में समर्थ हो जाएंगे। और जिस दिन आदमी जो है, जैसा है, वह जो फैक्चुअलिटी है, वह जो हमारी तथ्य-स्थिति है, उसको जानने में जिस दिन समर्थ हो जाता है, उसी दिन उसके जीवन में एक नई यात्रा शुरू हो जाती है।

क्यों? क्योंकि वहां कुछ ऐसे तथ्य हैं, जिनको बदलना ही पड़ता है। और बदलना पड़ता है, यह कहना शायद ठीक नहीं है, जिनको देखते से ही बदलाहट शुरू हो जाती है। फिर आप एक नए आदमी होना शुरू हो जाते हैं, एक बिलकुल नए आदमी।

हालत ऐसी है कि आपके सामने सड़क पर सांप लेटा हुआ है, लेकिन आप अपने सामने देख ही नहीं रहे। आप दस मील दूर आकाश की तरफ देख रहे हैं, एक आदर्श की तरफ और चले जा रहे हैं। आदर्श की तरफ देख रहे हैं और चले जा रहे हैं! और सांप नीचे पड़ा है, जो आपकी जिंदगी को खा जाएगा, उसे आपके आदर्शों का कोई पता नहीं है।

मैं आपसे कह रहा हूं, दस मील दूर आकाश की तरफ न देखें। कदमों में, नीचे, सामने देखें, जो आप हैं, जहां आप हैं। तो अगर सांप आपको दिखाई पड़ जाएगा--यह तथ्य है तो आप कुछ करेंगे। और वह हो जाएगा आपके भीतर--आप शायद छलांग लगाकर सांप से अलग हो जाएंगे। लेकिन आप दस मील दूर देख रहे हैं, गड्ढे पैर के पास हैं!

एक ज्योतिषी था यूनान में, जो आकाश के तारों के संबंध में खोजबीन किया करता था। वह एक सांझ आकाश के तारे देखते हुए चला जा रहा था और एक गड्ढे में गिर पड़ा। एक बूढ़ी औरत, जिसने उसे निकाला, उसने कहा, बेटा! मैंने सुना है, तुम तारों के संबंध में बहुत जानते हो? लेकिन मैं तुमसे एक प्रार्थना करती हूं, तारों के संबंध में तुम क्या जानते होगे, जब रास्तों के गड्ढों के संबंध में नहीं जानते। तो मेरी एक प्रार्थना है, तारे फिर जान लेना, रास्ते के गड्ढे पहले जानना जरूरी है। आकाश के तारों की जानकारी तुम्हें होगी भी कैसे, जब पैर के नीचे के गड्ढे भी तुम्हें दिखाई नहीं पड़ते! तुम्हारा ज्योतिष सब बकवास होगा। पहले रास्ते के गड्ढे तो जान लो।

हम सब भी आकाश के तारे देखकर चल रहे हैं। आदर्श--वहां पहुंचना है, वहां पहुंचना है! बिना इस बात को जाने हुए कि हम कहां खड़े हुए हैं, हम कहां चल रहे हैं! आदर्श कल्पना में हैं। जिंदगी, तथ्य सामने है। उस तथ्य को देखना जरूरी है। और आदर्शों के कारण हम उसे देखने से बचते हैं। इसलिए सारे आदर्शों से चित्त मुक्त हो जाना चाहिए।

घबड़ाहट क्यों लगती है?

घबड़ाहट इसलिए लगती है कि आदर्श से मुक्त होते ही हमें भलीभांति पता है कि हम क्या हैं? और जैसे ही हम उसको जानेंगे, हमारे भीतर घबड़ाहट होती है कि हम तो कुछ भी नहीं हैं। आदर्श में तो हम मान लेते हैं कि अहं ब्रह्मास्मि, मैं ईश्वर हूं, फलां हूं, ढिकां हूं। यह बड़े मजेदार बातें हैं। मैं ब्रह्म हूं, मैं आत्मा हूं, मैं यह हूं, मैं वह हूं, मैं अविनाशी तत्व हूं; अजर-अमर, ये सब हम आदर्श में मान लेते हैं।

नीचे लौटकर देखेंगे तो घबड़ाहट होगी कि मौत पास आ रही है। यह अजर-अमर आदर्शमय हैं, लेकिन इधर मौत पास सरकती आ रही है, रोज। मौत तथ्य है। यह अमरता बातचीत है। अमरता की बातचीत में मौत को कब तक झुठलाइएगा। और मौत को जितने दिन झुठला रहे हैं आप, उतने दिन आप धोखे में हैं।

तो मैं यह कहता हूं: अमरता की बातचीत छोड़िए, मौत को देखिए। और मेरा निवेदन यह है कि जिस दिन आप मौत को पूरी तरह देखेंगे, उसी दिन जो अमर है आपके भीतर, उसका दर्शन हो जाएगा। मौत के परिपूर्ण दर्शन से अमृत का अनुभव होता है। लेकिन जो मौत को ही देखने से डरता है--और मौत को देखने से डरने के कारण अमरता की बातचीत करता रहता है, वह मौत को ही नहीं देख पाता, अमृत को कैसे देख पाएगा?

मौत को देखने के साहस से ही--मौत का आमना-सामना, एनकाउंटर करने से ही, जो आपके भीतर अमृत है, उसकी झलक मिलनी शुरू होती है।

क्यों? क्यों ऐसा होगा?

ऐसा इसलिए होगा कि देखते हैं छोटे-छोटे बच्चे भी जानते हैं, स्कूल के ब्लैक-बोर्ड पर सफेद चाक से जब लिखते हैं तो दिखाई पड़ता है, और सफेद दीवाल पर सफेद चाक से लिखें तो दिखाई नहीं पड़ता। स्कूल के शिक्षक भी ज्यादा समझदार हैं, आत्मा के खोजियों से। उनको पता है कि सफेद दीवाल पर लिखेंगे, कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा। काले ब्लैक-बोर्ड पर लिखने से दिखाई पड़ता है।

क्यों? कंट्रास्ट। जब तक आप मौत में नहीं झांकेंगे, आपको अमृत दिखाई नहीं पड़ता। दिखाई पड़ नहीं सकता। मौत काले बोर्ड की तरह खड़ी हो जाती है। और अगर उस काले बोर्ड में फिर एक भी सफेद रेखा आपको दिखाई पड़ गई तो आप जानते हैं कि काला बोर्ड ही सब कुछ नहीं है, एक सफेद रेखा भी है। जो काले के बाहर है और अलग है।

तो जो मौत में नहीं झांकेगा, वह अमृत को कभी नहीं देख सकता। जो काले से डरेगा, वह सफेद को नहीं देख सकता। तो जीवन के तथ्यों में झांकना जरूरी है। जीवन के तथ्यों को झुठलाने वाले आदर्शों में समय खोना उचित नहीं है।

लेकिन हम सब मौत से डरते हैं। सो हम अमरता के आदर्श बना लेते हैं, अमरता के सिद्धांत बना लेते हैं। जो आदमी जितना मौत से डरता है, उतनी ही आत्मा की अमरता की बातें करता है।

देख लें आप, जमीन पर जो कौम जितनी ज्यादा मौत से डरती है, वह उतनी ही आत्मा को मानने वाली कौम है।

क्यों मानती है? भय है भीतर मौत का। तो हम मान लेते हैं कि आत्मा अमर है। इसको मानने में बड़ा रस और आनंद आता है। इस रस और आनंद में धोखा है।
तथ्यों को देखना जरूरी है, क्योंकि तथ्यों के भीतर ही सत्य छिपे हुए हैं।
इस संबंध में हम और कुछ प्रश्न हैं, उनकी बात रात करेंगे।
दोपहर की यह बैठक समाप्त हुई।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २०-१०-६७, दोपहर

७. सत्य का संगीत

एक मित्र ने पूछा है कि मैं शास्त्रों को जला डालने के लिए कहता हूं। और मेरी बातों से कहीं थोड़े कम समझ लोग भ्रांत होकर भटक न जाएं?

लोग भटकेंगे या नहीं, लेकिन जिन्होंने प्रश्न पूछा है, वे मेरी बात सुनकर जरूर भटक गए हैं। मैंने कब कहा कि शास्त्रों को जला डालें। मैंने सिर्फ अपनी किताबों को--अगर वे किसी दिन शास्त्र बन जाएं तो जला डालने को कहा है। मेरी किताबें हैं, उनको जला डालने के लिए मैं कह सकता हूं। लेकिन दूसरों की किताबें जला डालने को मैं क्यों कहूंगा।

और फिर मैंने कहा शास्त्रों को जला डालें--किताबों को जलाने के लिए मैंने कभी कहा नहीं है। अगर इतनी सी बात भी समझ में नहीं आती है तो फिर मैं और जो कह रहा हूं, वह क्या समझ में आता होगा?

मनुष्य के जीवन में शास्त्र न रह जाएं--जरूर मैं चाहता हूं। क्योंकि किसी भी किताब को शास्त्र कहना, मनुष्य के सत्य की खोज को चोट पहुंचाना है, बाधा पहुंचानी है। लेकिन हम शायद सुनते नहीं, या सुनते हैं तो पूर्वाग्रह से भरे हुए सुनते हैं। पहले से ही हमारा मन तैयार होता है। सुनते समय भी हम अपने मन में कुछ हिसाब-किताब लगाते रहते हैं कि मैं क्या कह रहा हूं और क्या नहीं कह रहा हूं। शायद इसीलिए कठिनाई होती है समझने में, अन्यथा बातें बहुत सीधी और साफ हैं।

सुनने के लिए मन साफ हो तो बातें बहुत सीधी और साफ हैं। और मन उलझा हुआ हो तो फिर चीजों के अर्थ, शब्दों के अर्थ बड़े विकृत रूप ले लेते हैं। और ऐसे ही मन को लेकर

आप शास्त्रों को भी पढ़ते होंगे। उन में से भी जो अर्थ आप निकाल लेते होंगे, वह अर्थ भी इतना ही विकृत होता होगा।

शब्दों को समझने के लिए, विचारों को समझने के लिए एक बड़ा शांत, मौन, सुनने वाला मन चाहिए। वह हमारे पास नहीं है। हम पहले से ही बहुत भरे हुए हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि आप मुझे सुन रहे हैं--जरूरी नहीं है आप मुझे सुन रहे हों। आप अपने को ही अपने भीतर सुन रहे होंगे। मेरी बातें भी सुनाई पड़ती हैं बीच-बीच में, फिर आप अपनी बातें सुनने लगते हैं; फिर मेरी बातें सुनाई पड़ती हैं, और इस सबमें इतना घोल-मेल, इतना कनफ्यूजन पैदा हो जाता है कि जो आप मुझसे पूछते हैं, अच्छा होता कि अपने से ही पूछ लेते।

क्योंकि अक्सर जो बातें मैंने नहीं कहीं, उन्हीं के बाबत प्रश्न पूछ लिए जाते हैं। या जो मैंने समझाया, उसके ही बाबत फिर किसी दूसरी शकल में प्रश्न मौजूद हो जाते हैं। सिर्फ आप चुप बैठे हैं और मैं बोल रहा हूं, इसलिए आप सुन रहे हैं, इस भ्रांति में मत पड़ जाना।

कार्ल गुस्ताव जुंग के पागलखाने में दो प्रोफेसर भर्ती हुए थे। ऐसे प्रोफेसरों की टेंडेंसी, वृत्ति पागल हो जाने की स्वाभाविक है। उन दोनों का जुंग अध्ययन करता था। खिड़की से छिपकर एक दिन सुन रहा था उन दोनों की बातें--बहुत हैरान हो गया। वे दोनों बिलकुल ही असंगत बातें कर रहे थे। दोनों की बातों में कोई भी संबंध न था। एक आकाश की बातें कर रहा था, दूसरा पाताल की। उन दोनों में कोई नाता नहीं था, उनमें कोई जोड़ नहीं था। उनमें कोई संगति नहीं थी।

लेकिन एक और भी अजीब बात थी। यह तो स्वाभाविक था, दो पागल आदमी बातें करें--तो उनकी बातों में संगति, तालमेल नहीं हो सकता। लेकिन इससे भी आश्चर्य की बात थी कि जब एक बोलता था तो दूसरा चुप रहता था। जब दूसरा बोलना बंद करता था तब पहला बोलना शुरू करता था। लेकिन दोनों की बातों में कोई संबंध नहीं था।

जुंग भीतर गया और उसने उनसे पूछा कि मित्रों, मैं बहुत हैरानी में हूं। जब एक बोलता है तो दूसरा चुप रहता है। क्यों? तो दोनों हंसे। उन्होंने कहा कि हम कन्वर्सेशन का नियम जानते हैं, बातचीत का नियम हमें पता है।

लेकिन उसने पूछा कि इतना जब तुम्हें पता है--बातचीत का नियम, तो मैं यह भी देख रहा हूं कि जब एक बोलना बंद करता है, तो जहां से बात छूटती है, दूसरा न मालूम कहां से शुरू करता है। उससे छूटी गई बात का कोई संबंध नहीं होता। वे दोनों पागल हंसने लगे और उन्होंने कहा, क्या तुमने कभी भी कोई ऐसी बातचीत सुनी है, जिसमें संबंध होता हो?

जो लोग थोड़े ज्यादा सोफिस्टीकेटेड हैं, थोड़े से ज्यादा धोखा देने में कुशल हैं, वे इस तरह बातचीत शुरू करते हैं कि मालूम पड़ता है कि दोनों में संबंध है। लेकिन संबंध कोई भी नहीं होता है। क्योंकि जब एक बोलता है, तब दूसरा अपने भीतर बोले चला जाता है, बोले चला जाता है। जब पहला बंद होता है, दूसरा शुरू करता है तो वह वहां से शुरू नहीं करता, जहां

से दूसरे ने बंद किया। वह वहां से शुरू करता है, जहां उसके भीतर सिलसिला था। और तब सारी चीजें न मालूम क्या अर्थ ले लेती हैं।
मुझे आप सुन रहे हैं--तो ऐसा प्रश्न उठना बहुत कठिन है।

और उन्हीं मित्र ने पूछा है, कि आपकी बहुत सी बातें अनेक शास्त्रों से मिलती-जुलती मालूम पड़ती हैं।

न आप मुझे समझ रहे हैं, न शास्त्रों को समझ रहे हैं। मेल-जोल भी बिठालने की कोशिश कर रहे हैं--कि किससे मिलती है बात, किससे नहीं। यह कंपेरिजन, यह तुलना करने की जरूरत क्या है? मैं सीधा आपसे बातें कर रहा हूं। इसमें बीच में और किसी को मिलाने-जुलाने के लिए लाने की आवश्यकता क्या है? और अगर आप लाएंगे तो क्या आप मुझे समझ सकेंगे? आपका चित्त अगर इस तुलना में पड़ जाएगा तो समझना बहुत मुश्किल हो जाएगा।
सीधी सी बात मैं कह रहा हूं, उसे सीधे समझने की कोशिश करें। बीच में और बहुत शास्त्रों को, गुरुओं को, शास्ताओं को लाने का क्या प्रयोजन है? अगर सीधे आप समझने की कोशिश करेंगे तो बड़ी आसानी हो जाती है। और तुलना करके समझने की कोशिश करेंगे तो बहुत कठिन हो जाता है। क्योंकि शब्दों की ही तो तुलना करेंगे। और शब्दों की तुलना से इतनी भ्रांतियां पैदा हुई हैं, जिनका कोई हिसाब नहीं है। क्योंकि पहले तो जो मैं कहना चाहता हूं, वही शब्द में आधा मर जाता है। फिर आप जो समझना चाहते हैं, अगर तैयार हैं किसी शास्त्र के माध्यम से समझने को तो जो आधा बचता है, उसकी हत्या आप कर देते हैं। फिर शब्द बिलकुल थोथा, चली हुई कारतूस की तरह आपके पास पहुंचता है, जिसमें कोई प्राण नहीं रह जाते। समझने की कोशिश सीधी होनी चाहिए।
आप एक गुलाब के फूल को देखते हैं तो आप जमाने भर के गुलाब के फूलों से तुलना करते हैं! तब उसको देखेंगे या कि सीधा देखेंगे? और क्या एक गुलाब के फूल की तुलना, किसी भी दूसरे गुलाब के फूल से की जा सकती है? कोई जरूरत भी नहीं है, संभावना भी नहीं है। हर गुलाब का फूल अपनी तरह का फूल है। अनूठा है, अद्वितीय है, बेजोड़ है। छोटा सही, बड़ा सही, कैसा भी सही--वह अपने तरह का है। उसे आप दूसरे गुलाब के फूल से कैसे तौलिएगा? और तौलने में एक बात तय है, इस गुलाब के फूल को देखने से आप वंचित रह जाएंगे।
आज रात आकाश में तारे निकले हुए हैं। इनको तौलिए पिछली रात के तारों से? और इसमें आप भूल जाइए, भटक जाइए और फिर इस रात के तारे आपको दिखाई नहीं पड़ेंगे। रोज चांद निकलता है, रोज सूरज निकलता है। हम रोज तौलते हैं हर चीज को!
एक मित्र आए। उन्होंने कहा कि यहां के वृक्ष तो बहुत अच्छे हैं, लेकिन एक और हिल स्टेशन है, वहां के और भी अच्छे हैं। मैंने उनसे कहा, इन वृक्षों को देखिए। ये जो आनंद दे सकते हों, उसे पाइए। ये जो संदेश दे सकते हों, उसे सुनिए। लेकिन और किसी पहाड़ी के

वृक्षों को बीच में लाने का प्रयोजन क्या है? और मैंने उनसे कहा, आप जब उस पहाड़ी पर जाओगे, तब किन्हीं और पहाड़ियों के वृक्षों को बीच में ले आओगे। ऐसे आप कभी भी सत्यों को सीधा नहीं देख सकेंगे।

तुलना करने वाला मन कभी भी सीधा देखने में समर्थ नहीं रह जाता। और जो भी चीज देखनी हो, सीधी देखनी चाहिए। बीच में किसी को लेने की और लाने की आवश्यकता नहीं है। आंखों पर जब किसी और चीज का पर्दा पड़ जाता है तो फिर हम देखते नहीं, हम सिर्फ तुलना करते रह जाते हैं। और देखने से जो उपलब्ध हो सकता था, उससे व्यर्थ ही वंचित हो जाते हैं।

तो मैं निवेदन करूंगा तुलना क्यों करें। किसी दिन जब सत्य का अनुभव होगा, जीवन की प्रतीति होगी तो जरूर आपको पता चल जाएगा कि हजारों-हजारों लोगों को वह प्रतीति हुई है। और हजारों लोगों ने उस प्रतीति को शब्द देने के प्रयास किए हैं। हजारों किताबों में वे शब्द लिखे हुए हैं। लेकिन जब आपको प्रतीति होगी, तभी उन शब्दों का अर्थ भी आपके सामने प्रगट होगा और खुलेगा, उस प्रतीति के पहले उन शब्दों को आप पकड़ लेंगे तो न तो अर्थ खुलेगा, न रहस्य खुलेगा उनका, बल्कि उन शब्दों के पकड़ लेने के कारण, जो अनुभव आपको हो सकता था--सीधा, इमीजिएट, प्रत्यक्ष, वह भी आपको नहीं हो सकेगा।

शब्दों का एक रोग है हमारे मन को। हम उन्हें पकड़कर इकट्ठा कर लेते हैं। जैसे हम धन इकट्ठा करते हैं, ऐसे ही हम शब्द इकट्ठे कर लेते हैं। और जितने ज्यादा शब्द हमारे मन पर इकट्ठे हो जाते हैं, उतना चीजों को सीधा देखना कठिन हो जाता है।

एक फकीर था नसरुद्दीन। एक घर में नौकरी करता था। उस घर के मालिक ने दूसरे दिन ही उसे कहा कि तुम बहुत अजीब आदमी हो। तीन अंडे खरीदकर लाने थे, तुम तीन बार बाजार गए। तीन अंडे एक ही बार में लाए जा सकते हैं। तीन बार जाने की कोई जरूरत नहीं है।

बात बिलकुल सीधी और साफ थी कि तीन अंडे खरीदने हों...तो वह एक अंडा खरीदकर लाया, उसको रखकर फिर गया, फिर दूसरा खरीदकर लाया, फिर तीसरा खरीदकर लाया। तो उसके मालिक ने कहा, ऐसे काम नहीं चलेगा। तीन बार जाने की जरूरत न थी। एक बार जाना काफी था। उस नौकर ने कहा, आप निश्चिंत रहें, मैंने आपका शब्द समझ लिया, आगे ऐसा ही होगा।

आठ दिन बाद उसका मालिक बीमार पड़ा। उसने कहा, जाओ, वैद्य को बुला लाओ। वह वैद्य को भी बुला लिया और आठ-दस आदमियों को और बुला लाया। उसके मालिक ने कहा, वैद्य तो ठीक है, लेकिन ये आठ-दस आदमी कैसे? उसने कहा, मैंने सोचा कि वैद्य को ले चलूंगा, हाथ देखकर कहेगा, फलानी दवा खरीदकर लाओ--मैं ड्रगिस्ट को भी ले आया, एक केमिस्ट को भी लिवा लाया, दवा बेचने वाले को भी ले आया। फिर मैंने सोचा दवा ने काम किया या न किया, आप बचे या न बचे, तो एक कब्र खोदने वाले को भी लिवा लाया हूं। और आपने ही तो कहा था कि तीन अंडे तीन बार खरीदने जाने की कोई जरूरत नहीं है?

शब्द को पकड़ लिया। और फिर शब्द से ऐसा अर्थ भी निकल सकता है, कौन सी कठिनाई है?

मैंने कहा, मेरी किताबों को आग लगा देना, अगर शास्त्र बन जाएं। फौरन आप समझ गए कि मैंने कहा, जाओ शास्त्रों में आग लगा दो। तीन अंडे इकट्ठे ही खरीद लाए आप। थोड़ी भी तो समझ, थोड़ी भी तो सहानुभूति, थोड़ी भी तो सिम्पैथेटिक अंडरस्टैंडिंग होनी चाहिए--क्या मैं कह रहा हूं। शब्दों के शरीर को पकड़ लेंगे या थोड़ा उनकी आत्मा में भी झांकने की कोशिश करेंगे। तो अगर आत्मा में झांकने की कोशिश करेंगे तो ऐसा नहीं दिखाई पड़ेगा कि मैं शास्त्रों का विरोधी हूं। शायद मुझसे ज्यादा मित्र उनका कोई भी नहीं है। दुश्मन तो वे ही हैं जो उनको पकड़कर बैठ गए हैं। उनके कारण ही शास्त्रों के भी प्राण निकल गए हैं और पकड़ने वालों के भी प्राण निकल गए हैं। आप शास्त्रों से मुक्त हो जाएं तो एक दूसरी घटना भी घटेगी, शास्त्र आपसे मुक्त हो जाएंगे। एक म्युचुअल इंप्रिजनमेंट चल रहा है। हम शास्त्रों को पकड़े हुए हैं, शास्त्र हमको पकड़े हुए हैं। न शास्त्र इधर हिल-डुल सकते हैं, न हम। और फिर ऐसा जोर से पकड़ लिया है शब्दों को कि उनकी जान निकाल दी है, उनकी गर्दन कस ली है बिलकुल, इसलिए सुन नहीं पाते हैं। क्योंकि शब्दों पर ऐसा आग्रह, ऐसा दुराग्रह पकड़ा हुआ है। देख नहीं पाते हैं शब्दों के पीछे।

शब्द इशारे हैं। अगर मैं चांद को अंगुली बताऊं और कहूं यह चांद है, आप मेरी अंगुली पकड़ लें कि कहां है, आपने अंगुली बताई थी, अंगुली में चांद कहां है? मैं भी मुश्किल में पड़ जाऊंगा और आप भी। मैं कहूंगा, क्षमा करें, कृपा करें मेरी अंगुली छोड़ें। अंगुली से चांद दिखाया था, अंगुली चांद नहीं थी। कभी भूलकर नहीं कहा था कि अंगुली चांद है। कहा था कि इधर चांद है--आपको अंगुली दिखाई पड़ी। चांद तक तो आंख उठाने की कोशिश न की, अंगुली पकड़ ली।

अब ऐसे ही हम सब अंगुलियां पकड़े हुए हैं--शास्त्रों की भी, शास्ताओं की भी। और कोई भी कुछ कह रहा है तो हम उसकी अंगुली जल्दी पकड़ने को तैयार हैं। लेकिन चांद की तरफ देखने की...और चांद की तरफ तभी देख सकेंगे, जब अंगुली को बिलकुल छोड़ दें और भूल जाएं। अंगुली पर आंख न रह जाए तो चांद दिखाई पड़ सकता है।

तो मैं जो शब्दों का उपयोग कर रहा हूं, बड़ी मजबूरी में, बड़ी हेल्पलेसनेस में--बड़ी असहाय अवस्था है शब्दों का उपयोग करने में। क्योंकि जो मैं कहना चाहता हूं, वह शब्दों के बाहर है, और शब्दों में उसे कहना है। कहने का और कोई उपाय नहीं है। तो अगर शब्द पकड़ लेंगे तो एक मजाक हो जाएगी और कुछ भी नहीं होगा। तो शब्द में जो इशारा, जो संकेत है; शब्द के पीछे छिपी हुई जो--जो आकांक्षा है, शब्द के पीछे छिपी जो आत्मा है, उस पर...।

एक सितार रखी हो और कोई समझ ले कि तार और यह सितार का सारा ढांचा और यंत्र, यही संगीत है...तो भूल में पड़ जाएगा। न तो सितार का ढांचा संगीत है, न सितार के तार संगीत हैं। ढांचा और तार तो केवल एक इशारा बन जाते हैं, किसी और चीज को जन्मने के

लिए। संगीत कुछ और ही है। लेकिन अगर कोई सितार को ढोता फिरे दिन-रात कि मैं संगीत का बड़ा प्रेमी हूं तो वह गलती में हो गया। उसने शरीर को पकड़ लिया संगीत के, आत्मा पर उसका खयाल न गया।

ऐसे ही हम शब्दों को पकड़ लेते हैं। शब्दों के यांत्रिक रूप में, शब्दों के उपकरण में जिस तरफ इशारा था--जिस संगीत की तरफ, जिस सत्य की तरफ, उस पर हमारा खयाल ही नहीं जाता। और फिर इन शब्दों की ही व्याख्या में हम लग जाते हैं। शब्दों की व्याख्या करने वाले मन को ही मैं शास्त्रीय मन कहता हूं। वह चाहे गीता के शब्दों की व्याख्या करता हो या मेरे शब्दों की। यही शास्त्रीय बुद्धि है...यह शब्दों को पकड़ लेने वाली, शब्दों पर जीने वाली, शब्दों पर सोचने वाली। इस तरह का मनुष्य कभी सत्य के निकट नहीं पहुंच पाता। क्योंकि शब्दों से सत्य का क्या लेना-देना है? सत्य की तरफ तो...शब्द इतनी ही अगर खबर दे सकें कि शब्दों को छोड़ देना है तो बात पूरी हो जाती है।

मैं जिन शब्दों का उपयोग कर रहा हूं, बहुत खुश नहीं हूं। आज तक कोई भी बहुत खुश नहीं रहा है शब्दों का उपयोग करके। लेकिन करे क्या?

एक मित्र ने पूछा है, जो सत्य को जान लेते हैं, वे फिर बोलते ही नहीं और आप तो बोलते हैं?

बड़ी मजेदार बात पूछी है। तब तो उनेक हिसाब से ही...और ये वही मित्र हैं, जिनने पहले प्रश्न पूछे हैं शास्त्रों के पक्ष में। तो ये शास्त्र किसने बोले होंगे? सत्य को जानने वाले बोलते नहीं हैं तो ये बुद्ध, महावीर, कृष्ण और क्राइस्ट जो बोलते हैं, ये तो सत्य को जानने वाले रहे नहीं? फिर सत्य को न बोलने वाले का पता कैसे लगा आपको और कहां से, क्योंकि वह कभी बोला नहीं? उसका पता आपको लग सकता नहीं। कैसे खबर मिली आपको? क्या किसी आदमी को गूंगा देखकर आप समझ लेंगे कि यह सत्य को उपलब्ध हो गया है? या किसी आदमी को चुपचाप बैठे देखकर समझ लेंगे कि यह सत्य को उपलब्ध हो गया है?

तब तो बड़ी आसान बात है। गूंगा होना भी कठिन नहीं, गूंगेपन को साधना भी कठिन नहीं। और दोत्तीन वर्ष चुप रह जाएं तो फिर बोल भी नहीं सकते, चाहें तो भी। क्योंकि दोत्तीन वर्ष में बोलने का यंत्र फिर खराब हो जाता है। तब तो बड़ी आसान बात है। मामला सिर्फ बोलने के यंत्र को खराब करने का है। तो फिर सत्य को उपलब्ध आप हो जाएंगे। इतना आसान नहीं था।

लेकिन हां, प्रश्न पूछने वाले मित्र जैसे सोचने वाले बहुत लोग हुए हैं। कई लोग सोचते हैं: आंख बंद कर लो, आंख फोड़ लो तो सत्य को उपलब्ध हो जाओगे! कोई सोचता है, मुंह बंद कर लो, वाणी बंद कर लो तो सत्य को उपलब्ध हो जाओगे! कोई सोचता है, कान बंद कर लो! जो और भी बहुत अग्रणी विचारक हैं, वे सोचते हैं, आत्मघात ही कर लो तो सत्य को उपलब्ध हो जाओगे! क्योंकि तब सभी इंद्रियां बंद हो जाएंगी। बोलना तो एक ही इंद्रिय है। आत्मघात करने से सभी इंद्रियां बंद हो जाती हैं। सो जल समाधि लेने वाले और मिट्टी

में समाधि लेने वाले और मरने वालों का लंबा सिलसिला है! आत्महत्या करने वालों का! वे भी सत्य को उपलब्ध हो जाते हैं?

बहुत अजीब बात है। सत्य को उपलब्ध होने से बोलने, न-बोलने का कोई भी संबंध नहीं है। सत्य को उपलब्ध हुए लोग नहीं बोले या बोले, इससे भी कोई संबंध नहीं है। एक बात तय है कि जिन्होंने भी सत्य को जाना, उन्हें बोलने में बड़ी कठिनाई हो गई। लेकिन उनकी दया और करुणा का यह कारण रहा होगा कि जिसे नहीं बोला जा सकता, उसे भी उनने बोलने की कोशिश की है, चेष्टा की है। जो नहीं कहा जा सकता, उस तरफ भी इशारे किए हैं। जिस तरफ आंखें नहीं उठाई जा सकतीं, उस सूरज की तरफ भी खबर की है। उनकी पीड़ा को हम नहीं समझ सकते। वे कितनी पीड़ा से गुजरते होंगे, यह कहना कठिन है। क्योंकि उनके सामने सबसे बड़ा पैराडाक्स, सबसे बड़ी विरोधाभासी चीज खड़ी हो जाती है। कुछ उन्होंने जाना है, और वह जाना हुआ लुट जाना चाहता है, बंट जाना चाहता है। लेकिन बांटने का कोई साधन हाथ में नहीं है। उसे कैसे बांटे, उसे कैसे लुटा दें?

बहुत अधूरे उपकरण हैं शब्दों के, भाषा के, उनका ही उपयोग करना पड़ता है। उनका उपयोग किया गया है। जो सत्य को जानता है, वह बोलता नहीं, फिजूल की बात है। लेकिन जो सत्य को जानता है, वह जानता है यह भी कि जो मैंने जाना है, वह बोला नहीं जा सकता है। लेकिन फिर भी बोलने का हजारों वर्ष से उपक्रम चलता है। कोई करुणा है सत्य के जानने के साथ ही--कोई प्रेम है, जो बंट जाना चाहता है। कोई चीज भीतर जन्मती है, वह बिखर जाना चाहती है, फैल जाना चाहती है। जैसे फूल खिलता है तो उसकी सुगंध हवाओं में लुट जाना चाहती है। दीया जलता है तो उसकी किरणें अंधेरे में दूर की यात्रा पर निकल जाती हैं। जब किसी प्राण में सत्य का दीया जलता है या सत्य का फूल खिलता है, तब सत्य की किरणें और सत्य की सुगंध भी अनेक-अनेक रूपों में बिखर जाना चाहती है, फैल जाना चाहती है।

जिस जीवन में भी सत्य आया हो, वह हजार-हजार रूपों में प्रगट होना चाहता है। शब्द भी, चित्र भी, रंग भी, काव्य भी न मालूम किन-किन रूपों में वह प्रगट होना चाहता है, बंट जाना चाहता है। जब भी आनंद उपलब्ध होता है तो वह बंटना चाहता है।

दुख और आनंद में यही फर्क है। दुख उपलब्ध होता है तो सिकुड़ता है, आदमी बंद होता है अपने में, क्लोज होता है। जब आप दुखी होते हैं तो आप द्वार बंद करके एक कोने में बैठ जाना चाहते हैं। नहीं चाहते कोई आए, कोई बोले, कोई मिले। दुख सिकोड़ता है। जब बहुत दुखी होते हैं तो नशा पीकर बंद हो जाना चाहते हैं--कि किसी का मुझे पता ही न रहे कि कोई है। और भी ज्यादा दुखी होते हैं, आत्महत्या कर लेते हैं, क्योंकि मर जाने से फिर किसी से कोई संबंध नहीं रह जाएगा।

लेकिन जब आनंद उपलब्ध होता है, तब किसी आदमी को बंद कमरे में बैठे देखा है? जब आनंद उपलब्ध होता है तो वह खोजने निकलता है--किसको दे दूं। कोई मिल जाए, जिससे

मैं शेयर कर लूं, जिसको भागीदार बना लूं। जो लोग जंगल भी भाग गए थे, अगर उनको वहां आनंद मिल गया तो भागकर वापस बस्ती में आ गए।

महावीर जंगल में थे, बुद्ध जंगल में थे। फिर लौटकर बस्ती में कैसे आ गए, कौन खींच लाया? आप? मैं? हम तो पहले भी बस्ती में रहते थे। वे बस्ती से भाग गए थे। लौट कैसे आए? कौन ले आया? भीतर एक आनंद का जब जन्म हुआ तो वह आनंद मांगने लगा--शेयर करो, बांटो। किसको बांटें? भागे बस्ती की तरफ, जहां लोग थे। वहां जाकर उनको कह देना होगा, वे किरणें उन तक पहुंचा देनी होंगी।

बुद्ध जिस दिन मरे, सुबह ही हजारों भिक्षु इकट्ठे हो गए। उन्हें प्रेम करने वाले हजारों लोग। बुद्ध ने उनसे कहा कि आज अंतिम क्षण है मेरे जीवन का। अब मैं तुमसे विदा लेता हूं। और इसके पहले कि मैं विदा लूं और विलीन हो जाऊं अनंत में, कुछ तुम्हें पूछना हो, पूछ लो।

वे सारे भिक्षु, वे सारे उन्हें प्रेम करने वाले लोग, उनकी आंखें आंसुओं से भरी हैं। उन्हें कोई प्रश्न नहीं सूझता। वे कहते हैं बहुत आपने दिया, बहुत आपने बांटा। कुछ अब हमें और नहीं पूछना, सब आपने बताया है। तीन बार बुद्ध पूछते हैं। फिर जब कोई कुछ नहीं पूछता तो वे उठकर पास में वृक्ष के पीछे चले जाते हैं। ताकि वहां वे शांति से ध्यान में डूबते चले जाएं और ध्यान की अंतिम गहराई में विलीन हो जाएं। वे वहां पीछे चले जाते हैं।

जिस गांव के किनारे यह घटना घटती है, उस गांव में सुभद्र नाम का एक व्यक्ति था। बुद्ध उस गांव से तीन बार निकले थे। लेकिन सुभद्र अपनी दुकान में व्यस्त था। उसने सोचा अगली बार आएंगे तब मिल लूंगा, तब दर्शन कर लूंगा, तब सुन लूंगा उनकी बातें।

अभी उसे पता चला कि अब अगली बार बुद्ध नहीं आएंगे उस गांव से, अब अंतिम दिन है उनका। वह दुकान बंद करके भागा। इधर वह आया तो उसने पूछा, कहां हैं? मुझे कुछ पूछना है। तो भिक्षुओं ने कहा, चुप। वे हमसे विदा भी ले चुके। और उन्होंने पूछा भी था, लेकिन कोई पूछने वाला नहीं था। अब देर हो गई, अब बहुत देर हो गई। जब वे तीन बार तेरे गांव में आए थे, तब तू कहां था?

उसने कहा, मैं तो वहां था लेकिन सोचा कि फिर कभी अगली बार। अगर कुआं घर पर आ जाए तो आप भी सोचेंगे अगले दिन प्यास लगेगी, तब देखेंगे। पर उसने कहा कि अब तो दुबारा वे नहीं आ सकेंगे। क्या नहीं हो सकता ऐसा कुछ कि मैं उनसे पूछ लूं? दो शब्द मुझे जानने हैं, सुनने हैं। लेकिन भिक्षुओं ने कहा कि नहीं, अब यह नहीं हो सकता।

लेकिन बुद्ध को यह भनक कान में पड़ गई। वे वृक्ष के पीछे से उठकर आगे आ गए। और उन्होंने कहा, सुभद्र, जो भी पूछना हो तो पूछ ले। क्योंकि मेरे नाम पर यह कलंक न रह जाए कि मैं जीवित था, और कोई प्यासा आया था और प्यासा वापस लौट गया।

इस आदमी को सत्य उपलब्ध नहीं हुआ होगा निश्चित ही, क्योंकि नहीं तो यह आदमी मरते वक्त भी बोलने की इतनी उत्सुकता दिखाता? गलती में रहे हम अब तक कि सोचते थे कि इस आदमी को सत्य उपलब्ध हो गया?

लेकिन सत्य तो उपलब्ध होता है। हजारों लोगों को हुआ है, होगा। वे अपनी-अपनी सामर्थ्य से चेष्टा करते हैं उसे बांट देने की। लेकिन जब हम उनके शब्दों को पकड़कर सोच लेते हैं कि सत्य मिल गया, तो भूल हो जाती है। यही शास्त्र पकड़ने की भूल है। बुद्ध के वचन को हम पकड़ लें, क्योंकि बुद्ध को सत्य मिला था--तो उनके वचनों को हम पकड़ लें, पूजा करें उन वचनों की, उन वचनों पर टीका-टिप्पणी करें, उन वचनों को कंठस्थ करें, उन वचनों को दोहराते रहें, जीवन इसमें व्यतीत कर दें--तो भूल हो जाती है। तो फिर हम इन्हीं शब्दों में अटके रह जाते हैं। तो फिर हम यहीं उलझकर रह जाते हैं।

एक आदमी के जीवन में प्रेम उपलब्ध हुआ हो। वह प्रेम के कुछ गीत गाए और हम उन गीतों को याद कर लें, पकड़ लें, कंठस्थ कर लें और सोचें कि हम भी प्रेम को उपलब्ध हो गए हैं--तो क्या यह ठीक होगा? क्या प्रेम के गीत याद कर लेने से कोई प्रेम को उपलब्ध होता है? तो क्या सत्य के शब्द, सत्य की अभिव्यक्तियां--इनको पकड़ लेने से कोई सत्य को उपलब्ध हो जाएगा? न तो प्रेम के गीत याद कर लेने से कोई प्रेम को पाता है। और न सत्य के गीत याद कर लेने से कोई सत्य को पाता है।

लेकिन जिसके जीवन में प्रेम आया था, हो सकता है गीतों में प्रेम बहा हो। उसने अपनी तरफ से गीतों में प्रेम का दान किया हो। उसने जो जाना था, उसने जो जीया था, वह बहा हो उससे। उससे जरूर बहा था। लेकिन आप अगर उसको ही पकड़कर ठहर जाते हैं तो आपको वह नहीं मिलने को है।

ये जो दो भेद हैं, ये अगर हमारे खयाल में न रहें तो कठिनाई पैदा हो जाती है। आपको भी वह उपलब्ध हो सकता है, जो किन्हीं के शब्दों से प्रगट हुआ है। लेकिन वह उपलब्ध होगा निःशब्द में जाने से, शून्य में जाने से, निर्विचार में जाने से, ध्यान में जाने से। क्योंकि जिनको भी वह कभी उपलब्ध हुआ है ध्यान में, निर्विचार में, शून्य में ही उपलब्ध हुआ है। किसी ने भी कहा है कभी आज तक कि मुझे शास्त्र से सत्य उपलब्ध हुआ है? किसी ने कहा है यह आज तक कि मुझे शास्त्र से सत्य उपलब्ध हुआ है?

किसी ने भी नहीं। कहेगा भी कोई कैसे। शास्त्र से शब्द मिल सकते हैं, सत्य नहीं। सत्य पाने की तीव्र आकांक्षा हो तो इतनी तैयारी जरूरी है।

एक और मित्र ने पूछा है, उनके प्रश्न की चर्चा करके फिर हम ध्यान के लिए, रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।

एक मित्र ने पूछा है कि क्या मैं जप में, राम-नाम में, इन सबमें विश्वास नहीं करता हूं? क्या इनका कोई मूल्य और फायदा नहीं है?

एक और ने पूछा है, क्या एकाग्रता और ध्यान एक ही चीजें नहीं हैं?

थोड़ा इन पर चर्चा कर लें, उससे ध्यान को भी समझने में सुविधा होगी। फिर हम ध्यान के लिए बैठेंगे।

पहली बात, ध्यान और एकाग्रता एक ही बात नहीं है। दोनों बड़ी भिन्न बातें हैं। एकाग्रता, आत्म-सम्मोहन की विधि है, सेल्फ-हिप्नोसिस की, आटो-हिप्नोसिस की--खुद को मूर्च्छित कर लेने का उपाय है। एकाग्रता, कांसनट्रेशन, खुद को मूर्च्छित कर लेने की विधि है।

ध्यान आत्म-ज्ञान की विधि है।

ध्यान है आत्म-ज्ञान की विधि, और एकाग्रता है आत्म-मूर्च्छा की।

एकाग्रता है--स्वयं को भूल जाने की विधि, ध्यान है--स्वयं को जान लेने की।

एकाग्रता है--फारगेटफुलनेस, विस्मरण, ध्यान है--रिमेंबरिंग, स्मृति।

इसे थोड़ा समझ लेना जरूरी है।

हजारों वर्षों से यह भ्रम है कि एकाग्रता ही ध्यान है। और यह भ्रांति इतनी महंगी पड़ी है जितनी महंगी कोई भ्रांति नहीं पड़ी है। एकाग्रता का अर्थ है: चित्त को किसी एक चीज पर रोकना, ठहराना।

दीए की ज्योति पर ठहरा लें, राम के नाम पर ठहरा लें किसी प्रतिमा पर ठहरा लें; किसी सिंबल पर ठहरा लें, किसी एक चीज पर, एक विचार पर, एक धारणा पर--चित्त को सब भांति रोक लेने का प्रयास है।

चित्त को जब इस भांति रोक लेने की तीव्र चेष्टा की जाती है, तो क्या होता है? चित्त को जब बहुत जोर से कांसनट्रेट करने की, एकाग्र करने का श्रम किया जाता है, तो क्या होता है?

होता है यह कि जब तीव्रता से चित्त को एक जगह जबर्दस्ती हम रोकने की कोशिश करते हैं, चित्त वहां से भागने की कोशिश करता है। चित्त का स्वभाव गति है, डायनामिक है। माइंड जो है, चित्त जो है, वह डायनामिक है, गत्यात्मक है--जाना चाहता है, गति करना चाहता है, ठहरना नहीं चाहता।

समझ लें, गंगा को हमें ठहराना हो। गंगा को ठहराना हो तो क्या करना पड़े? गंगा जीवंत धारा है--बही जा रही है पहाड़ों से समुद्र की तरफ। चित्त भी बहा जा रहा है। चित्त की धारा, नदी भी, सरिता भी बही जा रही है अनंत की तरफ। हम उसे रोक लेना चाहते हैं, ठहरा लेना चाहते हैं। तो एक ही रास्ता है। वह रास्ता यह है कि गंगा का पानी जमकर बर्फ हो जाए तो गंगा ठहर जाएगी वहीं के वहीं, जहां है। तो वह जो डायनामिक गंगा है, वह डार्मेंट हो जाए; वह जो चलती गंगा है, वह ठहर जाए, बर्फ हो जाए, तो जहां के तहां ठहरी रह जाएगी।

साइबेरिया में या ठंडे स्थानों में नदियां जम जाती हैं। जम जाए गंगा तो ठहर सकती है, नहीं तो नहीं ठहर सकती। चित्त की धारा भी जम जाए, बर्फ बन जाए तो ठहर सकती है, नहीं तो नहीं ठहर सकती।

जगत में चित्त प्रवाहमान है, बहा जाता है। तो चित्त का बर्फ हो जाना, कांसनट्रेशन--हो सकता है। और चित्त बर्फ कब होता है, ठहरता कब है? जब नींद में चला जाता है। जब

मूर्च्छा में चला जाता है, तब ठहर जाता है। फिर उसमें कोई गति नहीं होती। एक बेहोश आदमी के चित्त में कोई गति नहीं होती।

तो अगर बहुत तीव्र हम कोशिश करें चित्त को ठहराने की, ठहराने की, ठहराने की, पहले चित्त उपाय करेगा भागने का, भागने का। फिर हम नहीं मानें, नहीं मानें, प्रयास जारी रखें तो, तो एक रास्ता रह जाएगा चित्त के सामने कि वह सो जाए। सोते से ठहर जाए, मूर्च्छा आ जाए; हिप्नोसिस, नींद आ जाए, सम्मोहित हो जाए--तो ठहर जाएगा। निश्चित ही इस ठहरने में फिर दुख का कोई पता नहीं चलेगा। क्योंकि जब चित्त मूर्च्छित है तो पता किसको चले।

अब तो हिप्नोसिस के द्वारा, सम्मोहन के द्वारा आपरेशन भी होते हैं--आपको ज्ञात होगा। अब तो यूरोप और अमरीका के बड़े-बड़े अस्पतालों में एक हिप्नोटिस्ट एक सम्मोहक भी रखते हैं। और बड़े सफल हुए प्रयोग। एक आदमी को बेहोश कर देते हैं, कांसनट्रेशन के द्वारा, एकाग्रता के द्वारा। उस आदमी को कहते हैं अपनी आंख को इस प्रकाश पर लगाओ। वह एक पांच मिनट तक आंख को प्रकाश पर देखता रहता है। फिर सारा चित्त उसका धीरे-धीरे-धीरे जमता जाता है और मूर्च्छित हो जाता है। जब वह मूर्च्छित हो जाता है तो उसे कह देते हैं मूर्च्छित होती अवस्था में, कि अब तुम आधा घंटे के लिए मूर्च्छित हो गए। आधा घंटे तक उसका चित्त फ्रोजन, जमा हुआ रह जाएगा। अब उसका पैर काट डालो, उसे पता नहीं चलेगा। उसका आपरेशन कर दो, उसे पता नहीं चलेगा।

तो अनस्थीसिया के, बेहोश करनी वाली दवाओं का उपयोग अब वैज्ञानिक कहते हैं, बहुत जरूरी नहीं है। जैसे-जैसे हिप्नोटिज्म की हमारी सामर्थ्य, समझ बढ़ती जाएगी, वैसे-वैसे आदमी को बेहोश केवल एकाग्रता के द्वारा किया जा सकता है। फिर आपरेशन करना बहुत आसान है, क्योंकि वह आदमी मूर्च्छित है, उसे पता नहीं कि क्या हो रहा है--हाथ-पैर काटा जा रहा है या क्या किया जा रहा है।

यह जो स्थिति है, यह आनंद की स्थिति नहीं है। यह आत्म-विस्मरण की स्थिति है। इसको ही कोई आनंद समझ लेगा तो भूल में पड़ जाता है।

इसी भांति नाम-जप का भी परिणाम होता है। एकाग्रता का जो परिणाम है, वही नाम-जप का भी परिणाम है। एक ही शब्द को बार-बार दोहराने, बार-बार दोहराने से चित्त में ऊब पैदा होती है, बोरडम पैदा होती है। और ऊब की वजह से नींद पैदा होती है।

तो चाहे एकाग्रता से नींद ले आएं और चाहे ऊब से। अगर आप यहां ऊब जाएं मेरी बातों से तो आप पाएंगे, आपको नींद आनी शुरू हो गई। बोरडम नींद ले आती है। इसलिए मंदिरों में लोग अक्सर सोए हुए नजर आते हैं। धर्म-सभाओं में लोग सोए हुए मिलेंगे। क्योंकि वही बातें, वही राम की कथा, बहुत बार सुनी जा चुकी है। उससे ऊब पैदा होती है। ऊब पैदा होने से नींद आ जाती है। तो राम, राम, राम, राम, राम, राम कोई जपता रहे तो ऊब पैदा होगी।

एक घटना मैंने सुनी है।

एक आदमी पर अदालत में मुकदमा चला। उसने एक स्त्री के सिर पर चोट कर दी थी और अकारण। एक बस में वह बैठा हुआ था, एक डबल-डेकर बस में, दो मंजिली बस में बैठा हुआ था, नीचे की मंजिल में और उसके पड़ोस में एक औरत बैठी हुई थी। अचानक उसने उस औरत के सिर पर हमला कर दिया। वह औरत बेहोश हो गई। वह औरत अपरिचित थी। उस पर मुकदमा चला। वह पकड़ा लिया गया। और मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा कि तुमने इस स्त्री पर क्यों हमला किया? न तुम्हारा कोई परिचय है, न कोई पहचान। तुम पागल तो नहीं हो? उसने कहा, पागल तो मैं नहीं हूं। लेकिन उस क्षण पागल हो गया था। मजिस्ट्रेट ने पूछा क्या घटना घटी, जिससे तुम हमला करने को तैयार हुए? तो उसने कहा घटना ऐसी घटी है।

मैं बस में आकर बैठा। मेरे पीछे ही यह औरत भी आकर बैठी। इसके हाथ में एक बैग था। इसने बैग को खोला। उसके भीतर से पर्स निकाली। फिर बैग को बंद किया, फिर पर्स को खोला, फिर पर्स में से रुपए निकाले। फिर पर्स बंद की। कंडक्टर आ रहा था। लेकिन कंडक्टर दूसरे ग्राहक के पास चला गया। इसने फिर अपनी पर्स खोली, रुपया अंदर रखा, पर्स बंद की; बैग खोला, बैग में पर्स रखी, बैग बंद किया। कंडक्टर फिर इधर आ रहा था। इसने फिर बैग खोला, पर्स बाहर निकाली, बैग बंद किया; पर्स खोली, रुपया बाहर निकाला, पर्स बंद की। फिर कंडक्टर दूसरी तरफ चला गया। इसने फिर पर्स खोली।

मजिस्ट्रेट बोला, स्टाप। यू विल ड्राइव मी क्रेजी, तुम मुझे पागल कर दोगे। चुप हो।

उस आदमी ने कहा, सर, दिस इज वाट, दैट हैपंड विथ मी। यही तो मेरे साथ हुआ कि मैं एकदम पागल हो गया।

कोई चीज रिपीट, रिपीट, रिपीट, रिपीट; दोहरे, दोहरे दोहरे, तो दिमाग ऊब जाए, घबड़ा जाए। उस घबड़ाहट में रास्ता एक ही रह जाए कि सो जाओ।

छोटे बच्चे को सुला देते हैं। कहते हैं, मुन्ना राजा सो जा, मुन्ना राजा सो जा, मुन्ना राजा सो जा। थोड़ी देर में मुन्ना राजा ऊब जाता है और सो जाता है। मां समझती है हमारे संगीत का फल है। मुन्ना राजा केवल बोरडम की वजह से सो गए। और मुन्ना राजा के बाप भी सो सकते हैं, अगर यही तरकीब उपयोग में लाई जाए।

जब भी चित्त ऊबेगा, जब भी चित्त परेशान हो जाएगा, एक शब्द की पुनरुक्ति से तो सिवाय सोने के कोई उपाय नहीं रह जाता है। बहुत पहले लोगों ने यह तरकीब खोज ली थी। एक शब्द को पकड़ लो, दोहराए चले जाओ--ओम, ओम, ओम दोहराए चले जाओ। राम, राम, राम--कोई भी शब्द। अल्लाह, अल्लाह सभी शब्द समान हैं। कोई भी शब्द दोहराए चले जाओ। दोहराते जाओ, दोहराते जाओ, खुद का मन बेचैन हो जाएगा, ऊब जाएगा, घबड़ा जाएगा। घबड़ाहट में एक ही रास्ता रह जाएगा कि सो जाओ तो छुटकारा हो जाए इस परेशानी से। इस रिपिटीशन से मुक्ति का एक ही रास्ता है।

कोई दूसरा कर रहा हो तो आप भागकर चले जाएं। कहीं खुद ही कर रहे हैं, तो भागेंगे कहां?

अगर दूसरा राम-राम जप रहा हो तो हम अपने कान बंद कर लें। दूसरा राम-राम जप रहा हो, हम अपना रेडियो खोल लें। दूसरा राम-राम जपता हो, हम वह जगह छोड़ दें। लेकिन जब हम खुद ही जप रहे हों, तो हमारा मन क्या करे? कहां जाए? उसके पास एक ही रास्ता है, वह नींद में चला जाए। यह नींद में चले जाना बचाव का उपाय है और कुछ भी नहीं। मन को परेशान करेंगे, मन बचना चाहेगा। आत्मरक्षा में मन सो जाएगा। यह सेल्फ डिफेंस है और कुछ नहीं। आप टार्चर कर रहे हैं, आप परेशान कर रहे हैं, तो आत्मरक्षा में मन एक ही रास्ता देखता है कि सो जाना उचित है। और मन सो जाता है।

इस सोने में एक तरह का सुख मिलता है। और वह सुख यही है कि हमें दुखों का कोई पता नहीं चलता। जब हम बाहर आते हैं तो इतनी देर के लिए जो नींद पैदा हो गई--जो अपने हाथ से पैदा की गई नींद थी, उस नींद के बाद थोड़ी सी राहत मिलती है। थोड़ा हल्का, अच्छा लगता है। और वह हल्का लगने की वजह से फिर हम सोचते हैं दुबारा जाएं, तिबारा जाएं। फिर यह एक माइंड की हेबिट, एक आदत बन जाती है। फिर रोज-रोज मन मांग करता है--जैसे मांग सिगरेट की करता है, चाय की करता है, वैसे ही वह कहता है अब राम-राम जपो। क्योंकि उससे थोड़ी सी राहत मिलती है। और जिस दिन राम-राम नहीं जपते, उस दिन ऐसा लगता है कि जैसे कोई काम छूट गया, जैसे सिगरेट नहीं पी। आज तो लगता है कुछ खाली जगह रह गई। ऐसा उससे भी लगता है। ये दोनों एक सी आदतें हैं। इनमें कोई भी फर्क नहीं है।

न तो जप, न एकाग्रता--ये मनुष्य को आत्मज्ञान में नहीं ले जाते हैं। आत्मज्ञान में तो ले जाता है ध्यान।

और ध्यान का अर्थ है--परिपूर्ण चैतन्य, जागरूकता, कांशसनेस। बेहोशी नहीं, नींद नहीं--होश। जितना ज्यादा मेरे भीतर जागरूक होता जाए चैतन्य, जितना अलर्ट, जितना अवेअर, जितना बोधपूर्ण--उतना मेरे भीतर क्या है, उसकी जानने की दिशा, जानने की सामर्थ्य, जानने की पात्रता मुझे उपलब्ध होती चली जाती है।

इतना जाग जाना है भीतर--कि भीतर एक कोना भी न रह जाए अनजाना, अपरिचित। भीतर एक अंधेरे का कण भी न रह जाए, इतना जाग जाना है कि सब हो जाए आलोकित, सब भीतर प्रकाश से भर जाए, होश से भर जाए। एक-एक कोना मेरे चित्त का मुझसे परिचित हो जाए। जिस दिन टोटल माइंड, जिस दिन पूरा चित्त जान लिया जाता है--सिर्फ कांशस माइंड नहीं, टोटल, सिर्फ चेतन मन नहीं, अचेतन भी। वह जो छिपा है अनकांशस, वह भी। जिस दिन पूरा मन...पूरा मन जिस दिन जान लिया जाता है, उस दिन जीवन के सारे रहस्यों के द्वार खुल जाते हैं। पूरे मन के प्रति जाग जाना है। और जान लिया जाना पूरे मन का, ध्यान है।

तो ध्यान तो सोने की तरकीब नहीं है, जागने की तरकीब है। और एकाग्रता, और नाम-जप इत्यादि सोने की तरकीबें हैं, जागने की नहीं। इसलिए जिन कौमों ने इस तरह की सोने की विधियों का उपयोग किया, उनके पूरे प्राण धीरे-धीरे सुस्त होकर सो गए। उनके जीवन में

जागरण की प्रफुल्लता, जागरण की ऊर्जा और शक्ति दिखाई पड़नी बंद हो गई। वे सो गए। उनके जीवन में क्रांति और परिवर्तन विलीन हो गया। क्योंकि क्रांति और परिवर्तन होता है उसके जीवन में, जो जागा हुआ है। जो सोया हुआ है, वह क्या क्रांति और परिवर्तन करेगा। जो आदमी सोया हुआ है, उसके घर में आग लग जाए तो भी वह उठकर नहीं आएगा। जो आदमी जागा हुआ है, घर में आग लगे तो उसको बदलने की कोशिश करेगा।

आदमी के घर में कितनी आग लगी हुई है, इसका कुछ पता है? आदमी निरंतर आपके भीतर जी रहा है, इसका कुछ पता है? आदमी के जीवन में कितनी दीनता, कितनी दरिद्रता, कितना दुख है, इसका कुछ पता है? लेकिन हम सो रहे हैं--तो पता कैसे हो?

अगर आदमी जागा हुआ होता तो दुनिया बिलकुल दूसरी हो जाती। इस दुनिया में युद्धों के होने की जरूरत न रह जाती। इस दुनिया में रोज हत्याएं और कत्ल होने की जरूरत न रह जाती। इस दुनिया में आदमी इतना दुखी न होता कि शराब पीए, नशा करे, अपने को भूले। आदमी इतना दीन-हीन, इतना दरिद्र, इतना पीड़ित न होता। यह दुनिया बिलकुल दूसरी दुनिया हो सकती थी। लेकिन यह दूसरी दुनिया नहीं हो पाई, क्योंकि हमने अब तक सब भांति सोने की तरकीबें खोजी हैं, जागने की नहीं।

धर्म का कोई संबंध सोने से और निद्रा से नहीं है। धर्म का संबंध है जागरण से। और जागरण का धर्म जिस दिन दुनिया के कोने-कोने, आदमी-आदमी के मन तक पहुंच सकेगा, उस दिन हम मनुष्य के बदलने की कीमिया उपलब्ध कर लेंगे। एक अदभुत रूप से मनुष्य के जीवन को नया किया जा सकता है।

तो जागरण है ध्यान।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २०-१०-६७, रात्रि

८. सृजन का सूत्र

मेरे प्रिय आत्मन्,

मनुष्य एक तिमंजिला मकान है। उसकी एक मंजिल तो भूमि के ऊपर है, बाकी दो मंजिल जमीन के नीचे। उसकी पहली मंजिल में, जो भूमि के ऊपर है, थोड़ा प्रकाश है। उसकी दूसरी मंजिल में, जो जमीन के नीचे दबी है और भी कम प्रकाश है। और उसकी तीसरी मंजिल में जो बिलकुल भूगर्भ में छिपी है, पूर्ण अंधकार है, वहां कोई प्रकाश नहीं है।

इस तीन मंजिल के मकान में--जो कि मनुष्य है, अधिक लोग ऊपर की मंजिल में ही जीवन को व्यतीत कर देते हैं। उन्हें नीचे की दो मंजिलों का न तो कोई पता होता है, न

खयाल होता है। ऊपर की मंजिल बहुत छोटी है। नीचे की दो मंजिलें बहुत बड़ी हैं। और जो अंतिम अंधेरा भवन है नीचे, वही सबसे बड़ा है--वही आधार है सारे जीवन का।

जिस व्यक्ति को सत्य की और स्वयं की यात्रा करनी हो, उसे नीचे की दो मंजिलों में उतरना पड़ता है। सत्य की यात्रा आकाश की तरफ की यात्रा नहीं है, बल्कि पाताल के तरफ की यात्रा है। ऊपर की तरफ नहीं--नीचे और भीतर और गहरे उतरने का सवाल है।

जंगल में चारों तरफ हमारे वृक्ष खड़े हुए हैं। वृक्षों का एक हिस्सा तो वे पत्ते हैं, जो सूरज के बिलकुल सामने हैं और सूरज की रोशनी से प्रकाशित हैं। वृक्ष का दूसरा हिस्सा वे शाखाएं और पीड़ हैं, जो पत्तों के नीचे छिपी हैं, जिन पर कहीं-कहीं सूरज की रोशनी पड़ती भी है, कहीं-कहीं नहीं भी पड़ती है। वृक्ष का तीसरा हिस्सा, वे जड़ें हैं, जो जमीन के भीतर छिपी हैं, जिन पर सूरज की रोशनी कभी भी नहीं पड़ती। लेकिन वृक्ष के प्राण वृक्ष की जड़ों में हैं। और जो वृक्ष को पूरा जानना चाहता हो, उसे जड़ों को जानना ही पड़ेगा, जो कि दिखाई नहीं पड़ती हैं, अदृश्य हैं, छिपी हैं। जो वृक्ष के पत्तों पर ही रह जाएगा, वह वृक्ष को नहीं समझ पाएगा।

हमारे मन के भी ऐसे ही तीन हिस्से हैं। पहला हिस्साः जिस पर थोड़ी रोशनी पड़ती है, वह है कांशस माइंड, चेतन मन। दूसरा हिस्साः जो उसके नीचे दबा है, वह है सब-कांशस माइंड, अर्द्ध-चेतन मन। और तीसरा हिस्सः जो सबसे नीचे छिपा है, वह है अनकांशस माइंड, अचेतन मन। पहले हिस्से में थोड़ी चेतना है। दूसरे हिस्से में और भी कम, तीसरे हिस्से में बिलकुल नहीं है। यह मनुष्य है।

मनुष्य का जो चेतन मन है, जो कांशस माइंड है, उसमें ही हममें से अधिक लोग जी कर समाप्त हो जाते हैं, इसलिए जीवन को नहीं जान पाते हैं। जीवन की जड़ें अनकांशस माइंड में, अचेतन मन में छिपी हैं। वह अदृश्य है, वह भूमि के नीचे है। वहीं से हमारा संबंध परमात्मा से, सत्य से, जीवन से है। वहीं से जड़ें पृथ्वी से जुड़ी हैं। जड़ों का संबंध ही जीवन से है। हमारे अचेतन मन में हमारी जड़ें हैं।

सत्य की जो खोज है या स्वयं की या प्रभु की, वह खोज खुद की जड़ों की खोज है। वह जो रूट्स हैं हमारे भीतर, उनकी खोज है। वे अंधेरे में छिपी हैं। और हम? हम वह जो छोटा सा कमरा है ऊपर जमीन के, वहां जहां रोशनी पड़ती है, वहीं जी लेते हैं और वहीं समाप्त हो जाते हैं।

यह जिस कमरे में थोड़ी रोशनी पड़ती है, यह जो चेतन मन है, यह जो कांशस माइंड है, यह समाज के द्वारा निर्मित होता है। शिक्षा के द्वारा, संस्कार के द्वारा। बचपन से हम इसे तैयार करते और बनाते हैं। और आज तक मनुष्य का यह जो कांशस माइंड है, यह जो चेतन मन है, यह बिना इस बात के खयाल के निर्मित किया गया है कि इसके नीचे दो मन और हैं। इसलिए अक्सर इस मन को जो बातें सिखाई जाती हैं, वे नीचे के मन के विरोध में पड़ जाती हैं, भिन्न हो जाती हैं। और तब इस ऊपर की मंजिल में और नीचे की मंजिलों में

एक विरोध, एक खिंचाव, एक तनाव शुरू हो जाता है। आदमी खुद के भीतर डिवाइडेड हो जाता है, खुद के भीतर विभाजित हो जाता है।

चेतन मन में जो बातें सिखाई जाती हैं, वे अचेतन मन और अर्द्ध-चेतन मन के अगर समानांतर न हों, पैरेलल न हों, हारमनी में न हों, उनके साथ लयबद्ध न हों तो व्यक्तित्व खंडित हो जाता है। हम सबका व्यक्तित्व खंडित व्यक्तित्व है, डिसइंटीग्रेटेड। और है इसलिए कि हमारे चेतन मन को जो बातें सिखाई गई हैं, सिखाई जाती रही हैं, उनमें हमारे पूरे व्यक्तित्व का कोई ध्यान नहीं रखा गया है।

चेतन मन को कहा जाता है, क्रोध मत करो। बच्चा पैदा हुआ--हम उसे सिखाना शुरू करते हैं, क्रोध मत करो। उसके अचेतन मन में क्रोध मौजूद है। हम उसे सिखाते हैं, क्रोध मत करो। उसका ऊपर का मन सीख लेता है, क्रोध नहीं करना है, लेकिन भीतर क्रोध मौजूद है। ऊपर का मन कहता है, क्रोध मत करो--भीतर का मन क्रोध के लिए धक्के देता है। हर क्षण जब भी मौका आता है, क्रोध प्रगट होना चाहता है। भीतर का मन क्रोध को प्रगट करना चाहता है। ऊपर का मन क्रोध को रोकना और दबाना चाहता है। एक सप्रेशन, एक दमन शुरू हो जाता है। और तब हम दो हिस्सों में टूट जाते हैं।

जिसे हम दबाते हैं, वह हिस्सा अलग हो जाता है। जो दबाता है, वह हिस्सा अलग हो जाता है। और इन दोनों में निरंतर एक द्वंद्व, एक कानफ्लिक्ट, एक संघर्ष चलने लगता है। इसी संघर्ष में मनुष्य टूटता और नष्ट होता है।

मनुष्य के इन तीन मनों के बीच एकता के सध जाने का नाम ही योग है। मन के इन तीन हिस्सों के बीच हारमनी, संगीत का पैदा हो जाना ही साधना है।

लेकिन जैसी स्थिति है, वह यह है कि इन तीनों के बीच कोई संबंध नहीं है। बल्कि यह एक-दूसरे के विरोध में खड़े हैं।

जो हम दिन में सोचते हैं, विचार करते हैं, रात सपने में उससे बिलकुल उलटा देखते हैं। सपने में हमारे पीछे छिपा हुआ मन प्रगट होना शुरू होता है। दिनभर में चेतन मन थक जाता है, सो जाता है। फिर रात, वह जो सबकांशस माइंड है, वह जो पीछे छिपा मन है, वह प्रगट होना शुरू होता है। तो हम दिन में कुछ और होते हैं, सपने में कुछ और होते हैं--बल्कि उलटे होते हैं। दिन में हम चोरी नहीं करते, सपने में चोरी कर लेते हैं। दिन में हम हत्या नहीं करते किसी की, सपने में हत्या कर देते हैं। फिर हमें हैरानी होती है सुबह जागकर--ये सपने मैंने कैसे देखे! मैंने तो कभी हत्या के लिए सोचा भी नहीं। मैंने तो कभी चोरी की ही नहीं। फिर मैंने सपने में कैसे चोरी की! सपने में कैसे हत्या की!

चेतन जो मन है, उसने नहीं सोचा हत्या के लिए, लेकिन अचेतन मन ने सोचा है। और चेतन मन उसे दबाए हुए बैठा है। जब सपना, नींद में चेतन मन सो जाता है तो अचेतन अपनी बातें प्रगट करना शुरू कर देता है। हमारे भीतर इस भांति खाइयां पैदा हो गई हैं। और इन सारी खाइयों को पैदा करने का सूत्र है--सप्रेशन, दमन।

आज तक यही समझाया गया है: मन का दमन करो। मन में जो भी बुरा है, उसे दबाओ। लेकिन दबाने से वह कहां जाएगा? क्या दमन करने से कोई चीज नष्ट हो जाती है? दमन करने से नष्ट नहीं होती और गहरे प्रविष्ट हो जाती है। और भीतर गहराई में जाकर मौजूद हो जाती है। हम उसे दबा लेते हैं, वह हमारे प्राणों का हिस्सा हो जाती है।

तो हम चेतन मन को तो पवित्र कर लेते हैं, साफ कर लेते हैं, वहां तो हम अच्छे-अच्छे सुभाषित वचन टांग देते हैं--सफाई कर लेते हैं पूरी, और सारी गंदगी भीतर हटा देते हैं। तो भीतर हमारे प्राण तो गंदे होते चले जाते हैं। ऊपर सब सफाई हो जाती है, भीतर सब गंदगी इकट्ठी हो जाती है। भीतर, जहां कि हमारा असली होना है, जहां कि हमारा आथेंटिक बीइंग है, वहां तो हम सब कचरा ढकेल देते हैं और ऊपर की मंजिल पर, बैठक-खाने में, वहां हम सब सफाई कर लेते हैं। ऐसी हमारी स्थिति है। ऐसा मन न तो स्वस्थ हो सकता है, न शांत हो सकता है। ऐसा मन निरंतर अपने भीतर ही द्वंद्व में, युद्ध में संलग्न रहता है। हम चौबीस घंटे लड़ रहे हैं अपने से। और जो अपने से लड़ रहा है, उसका जीवन नष्ट हो जाएगा। क्योंकि अपने से लड़ने का एक ही अर्थ है। अगर मैं अपने दोनों हाथों को लड़ाऊं तो क्या परिणाम होगा। क्या कोई जीतेगा? मेरे ही दोनों हाथ, मैं ही दोनों के पीछे मौजूद हूं--मेरी ही ताकत दोनों हाथों से लड़ेगी। कोई हाथ जीत नहीं सकता। लेकिन एक बात तय है, हाथ तो कोई नहीं जीतेगा, लड़ाने में मेरी शक्ति व्यय होगी। हाथ तो कोई नहीं जीतेगा लेकिन मैं हार जाऊंगा। आखिरी में, मैं पाऊंगा एक गहरी पराजय हो गई, हार गया।

हर आदमी जीवन के अंत में अपने को हारा हुआ, थका हुआ अनुभव करता है। जीवन के अंत में विजय हाथ नहीं आती, हार हाथ आती है। और हार आनी सुनिश्चित है। क्योंकि अपने ही हाथ कोई लड़ाएगा तो जीत कैसे हो सकती है? किसकी हो सकती है?

हम अपने ही मन को दो हिस्सों में तोड़कर लड़ा रहे हैं। और जिनसे हम लड़ रहे हैं--मन के वे हमारे ही हिस्से हैं, हम ही हैं, इसका हमें बोध भी नहीं! और दूसरी बात, जिन मन से हम लड़ रहे हैं, वे अंधेरे में बंद हैं, उनसे हमारा कोई परिचय भी नहीं, उनसे हमारी कोई पहचान भी नहीं!

अब तक की सारी शिक्षा, सारी संस्कृति, सारा समाज मनुष्य की इस अंतर्द्वंद्व की व्यवस्था पर खड़ा हुआ है। फिर इस अंतर्द्वंद्व के कारण अनेक विस्फोट होते हैं। जैसे हम केतली में चाय गरम करते हैं और केतली का मुंह बंद कर दें, ढक्कन बंद कर दें और गरम भी किए चले जाएं तो क्या होगा? एक्सप्लोजन होगा। केतली की भाप नहीं निकल पाएगी तो फोड़ देगी केतली के बर्तन को।

तो रोज-रोज आदमी में विस्फोट होता है। यह विस्फोट बहुत रूपों में होता है। एक आदमी पागल हो जाता है। यह भीतर दबाए गए विष का विस्फोट है। हमारे रोज-रोज की, दिन-दिन की कलह, संघर्ष--पति का पत्नी से, बच्चों का मां-बाप से, शिक्षक का विद्यार्थियों से, एक वर्ग का दूसरे वर्ग से, एक गांव का दूसरे गांव से, एक प्रांत का दूसरे प्रांत से, एक देश का दूसरे देश से, एक भाषा बोलने वालों का, दूसरी भाषा बोलने वालों से, रोज-रोज कलह--

उसमें हमारा भीतर दबा हुआ रोग रोज-रोज निकलता है। फिर और बड़े पैमाने पर युद्ध खड़े हो जाते हैं।

पांच हजार वर्षों में आदमी ने पंद्रह हजार युद्ध लड़े हैं। पंद्रह हजार युद्ध! क्या हम युद्ध ही लड़ते रहे दुनिया में? हमारी आज तक की पांच हजार वर्ष की सारी सभ्यता और संस्कृति युद्ध की सभ्यता और संस्कृति है। लड़ने में ही हमने जीवन व्यतीत किया है। कुछ बीच-बीच में जो कालखंड आते हैं, जब हम नहीं लड़ते, उस समय हम लड़ने की तैयारियां करते रहते हैं। जब हम नहीं लड़ते, तब लड़ने की तैयारियां करते हैं। और या लड़ते हैं, या लड़ने की तैयारियां करते हैं! बस दो ही काम मनुष्य जाति करती रही है।

यह क्या है? ये इतने एक्सप्लोजन, इतने विस्फोट क्यों होते हैं? छोटी सी चिनगारी से आदमी एकदम विक्षिप्त क्यों हो जाता है? हिंदू--मुसलमान के नाम से, जैन--ईसाई के नाम से, सिक्ख--पारसी के नाम से, जरा सी बात और आग लग जाती है और आदमी पागल हो जाता है! आदमी जैसे पागल होने को तैयार बैठा हुआ है। उसके भीतर इतना दबाव है कि जरा मौका मिल जाए कि वह निकल जाए। जरा सी गुंजाइश खड़ी हो जाए और वह पागल हो जाए।

यह आकस्मिक नहीं है। ये इतने युद्ध, इतनी कलह, इतना द्वंद्व--यह जैसा मनुष्य है, उसके स्वाभाविक परिणाम हैं। तो चाहे राजनैतिक चिल्लाते रहें कि युद्ध नहीं होना चाहिए, चाहे साधु-संन्यासी समझाते रहें कि युद्ध बहुत बुरा है। लेकिन जब तक मनुष्य का मन सप्रेस्ड है, जब तक मनुष्य के मन में दमन है, तब तक युद्ध बंद नहीं हो सकते हैं। तब तक कोई ताकत युद्ध बंद नहीं कर सकेगी। तब तक कलह बंद नहीं हो सकती है। तब तक जीवन का रोज-रोज का जो संघर्ष है, वह बंद नहीं हो सकता है। एक तरफ से हम संघर्ष को बंद करेंगे, दूसरी तरफ से वह निकलने का रास्ता खोज लेगा। क्योंकि भीतर हम उबलते हुए ज्वालामुखी पर बैठे हैं। और उस ज्वालामुखी से हमारा कोई परिचय नहीं है। हम ज्वालामुखी पर अच्छा बढ़िया सोफा लगाकर आराम से बैठे हुए हैं। और नीचे ज्वालामुखी धधक रहा है। और हम अपने सोफे को सजा रहे हैं। डेकोरेट कर रहे हैं अपने मकान को। और नीचे ज्वालामुखी धधक रहा है। हम ऊपर से सजाते रहते हैं, भीतर आग भभक रही है।

इस स्थिति में, उस आग को हम दबाते चले जाएं, तो हम टूटेंगे और अपने को नष्ट करेंगे। आज तक मनुष्य ने यही किया है। क्या आगे भी मनुष्य को यही करना है? या कि हम एक नए मनुष्य को जन्म दे सकते हैं, जिसका मन दमन पर आधारित न हो। लेकिन हम डर जाएंगे। हम कहेंगे, अगर हम दमन न करें अपने मन का तो दमन करने में तो हम कभी पागल होंगे, ठीक है, लेकिन दमन न करें तो इसी वक्त, इसी वक्त विस्फोट हो जाएगा। अगर हम दबाएं न अपने को तो हमारे भीतर तो इतना जहर, इतने सांप-बिच्छू मालूम पड़ते हैं; इतना क्रोध, इतना सेक्स, इतनी वासना, इतना लोभ, इतनीर् ईष्या मालूम पड़ती है--अगर न दबाएं तो हम तो अभी सब निकल पड़ेगा।

फिर क्या होगा?

दबाना नहीं है। लेकिन कुछ और करना है। करना यह है कि मन के ऊपर का जो हिस्सा चेतन है, जो कांशस है, जहां प्रकाश है, उस प्रकाश को मन के उन हिस्सों में भी ले जाना है, जहां अंधकार है। पूरे मन को प्रकाशित कर देना है। पूरे मन में दीया जला देना है--होश का, ज्ञान का। अभी थोड़ी सी जगह में प्रकाश हो रहा है--दीए की ज्योति को और बड़ा करना है, ताकि पूरे मन की तीनों मंजिलें, वह जो थ्री स्टोरीज आदमी है--वह उन तीनों मंजिलों में प्रकाश पहुंच जाए।

सबसे पहला काम प्रकाश पहुंचाना है। जैसे ही प्रकाश पहुंचना शुरू होता है, मन में एक ट्रांसफार्मेशन शुरू हो जाता है। आपको शायद खयाल भी न हो। सूरज निकलता है, सूरज के निकलते ही पृथ्वी पर एक परिवर्तन शुरू हो जाता है। जो कलियां बंद थीं, वे खिलने लगती हैं। जो सुगंध छिपी थी, वह प्रगट होने लगती है। जैसे ही प्रकाश सूरज का पृथ्वी पर उतरता है, सारा प्राण जो सोया हुआ था, वह जागने लगता है। वृक्ष, पौधे, पशु, पक्षी, जो सोए थे, वे उठकर गीत गाने लगते हैं। वे जीवंत हो उठते हैं। सूरज की रोशनी के आते ही पृथ्वी दूसरी हो जाती है। सूरज की रोशनी के हटते ही, अंधकार छाते ही पृथ्वी मूर्च्छित हो जाती है। सब सो जाता है। पौधे, पशु, पक्षी, आदमी सब मूर्च्छित हो जाते हैं। सूरज के उगते ही मूर्च्छा टूटनी शुरू हो जाती है--जागरण आना शुरू हो जाता है, प्रभात हो जाती है।

मन की दो मंजिलों में कभी प्रकाश नहीं पहुंचा है। वहां एकदम गहरी मूर्च्छा है। वहां सब सोया हुआ है। वहां एकदम घना अंधकार है। उस घने अंधकार में सांप-बिच्छुओं ने डेरे डाल लिए हैं। पतंगों ने घर बना लिए हैं। मकड़ियों ने जाले बुन लिए हैं। वहां सब गंदा हो गया है। वहां के द्वार कभी नहीं खुले, वहां बहुत दुर्गंध इकट्ठी हो गई है। और हम ऊपर से दमन करते चले जाते हैं सारे कचरे का वहां। वहां सारा कचरा इकट्ठा हो गया है। मनुष्य का प्राण इससे भारी और बोझिल और मूर्च्छित है। वहां रोशनी ले जानी है। वहां प्रकाश ले जाना है।

प्रकाश ले जाया जा सकता है। उस प्रकाश के ले जाने की विधि का नाम ही धर्म है।

कैसे हम चित्त की गहराइयों में रोशनी ले जा सकें? कैसे वहां प्रकाश पहुंचा सकें कि वहां अंधकार का राज्य समाप्त हो जाए और हमारे सारे प्राण आलोकित हो उठें।

उस प्रकाश के पहुंचते ही चित्त में परिवर्तन होने शुरू हो जाते हैं। उस प्रकाश के पहुंचते ही जो कली थी, वह खिलकर फूल बन जाती है। उस प्रकाश के पहुंचते ही भीतर जो प्राण सोए थे, वे जाग उठते हैं। और जागरण के साथ अंतर शुरू हो जाता है। जागरण ट्रांसफार्मेशन है।

कैसे हम चित्त में ले जाएं जागरण को, होश को, अवेयरनेस को? कैसे हमारे पूरे प्राण जागे हुए हो जाएं? और जिस दिन पूरे प्राण जग जाते हैं, उस दिन प्राणों में एक संबंध स्थापित हो जाता है। फिर मनुष्य तीन हिस्सों में खंडित नहीं रह जाता। फिर वह एक भवन बन जाता है पूरा। और जो मनुष्य एक भवन बन जाता है, उसके भीतर फिर कोई द्वंद्व नहीं, कोई कलह नहीं। उसके भीतर एक शांति स्थापित हो जाती है।

इसलिए सर्वाधिक मूल्यवान जीवन का सूत्रः चित्त के अंधेरे कक्षों में रोशनी के ले जाने का है। उस संबंध में ही आज की सुबह हमें बात करनी है। कैसे हम चित्त में प्रकाश को ले जा सकते हैं।

थोड़ा सा प्रकाश मौजूद है। अगर उतना प्रकाश मौजूद न हो तो फिर हम कुछ भी नहीं कर सकते हैं। लेकिन थोड़ा प्रकाश मौजूद है। हमारे मन का एक कोना, थोड़ा सा दीया जला हुआ है, वहां रोशनी हो रही है। उसी रोशनी में आप मेरी बातें सुन रहे हैं। उसी रोशनी में आप चल रहे हैं। उसी रोशनी में आप उठ रहे हैं, विचार कर रहे हैं, जी रहे हैं। छोटी सी रोशनी में।

इस रोशनी को कैसे बड़ा करें?

इस रोशनी को बड़ा करने के दो उपाय हैं। एक तो--इस रोशनी का अभी हम एक ही प्रयोग कर रहे हैं बाहर के जगत को देखने में। घर के बाहर दीया लिए बाहर की दुनिया को देख रहे हैं। बाहर दुनिया को हमने खूब देखा। इस रोशनी के थोड़े से प्रयोग ने बाहर की दुनिया में बहुत कुछ स्पष्ट कर दिया। इस रोशनी के बाहर के प्रयोग ने साइंस को जन्म दे दिया। हमने पदार्थ के नियम खोज लिए। हमने पदार्थ के भीतर छिपे हुए रहस्य खोज लिए। हमने जीवन के, बाहर के जीवन पर विजय पाने में बड़ी दूर तक सफलता पा ली।

विज्ञान की सारी कथा, इस छोटे से कांशस माइंड का, बाहर के जगत में इम्प्लीमेंटेशन है। बाहर के जगत में प्रयोग है। विज्ञान की सारी कथा इस छोटे से कांशस माइंड की, यह जो छोटा सा चेतन मन है, इसका हमने पदार्थ में प्रयोग किया है। इतनी बड़ी दुनिया खड़ी हो गई विज्ञान की। हम पदार्थ में प्रवेश करते गए, और हमने अणु को और अणु के भी गहरे न्यूट्रान, इलेक्ट्रान को जाकर खोज लिया, बड़ी शक्ति हाथ में आ गई। बड़ी शक्ति हाथ में आ गई।

इसी चेतना का प्रयोग बाहर न करके भीतर भी किया जा सकता है। जिन लोगों ने बाहर प्रयोग किया है, वे अणु तक पहुंच गए। जो आदमी भीतर प्रयोग करता है, वह आत्मा तक पहुंच जाता है। रोशनी यही है, दीया यही है। घर के बाहर रोशनी करते हैं तो रास्ता दिखाई पड़ता है। घर के भीतर करते हैं तो घर के कष्ट दिखाई पड़ते हैं।

ध्यान इस रोशनी को भीतर ले चलने का ही प्रयोग है। आंख बंद करके हम भीतर जागने की कोशिश करते हैं।

एक वैज्ञानिक क्या करता है? वैज्ञानिक बाहर के फेनामिना को, बाहर की घटना को आब्जर्व करता है, निरीक्षण करता है। अपनी प्रयोगशाला में बैठकर, आंखें गड़ाकर, सब तरह से जागकर निरीक्षण करता है, क्या हो रहा है? पानी को उबाल रहा है, गरम कर रहा है तो देख रहा है, कितनी डिग्री पर जाकर पानी गरम होकर भाप बनता है। उसका निरीक्षण कर रहा है, आब्जर्वेशन कर रहा है।

ठीक इसी भांति मन की प्रयोगशाला में द्वार बंद करके, भीतर बैठकर निरीक्षण करना है कि वहां क्या हो रहा है? क्रोध कितनी डिग्री पर जाकर भाप बन जाता है? क्रोध कितनी डिग्री

पर जाकर विस्फोट कर लेता है? क्रोध क्या है? क्रोध की गति क्या है? विचार क्या है? विचार कैसे चलता है? कैसे उठता है, कैसे गिरता है? स्मृति क्या है, मेमोरी क्या है? कैसे स्मृति बनती है? प्रेम क्या है? कैसे जन्मता है? घृणा क्या है? कैसे भीतर उठती है, फैलती है? उसका विष कैसे पूरे प्राणों को भर लेता है? ये बहुत सी घटनाएं भीतर घट रही हैं। इनके प्रति आब्जर्वेशन, भीतर बैठकर--एक वैज्ञानिक जैसे प्रयोगशाला में जांच करता है, खोजता है, वैसे ही इनको भी देखना, जानना और खोजना है।

धर्म आत्मा का विज्ञान है।

मनुष्य को, जो साधक है, अपने मन को एक प्रयोगशाला बनानी है। और वहां निरीक्षण की सारी शक्ति को ले जाकर देखना है कि मन में क्या हो रहा है, मन क्या है? यह मन की प्रोसेस क्या है, यह मन की प्रक्रिया क्या है?

आपके मन में क्रोध उठता है। कभी आपने एकांत कोने में बैठकर देखने की कोशिश की है कि क्या है यह क्रोध? नहीं। आपने दो काम किए होंगे। या तो क्रोध उठा तो जिस पर उठा, उस पर आप टूट पड़े होंगे। और या अगर आप धार्मिक और अच्छे आदमी हैं तो आप क्रोध को पी गए होंगे। बस, ये दो काम किए गए हैं। दोनों ही काम फिजूल हैं।

क्रोध में किसी के ऊपर टूट पड़ने से क्रोध नहीं जाना जा सकता है। क्रोध को पी जाने से भी क्रोध नहीं जाना जा सकता। दोनों ही स्थितियों में निरीक्षण नहीं होता। निरीक्षण का तो अर्थ है...। क्रोध उठे, एक बड़ा अवसर आ गया बहुमूल्य, खुद की शक्ति को जानने का एक कीमती क्षण आ गया। सामान्यतया क्रोध सोया रहता है, अब वह जाग गया। उससे पहचान हो सकती है इस समय। उस समय द्वार बंद कर लें, किसी कोने में बैठ जाएं और आंख बंद करके आब्जर्व करें, निरीक्षण करें, क्या है यह क्रोध? कहां से यह उठता है? क्यों यह उठता है? कैसे यह चित्त को पकड़ लेता, बांध लेता, पागल कर देता है? इस पूरी प्रक्रिया को, इस पूरी प्रोसेस को--क्रोध के जन्म से लेकर क्रोध के युवा होने तक देखें, सिर्फ देखें।

लेकिन देखने में एक कठिनाई है। बचपन से हमें सिखा दिया गया है, क्रोध बुरा है। जिसको हम बुरा मान लेते हैं, उसे देखने को राजी नहीं होते। भूल हो गई है इस बात से। क्रोध बुरा है--इसलिए जो चीज बुरी है, उसको देखें कैसे? उसके प्रति हमारे मन में कंडेमनेशन है, निंदा है। निंदा की वजह से हम देखते नहीं। शत्रु को कोई देखता है ठीक से? शत्रु दिखाई पड़ता है तो हमारी आंखें दूसरी तरफ फिर जाती हैं। शत्रु रास्ते पर मिल जाता है तो हम आंख नीचे करके निकल जाते हैं, या दूसरी गली से निकल जाते हैं। शत्रु को कोई देखना नहीं चाहता। देखता तो केवल उसे है, जो मित्र है। देखता तो केवल उसे है, जिससे हमारा कोई विरोध नहीं है।

तो चित्त के दर्शन में, चित्त के आब्जर्वेशन में हमारी शिक्षाओं ने, हमारी तथाकथित नैतिक शिक्षाओं ने, मारल टीचिंग्स ने बड़ा उपद्रव खड़ा कर दिया है। क्रोध बुरा है, शत्रु है--फिर उसे देखेंगे कैसे?

मैं आपसे निवेदन करता हूं, आपके चित्त में कुछ भी आपका शत्रु नहीं है। सब आपका मित्र है। और अगर आप पाते हैं कि कोई शत्रु है, तो वह केवल इस बात का सबूत है कि आप उसका सम्यक उपयोग करने में असमर्थ रहे हैं। उसका ठीक-ठीक उपयोग आप नहीं कर सके, इसलिए वह शत्रु मालूम पड़ रहा है। जिस दिन आप उसे पूरा जानेंगे और पहचानेंगे, आप हैरान हो जाएंगे। आप पाएंगे, ये तो मेरी शक्तियां हैं। शत्रु इनमें कोई भी नहीं। लेकिन हम अपरिचित होते हैं मित्र से भी तो वह शत्रु मालूम पड़ता है। परिचित होते हैं तो वह मित्र मालूम पड़ता है। परिचित होना है, पूरी तरह से पहचान करनी है--भीतर क्या है?

तो एक तो निरीक्षण के लिए यह भावना छोड़ देनी एकदम आवश्यक है कि कोई चीज बुरी है, कोई चीज अच्छी है। अभी तो हम अपने चित्त से परिचित नहीं। हमें पूरे चित्त से ही परिचित होना है--चाहे जो भी हो। अच्छा हो या बुरा, हमें पूरे, टोटल माइंड से एक दफे परिचित हो जाना जरूरी है।

तो क्रोध को, जब उठे तो निरीक्षण करें। और निरीक्षण करेंगे तो हैरान हो जाएंगे। निरीक्षण करते ही बहुत अदभुत तथ्य दिखाई पड़ने शुरू हो जाएंगे। लेकिन हमने कभी निरीक्षण किया नहीं है। या तो हम क्रोध से लड़े हैं और या क्रोध से हार गए और क्रोध के वश हो गए हैं। ये दोनों स्थितियां शुभ नहीं हैं। ये दोनों स्थितियां साधना में ले जाने वाली नहीं हैं।

तीसरी एक स्थिति है निरीक्षण की। न तो क्रोध का भोग, न दमन बल्कि एक तीसरा मार्ग, निरीक्षण। जो भी चित्त में उठे, उसका निरीक्षण। उसके प्रति जागना, उसके प्रति पूरी तरह अवेअर होना। क्या होगा इस तरह जागने से? इस तरह जागने से दो बातें होंगी। एक तो क्रोध के प्रति जैसे ही जागेंगे, वैसे ही आप पाएंगे, क्रोध चेतन मन में पैदा नहीं होता। क्रोध चेतन मन के नीचे की मंजिल से आता है। चेतन मन ने तो बहुत बार निर्णय किए हैं कि मैं क्रोध नहीं करूंगा, लेकिन सब निर्णय रखे रह जाते हैं। जब कोई एक धक्का देता है, क्रोध खड़ा हो जाता है। पता नहीं चलता कि मैंने निर्णय किया था, कसम खाई थी, व्रत लिया था--क्रोध नहीं करना है। मेरे निर्णय, मेरी कसमें, कहां गईं? वे जिस मन ने ली थीं--क्रोध वहां से नहीं आ रहा, क्रोध बहुत नीचे से आ रहा है। उस मन को आपके व्रत का कोई भी पता नहीं है। उस मन को कोई पता ही नहीं है आपके व्रत का। क्या आप मंदिर में जाकर और व्रत ले लिए हैं कि अब मैं क्रोध नहीं करूंगा?

जिसने यह कसम खाई है, वह मन दूसरा है। और जिस मन में क्रोध पैदा होता है, वह मन का बिलकुल दूसरा हिस्सा है। उस हिस्से को कोई खबर नहीं है। सांझ आप तय करके सोते हैं, कल सुबह चार बजे उठूंगा। सुबह चार बजे कोई आपके भीतर कहता है, सोए रहो, कोई उठने की जल्दी नहीं है। आज बहुत सर्दी है, फिर कल देखना। आप सो जाते हैं। सुबह उठकर आप पछताते हैं कि मैं उठा क्यों नहीं! मैंने तो तय किया था कि चार बजे उठना है। मैं उठा क्यों नहीं?

आप निरीक्षण करेंगे तो पता चलेगा, जिस मन ने यह तय किया था, वह मन सोया हुआ था चार बजे और जिस मन ने यह खबर दी कि सोए रहो, वह दूसरा मन था। उसको आपके

निर्णय का कोई भी पता नहीं था। अन्यथा यह कैसे हो सकता था। जिस मन ने निर्णय किया था, वही मन कैसे निर्णय तोड़ सकता था? और फिर सुबह वही मन कैसे पछता सकता था?

आदमी उलझ जाता है, क्योंकि उसे इसका कोई पता नहीं कि मन के अलग-अलग हिस्से निर्णय ले रहे हैं। जब आप निरीक्षण करेंगे क्रोध का, प्रेम का, घृणा का तो आप पाएंगे कि चेतन मन, कांशस माइंड से वे आते ही नहीं। वे तो बहुत नीचे गहरे अनकांशस से आते हैं। तो उनके सूत्र को पकड़कर अगर आप खोज करेंगे, ये कहां से पैदा होते हैं, कहां से पैदा होते हैं...।

अगर हम एक वृक्ष की शाखाओं को पकड़कर खोज करने निकलेंगे, यह वृक्ष कहां से पैदा होता है, तो आज नहीं कल, आपको जमीन खोदनी पड़ेगी और जड़ों तक पहुंचना पड़ेगा। आपकी खोज जारी रहेगी तो आपको अन-अर्थ करना पड़ेगा, भूमि अलग हटानी पड़ेगी और तब आप पाएंगे कि दिखाई नहीं पड़ती थीं जड़ें--वृक्ष वहां से आते हैं।

तो जब आप क्रोध की, प्रेम की,र् ईष्या की खोज में निकलेंगे, अनुसरण करेंगे तो आप धीरे-धीरे-धीरे पाएंगे कि आप कांशस माइंड से हटकर अनकांशस में पहुंचने शुरू हो गए। और इसी पहुंचने में रोशनी पहुंचनी शुरू हो जाएगी, क्योंकि आपका जो मन निरीक्षण करता है, वही रोशनी है। तो जब आप पीछा करेंगे--एक आदमी अगर अपने घर में एक चोर का पीछा करे दीया लेकर तो चोर जहां छिपा होगा अंधेरे कोने में, वहां खुद भी पहुंच जाएगा और साथ में दीया भी पहुंच जाएगा।

हमारे चेतन मन में जो-जो वृत्तियां उठती हैं, अगर हम एक-एक वृत्ति को पकड़कर उसका पीछा करें तो वह वृत्ति जहां से जन्मती है, उस अंधेरे कमरे में हमको पहुंच जाना पड़ेगा। अनकांशस माइंड में पहुंचने का और कोई न रास्ता रहा है, न हो सकता है। एक-एक वृत्ति को हमें पकड़ लेना है।

एक कमल का फूल एक तालाब पर खिला है। फूल ऊपर दिखाई पड़ता है। उस फूल के नीचे--कहां से वह फूल आया है, कहां उसकी जड़ें हैं, वह कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता। सिर्फ फूल दिखाई पड़ता है। अगर इस फूल का हम अनुसरण करें, खोज करें, कहां से यह निकला है तो हम धीरे-धीरे उस फूल की डंडी को पकड़कर वहां पहुंच जाएंगे, नीचे कीचड़ में, जहां उसकी जड़ें छिपी हैं।

क्रोध तो ऊपर आया हुआ फूल है। प्रेम भी ऊपर आया हुआ फूल है।र् ईष्या भी ऊपर आया हुआ फूल है। इसको हम पकड़ लें और इसके पीछे चलना शुरू करें। इसके पीछे उतरते चलें, उतरते चलें तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे हम वहां पहुंच जाएंगे, जहां इसकी जड़ें हैं। जहां से यह पैदा हुआ है।

तो मनुष्य अगर अपनी वृत्तियों का अनुसरण करे, दमन नहीं। चित्त वृत्ति का दमन नहीं--चित्त वृत्ति का अनुसरण, चित्त वृत्ति का पीछा, चित्त वृत्ति के पीछे-पीछे जाए तो धीरे-धीरे,

धीरे-धीरे वह अपने गहरे अचेतन मन के तलों तक पहुंच जाएगा। और उसके साथ ही, निरीक्षण के साथ वह रोशनी पहुंच जाएगी, जो देखती है।

और आपको पता है कि अगर आप जड़ तक पहुंच जाएं किसी चीज के तो कितनी आसान बात है। अगर आपको लगता हो यह फूल अवांछनीय है--यह नहीं चाहिए, यह दुर्गंध फैलाता है, कांटे वाला है तो एक झटका और फूल खतम हो गया हमेशा के लिए। लेकिन ऊपर से आप फूल को काटते रहें रोज, हजार बार काटें, आप जितनी बार काटेंगे, उतनी बार एक डंडी की जगह दो डंडियां निकल आएंगी। अब दो फूल खिलेंगे, पहले एक ही फूल खिला था। अब इन दो को काटेंगे और चार डंडियां निकल आएंगी। और हम यही कर रहे हैं। ऊपर से फूलों को काट रहे हैं फूल बढ़ते चले जाते हैं। जितने फूल बढ़ते हैं, हमारी काटने की बेचैनी बढ़ती चली जाती है। कल एक बार क्रोध किया था, उसको काट दिया ऊपर से। आज दो बार हो गया है, उसको काट दिया। परसों चार बार हो गया। रोज बढ़ता जाता है रोग! क्योंकि जिसको हम काटना समझते हैं, वह कलम करना है। वह सहायता पहुंचानी है वृक्ष को। जो माली है, वह जानता है कि वृक्ष को सहायता पहुंचानी हो, एक डंडी काट दो। जहां से डंडी काटी गई, वहां से दो डंडियां पैदा हो जाती हैं। हम कलम कर रहे हैं अपने मन की। लेकिन जो आदमी पीछे जाएगा और जड़ों तक पहुंच जाएगा--अगर उसे लगता है कि जो फूल आया है ऊपर, वह वांछनीय नहीं है। तो एक छोटा सा हल्का धक्का और जड़ें खतम हो जाती हैं और फिर फूल कभी भी नहीं आते।

चित्त को बदलना हो--ऊपर से जो कलम चलती रहती है नैतिक आदमी की, उससे कभी कोई आदमी नहीं बदलता। नैतिक आदमी ऊपर से कलम करता रहता है। और इसलिए मुसीबत में पड़ता चला जाता है। धार्मिक आदमी ऊपर से कलम नहीं करता--अपरूट करता है, जड़ों को उखाड़कर फेंक देता है। यह काम एक ही बार में हो जाता है और कलम करने का काम जिंदगीभर चलता है। यह काम एक ही बार में हो जाता है--जड़ उखड़ जाती है, बात खतम हो जाती है।

लेकिन अगर हम ऊपर ही ऊपर सारा उपद्रव करते रहें तो हम परेशान भी बहुत हो जाते हैं--मामले बदलते भी नहीं, आदमी वही का वही बना रहता है। आप खोजें अपने भीतर? आप सालभर पहले जो आदमी थे, वही आदमी आप आज भी हैं? सालभर में आपने कितनी कलम नहीं की होगी? न मालूम क्या-क्या छोड़ा होगा--यह किया होगा, वह किया होगा। आप अपने तीस साल लौटकर देखें, आप भीतर पाएंगे, आप वही के वही आदमी हैं। पूरी जिंदगी आदमी करीब-करीब वही का वही बना रहता है। ऊपर थोड़े बहुत फर्क हो जाते हैं, लेकिन भीतर कोई फर्क नहीं होता है। क्योंकि भीतर हम कभी पहुंचते नहीं, फर्क होगा कैसे? जड़ों तक हम कभी जाते नहीं, तो फर्क होगा कैसे?

यह, यह जो जड़ तक पहुंचने का सूत्र है, वह है वृत्तियों का निरीक्षण, उनका पीछा, उनका अनुगमन। चाहें तो इसे ही मेडीटेशन कहें, चाहें तो इसे ही ध्यान कहें। चाहें इसे ही कुछ

और नाम दें। लेकिन एक चीज को पकड़कर भीतर प्रवेश करना है। किसी चीज के सहारे ही यह प्रवेश हो सकेगा।

तो हर आदमी का अपना कोई चीफ कैरेक्टर होता है। हर आदमी की कोई खास बात होती है--क्रोध है, घृणा है, द्वेष है,र् ईष्या है, अहंकार है--कोई भी एक। हर आदमी की एक केंद्रीय वृत्ति होती है, जिसके इर्द-गिर्द सारी वृत्तियां घूमती रहती हैं। तो अपने चीफ कैरेक्टर को, अपनी प्रधान वृत्ति को खोज लें और फिर उसका अनुसरण करें, फिर उसके पीछे उतरना शुरू करें। फिर उसके जितने गहराई तक जा सकें, उसके साथ जाने की कोशिश करें। और चलने दें यह कोशिश उस दिन तक, जिस दिन तक आप वहां न पहुंच जाएं, जिसके आगे फिर कोई और गति नहीं है। जहां पहुंचकर अंतिम बिंदु आ गया विराम का, जड़ें आर् गईं। फिर किसी से आपको पूछना नहीं पड़ेगा कि मैं क्या करूं इस फूल को अलग करने के लिए। इसर् ईष्या को अलग करने के लिए मैं क्या करूं। इस क्रोध को अलग करने के लिए मैं क्या करूं। यह पूछना नहीं पड़ेगा। आप हंसेंगे और बात खतम हो जाएगी। वह एक हल्का सा धक्का, सारी बात बदल जाती है। लेकिन उस हल्के से धक्के पर पहुंचने के पहले चित्त का पीछा करना पड़ता है। और यह पीछा एक अर्थ में बहुत आरडुअस, बहुत कठिन भी है। क्योंकि बहुत डर लगता है इस पीछा करने में। क्योंकि हमने अपनी-अपनी एक शकल बना रखी है। इस पीछा करने में वह शकल टूटती है। जितना हम पीछा करते हैं, उतनी ही शकल टूटती है।

एक आदमी कहता है कि मैं ब्रह्मचारी हूं। अब अगर वह अपने सेक्स का पीछा करेगा, तो यह कल्पना उसको छोड़ देनी पड़ेगी कि मैं ब्रह्मचारी हूं। जैसे वह अपनी वासना के पीछे, काम के पीछे, सेक्स के पीछे यात्रा करेगा, वैसे-वैसे उसे पता चलेगा कि मैं कितना सेक्सुअल हूं, मैं कितना कामवासना से भरा हुआ हूं। कहां है ब्रह्मचर्य! बल्कि जैसे-जैसे भीतर उतरेगा, उसको पता चलेगा, जिसको मैं ब्रह्मचर्य कहता था, वह सब सेक्सुअलिटि थी। एक स्त्री को देखकर मैं आंख बंद कर लेता था, वह आंख बंद कर लेना ब्रह्मचर्य नहीं था, आंख बंद करना सेक्स था। नहीं तो आंख बंद करने की कोई जरूरत न थी।

एक साध्वी से मैं मिलता था। समुद्र की हवाएं चलती थीं। अब समुद्र की हवाओं को कुछ भी पता नहीं कि एक स्त्री बैठी है, एक पुरुष बैठा है। समुद्र की हवाओं ने मेरे चादर को उड़ाकर उन साध्वी को स्पर्श करा दिया। वे एकदम बेचैन होकर घबड़ाईं। पुरुष का वस्त्र नहीं छूना चाहिए! वह ब्रह्मचारिणी थीं। अब समुद्र की निर्दोष हवाएं, उन्हें कोई पता नहीं कि कोई साध्वी बैठी है, चादर उड़ाकर इसको स्पर्श नहीं कराना चाहिए। वे बहुत घबड़ाईं। मैंने उनसे पूछा, आप घबड़ा गई हैं? उन्होंने कहा, हां, पुरुष का वस्त्र हमें नहीं छूना चाहिए। मैंने उनसे कहा, वस्त्र भी पुरुष और स्त्री हो सकते हैं? वस्त्र भी! यह कैसा ब्रह्मचर्य है, जो वस्त्रों में भी सेक्स को देखता है! क्योंकि वस्त्र अगर स्त्री-पुरुष हैं तो वस्त्रों में सेक्स का दर्शन शुरू हो गया। वस्त्रों ने भी लैंगिक रूप ले लिया। वस्त्रों में भी सेक्स का फर्क हो गया। यह कैसा ब्रह्मचर्य है जो वस्त्रों में भी स्त्री और पुरुष को देखता है!

मैंने उनसे निवेदन किया--बुरा लगेगा, उनसे मैंने कहा, लेकिन आपको पता नहीं ब्रह्मचर्य के नाम पर आप और भी कामुक हो गई हैं। यह तो कामोत्तेजना की हद हो गई कि वस्त्र के स्पर्श से--और भय हो! यह भय इस बात की सूचना है कि भीतर पुरुष के स्पर्श को नहीं करना है, इस बात को इतना दबाया है--पुरुष के स्पर्श का स्वाभाविक भाव हो सकता है--उसे इतना दबाया है, इतना दबाया है कि आज पुरुष का वस्त्र भी छू जाए तो वह टेंपटेशन बन गया, वह प्रेरणा बन गई, वह घबड़ाहट बन गई।

तो अगर अब ऐसा ब्रह्मचर्य का व्रत लिया हुआ आदमी या सोचता हुआ कि मैं ब्रह्मचर्य को उपलब्ध हुआ हूं--अगर अपने ब्रह्मचर्य के थोड़े पीछे उतरेगा तो ठीक ब्रह्मचर्य के पीछे पाएगा कि सेक्स खड़ा हुआ है। तो बड़ी घबड़ाहट होगी, वह वापस लौट आएगा कि ऐसा पीछे जाने में कोई फायदा नहीं। यहां पीछे जाने से तो उलटी बातें पैदा होती हैं।

एक बहुत बड़े साधु हैं, बड? ख्यातिनाम। किसी ने मुझे आकर कहा कि कोई पैसा-रुपया उनके सामने ले जाए तो वे सिर फेर लेते हैं, आंख बंद कर लेते हैं। तो उन्होंने बड़ी तारीफ के लिए मुझसे कहा था कि वे बड़े परम-त्यागी हैं, रुपए को देखकर एकदम आंख फेर लेते हैं। मैंने उनसे कहा, रुपया इतना निर्दोष है, उसे देखकर आंख फेरना, बड़ी बीमारी का लक्षण है। रुपए में ऐसा क्या है कि आंख फेरी जाए? रुपया, रुपए की जगह है, आंख फेरने की जरूरत? और आंख फेरनी पड़ती है तो रुपए में रस है। नहीं तो आंख फेरने की जरूरत नहीं पड़ेगी। और रुपए में बहुत रस है।

एक आदमी को रुपया देखकर लार टपक जाती है। उसको हम कहते हैं, इसको रस है। और एक आदमी आंख फेर लेता है, इसको भी लार टपक जाने का भय है, इसलिए आंख फेरता है। नहीं तो आंख फेरने की क्या जरूरत थी? रुपए की ताकत कहां कि तुम्हारी आंख को फेरने के लिए मजबूर करे? बड़े कमजोर हैं कि रुपया देखते हैं तो आंख फेरनी पड़ती है।

तो अब यह जो त्याग है रुपये का, अपरिग्रह है, अगर इसका यह आदमी पीछा करेगा तो इसे पता चलेगा, इसमें रुपए की आसक्ति छिपी हुई है, रुपए के प्रति अटेचमेंट है। यह डिटेचमेंट, यह अनासक्ति, उसी आसक्ति का छिपावा है, भुलावा है और कुछ भी नहीं। यह सेल्फ-डिसेप्शन है और कुछ भी नहीं।

अगर हम अपनी वृत्तियों का पीछा करेंगे तो वह जो सेल्फ-इमेज हमने खड़ी कर रखी है कि मैं यह हूं--त्यागी हूं--यह हूं, वह हूं, हमको पता चलेगा, वह झूठी है वह बात। इस झूठ को देखने की हिम्मत होनी चाहिए। तो ही कोई आदमी वृत्तियों का अनुसरण कर सकता है। और अगर इस झूठ को देखने का साहस और करेज नहीं है तो फिर आप अपने ऊपर के भवन में ही टहलते रहिए--नीचे आप नहीं जा सकते हैं। और नीचे बिना जाए, आपकी जिंदगी में कोई परिवर्तन संभव नहीं है। रत्तीभर परिवर्तन संभव नहीं है। फिर आप ऊपर ही डेकोरेट करते रहें, सजावट करते रहें--नीचे का ज्वालामुखी जलता रहेगा। और रोज, वक्त-बेवक्त खबर देता रहेगा अपनी कि अब मैं आता हूं, अब मैं आता हूं। और आपके प्राण कंपते रहेंगे कि वह कहीं आ न जाए, कहीं आ न जाए।

इसी कंपन में, इसी ट्रेंबलिंग में पूरी जिंदगी बीत जाती है कि कहीं भीतर से वह आ न जाए। और हमें सब पता है कि भीतर मौजूद है, और प्राण कंप रहे हैं। पूरे वक्त प्राण कंप रहे हैं, पूरे वक्त हम डरे हुए हैं, पूरे वक्त हम घबड़ाए हुए हैं। यह जो सारी स्थिति है, यह बाधा बनती है। इसलिए आरडुअस तो है।

तो मैं तो वृत्तियों के अनुसरण को ही तप कहता हूं, तपश्चर्या कहता हूं। धूप में खड़े होने को नहीं, उपवास करने को नहीं; बच्चों जैसी बातें हैं, कोई भी कर सकता है। थोड़े अभ्यास की भर जरूरत है। और रोज-रोज करता रहे तो अभ्यास धीरे-धीरे पूरा हो ही जाता है।

एक अदालत में एक मुकदमा चला। एक आदमी ने अपनी पत्नी को तलाक देने की दरख्वास्त की थी। मजिस्ट्रेट ने उससे पूछा, क्या कारण आ गया है पत्नी को छोड़ देने का? उसने कहा, पत्नी में एक खराब आदत हमेशा से रही है। यह मेरे ऊपर चीजें फेंक-फेंककर निशाना लगाती है। उस मजिस्ट्रेट ने पूछा, कितने दिन हुए शादी हुए? उसने कहा, बीस वर्ष। उसने कहा, पागल! लेकिन बीस वर्ष तुम कहां रहे? उस आदमी ने कहा, पहले इसका निशाना ठीक नहीं लगता था, अब अभ्यास से ठीक लगने लगा। बीस साल के अभ्यास से अब इसका निशाना चूकता ही नहीं। अब मैं घबड़ा गया हूं। पहले निशाना अक्सर चूकता था, बात चलती थी। अभ्यास से निशाना अब बिलकुल ठीक लगने लगा है।

तो निरंतर--निरंतर हम एक झूठ का अभ्यास करते रहे हैं--मैं यह हूं, मैं वह हूं; मैं यह हूं, मैं वह हूं और भीतर-भीतर धक्के मारती रहे कोई चीज, तो अभ्यास से हम इस थोथे पाखंड को थोड़ा बहुत सम्हाल भी ले सकते हैं। एक आदमी जिसके भीतर आंसू फूट पड़ने को हों, वह भी अभ्यास से मुस्कुराता हुआ बैठा रह सकता है।

अक्सर हम ऐसा करते हैं। आंसू होते हैं भीतर, ऊपर हम मुस्कुराते हैं। सिर्फ इसलिए कि भीतर के आंसू किसी को दिखाई न पड़ें--मुस्कुराते रहते हैं। भीतर होता है दुख, ऊपर बड़े प्रसन्न मालूम पड़ते हैं। भीतर होती है पीड़ा, ऊपर ऐसे मालूम पड़ते हैं कि बड़े खुश हैं, बड़े सुखी हैं। तो हम भीतर के विरोध में ऊपर कुछ क्वालिटीज चिपका लेते हैं, कुछ गुण चिपका लेते हैं।

लेकिन ध्यान रहे कि अक्सर जो गुण हम ऊपर से चिपकाते हैं, ठीक विरोधी गुण के सूचक होते हैं वे। भीतर कोई विरोधी चीज मौजूद होती है, अन्यथा इसको चिपकाने की कोई जरूरत नहीं थी।

जो आदमी ब्रह्मचर्य चिपका लेता है ऊपर, इसके भीतर गहरी सेक्सुअलिटि होती है। नहीं तो इसे ब्रह्मचर्य चिपकाने की कोई जरूरत न थी। जो आदमी अपरिग्रह, नान-अटेचमेंट चिपका लेता है अपने ऊपर, इसके भीतर बहुत गहरा परिग्रह, बहुत गहरा अटेचमेंट है। ऐसे हमारे भीतर जो नहीं है, उसको ही हम ऊपर चिपका लेते हैं। और इस ऊपर चिपकाए हुए झूठे कागजी फूलों से हमारा व्यक्तित्व बनता है। इस व्यक्तित्व को टूटने का डर है। जैसे ही आप भीतर प्रवेश करेंगे, यह इमेज, यह प्रतिमा तोड़नी पड़ेगी। खुद की प्रतिमा तोड़ने के लिए जो तैयार है, वही साधक है और कोई साधक नहीं है।

वही यात्रा कर सकता है सत्य की, जो इस बात को हिम्मत से जानने को तैयार है कि कुछ भी हो, जो सच्चाई है उसे मैं जानना चाहता हूं। चाहे मेरे सारे फूल गिर जाएं, मेरी सारी सजावट गिर जाए, मेरा सारा सौंदर्य उखड़ जाए; लेकिन जो मन है, चाहे वह कितना ही अग्ली हो, मैं उसको देखने के लिए तैयार हूं।

एक बार एक बहुत अदभुत घटना घटी थी। इंद्र ने तीन ऋषियों को स्वर्ग में आमंत्रित किया था। उन तीन ऋषियों की तपश्चर्या की खबर सारी पृथ्वी पर फैल गई थी। इंद्र ने स्वर्ग की सबसे सुंदरी अप्सरा उर्वशी को कहा, इन तीन ऋषियों के मन को किसी भी भांति विचलित करना है। उर्वशी ने कहा, कठिन नहीं है यह काम। ऋषि-मुनि बहुत जल्दी विचलित हो जाते हैं। यह हो सकेगा। क्योंकि जो लोग स्त्रियों से दूर-दूर भागते हैं, उनके मन में स्त्रियों का गहरा आकर्षण है। जल्दी हो सकेगी यह बात। अगर वेश्यालय में पड़े किसी आदमी को विचलित करना होता तो बहुत कठिन था। क्योंकि वह स्त्रियों से इतना परिचित है कि उसे विचलित करना थोड़ा मुश्किल है। लेकिन ऋषि-मुनि हैं, ये तो बेचारे जल्दी ही मुश्किल में पड़ सकते हैं।

निमंत्रण दे दिया गया। स्वर्ग का निमंत्रण था। ऋषि-मुनि भी इनकार न कर सके। क्योंकि ऋषि-मुनि सारी कोशिश ही स्वर्ग पहुंचने की करते हैं और कोशिश ही क्या है? निमंत्रण पाकर बहुत प्रसन्न हुए। बड़ा सम्मान था यह। इंद्र का जन्मदिन था और उन तीन को ही बुलाया गया था। और उनके जितने कांपटीटर ऋषि-मुनि थे, वे नहीं बुलाए गए थे, इससे बड़ी प्रसन्नता थी। वे काफी खुश हुए।

वे गए। सब तरह से सज-धजकर गए। ऋषि-मुनियों की भी अपनी सज-धज होती है। आप पहचान नहीं पाते, यह दूसरी बात है, क्योंकि आपकी सज-धज दूसरे तरह की होती है। तरह का फर्क होता है, सज-धज में कोई भेद नहीं होता। वे परिपूर्ण तैयारी से, पूरे ऋषि-मुनि बनकर वहां उपस्थित हो गए। उर्वशी भी उस दिन तैयार हुई थी। और जितनी उन दिनों प्रसाधन की, जितनी भी सुंदर होने की--जितने भी एक्सपर्ट होंगे स्वर्ग में, जितने विशेषज्ञ थे, सबने मेहनत की थी। उर्वशी इतनी सुंदर दिखाई पड़ी कि खुद इंद्र मुश्किल में पड़ गया। उसे कल्पना न थी कि उर्वशी इतनी सुंदर हो सकती है!

उर्वशी का नृत्य शुरू हुआ। घंटेभर में ही, मंत्रमुग्ध वे सारे लोग देखते रह गए। कभी परिचित न थे इतने सुंदर नृत्य से, इतने मनो-मुग्धकारी। फिर उर्वशी ने, जब रात गहरी हो गई, तो अपने आभूषण निकालकर फेंक दिए। आभूषण शरीर को सुंदर करते हैं। लेकिन आभूषण-रहित शरीर का भी अपना एक और ही सौंदर्य है। आभूषण सुंदर भी करते हैं, लेकिन शरीर को बहुत जगह छिपा भी लेते हैं। आभूषण फेंककर उसने वस्त्र भी फेंकने शुरू कर दिए।

एक ऋषि घबड़ाया और जोर से चिल्लाया रुको, ठहरो! उर्वशी यह मर्यादा का उल्लंघन है। वस्त्र नहीं निकाल सकती हो। लेकिन दूसरे दो ऋषियों ने कहा, मित्र, अगर आप घबड़ा गए हों तो आंखें बंद कर लें, नृत्य बंद नहीं होगा। नृत्य को आप कैसे रोक सकते हैं? और

किसी को वस्त्र निकालना हो तो भी आप कैसे रोक सकते हैं? आपका हक और अधिकार क्या है? एक हक आपका जरूर है कि आप आंख बंद कर लें। नृत्य चलेगा। और उन्होंने कहा, उर्वशी नृत्य चलने दो।

नृत्य चला। पहले ऋषि ने आंखें बंद कर लीं। लेकिन उस बेचारे को पता नहीं था कि खुली आंख--फिर भी गनीमत थी, बंद आंख--और भी मुश्किल में डाल दी। आंख बंद करने से कहीं उर्वशियां दिखना बंद होती हैं? आंख बंद करने से कुछ भी चीज दिखनी बंद होती है क्या?

आंख बंद होने से उर्वशी और सुंदर दिखाई पड़ने लगी। सपने सुंदर होते हैं जागरण से ज्यादा। और सुंदर होकर मन को दिखाई पड़ने लगी। और मन भीतर से धक्के देने लगा ऋषि को कि आंख खोलो। आंख खुली थी तो कम से कम यह उपद्रव नहीं था। मन कहने लगा, आंख खोलो। वह पीछे के अनकांशस हिस्से कहने लगे, आंख खोलो। पता नहीं उर्वशी ने और भी वस्त्र फेंक दिए हों, आंख खोलो। और यह चेतन मन कहने लगा, आंख कैसे खोली जा सकती है? हाथ-पैर कंपने लगे। आंख को और जोर से बंद करना जरूरी हो गया। बड़ी ताकत, बड़ी मेहनत उस ऋषि पर पड़ने लगी। वह बड़ी बेचैनी में पड़ गया। बड़ी मुश्किल में पड़ गया।

नृत्य थोड़ा आगे गया। उर्वशी ने और भी वस्त्र फेंक दिए, वह करीब-करीब नग्न हो गई। एक ही वस्त्र उसके शरीर पर रह गया। दूसरा ऋषि चिल्लाया, अब हद हो गई, यह तो अश्लीलता है। बंद करो, यह नृत्य अब नहीं देखा जा सकता।

पहले ऋषि ने कहा, मित्र, भूल गए, हमने पहले ऋषि से क्या कहा था? तीसरे ऋषि ने कहा, अब अपनी आंख आप भी बंद कर लो। नृत्य तो चलेगा। नृत्य को रोकने का हक किसे है? आप अपनी आंख बंद कर ले सकते हैं।

दूसरे ऋषि को भी आंख बंद कर लेनी पड़ी। नृत्य आगे चलता रहा। आंख बंद करते ही दूसरे ऋषि को पता चला कि कम से कम आंख खुली थी तो उर्वशी एक वस्त्र पहने थी। आंख बंद करते ही ऋषि के मन ने उस वस्त्र को भी निकालकर अलग कर दिया। बहुत घबड़ाया। उर्वशी--आंख बंद थी, लेकिन नग्न खड़ी थी। जिससे बचने को आंख बंद की थी, वही सामने आ गया था।

हमेशा यही होता है। जिससे बचने को हम आंख बंद करते हैं, वही सामने आ जाता है। आएगा ही। क्योंकि आंख बंद करने में हमने इतना रस जाहिर किया है कि रस निमंत्रण हो गया। आना जरूरी है उसका। दूसरा ऋषि भी कंप रहा है, घबड़ा रहा है।

उर्वशी ने अंतिम वस्त्र भी फेंक दिया। सोचा था अंतिम वस्त्र फेंकते ही तीसरा ऋषि भी घबड़ा जाएगा। लेकिन उर्वशी भूल में थी। वस्त्र फेंक दिया गया। तीसरा ऋषि देखता रहा, देखता रहा। उर्वशी अब घबड़ाई। अब उसके पास फेंकने को कुछ भी न बचा था। अब और नग्न होना असंभव था। अब कुछ था ही नहीं। अब वह नग्न, और सीधी, और साफ खड़ी थी। अब और उघाड़ने को कुछ बाकी न बचा था। और यह ऋषि देखे ही चला जा रहा था।

उस ऋषि ने उर्वशी को थका और घबड़ाया हुआ देखकर कहा, और कुछ फेंकना हो तो फेंक दो। अगर यह चमड़ी फेंकनी हो तो चमड़ी फेंक दो। इस केंचुल को भी उतार डालो। आज मैं देखने को ही खड़ा हूं कि आखिर में है क्या? मैं पूरा ही देखने को आज आ गया हूं।
उर्वशी उसके पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा, फिर मैं आपसे हार गई। क्योंकि जो पूरा ही देखने को राजी है, वह आखिरी में पा ही लेगा कि कुछ भी नहीं है। जो पूरा ही देखने को राजी है, वह जान ही लेगा कि कुछ भी नहीं है। जो पूरा देखने के पहले रुक जाता है, उसका रस भी भीतर रुक जाता है कि शायद कुछ शेष रह गया, उसे और जान लेता। और वह जो शेष रह गया है, वही उसके प्राणों की जकड़ हो जाती है। अब आपको हराने का मेरे पास कोई उपाय नहीं। मैं हार गई।
उर्वशी पैर पर गिर पड़ी। वह ऋषि नहीं हराया जा सका। क्यों? क्योंकि वह अंत तक देखने को तैयारी और साहस किया।
चित्त की वृत्तियां भी उर्वशियों की भांति हैं। जो उनको पूरा, उनकी पूरी नग्नता में, उनकी पूरी नेकेडनेस में देखने को तैयार हो जाता है, उनके सब वस्त्र उतारकर--वे चित्त की वृत्तियां भी पैरों पर गिर जाती हैं और क्षमा मांग लेती हैं कि अब हम हार गए।
लेकिन जो चित्त की वृत्तियों को छिपा लेता है, वस्त्रों में ढांक देता है, आंख बंद कर लेता है, वह हार जाता है वृत्तियों से। वृत्तियों से वही जीतता है, जो वृत्तियों को पूरा देखने के लिए तैयार और तत्पर है।

यह तैयारी निरीक्षण की, जागरण की--वृत्तियों को उनकी समग्रता में, उनकी पूर्णता में ही--जीवन को बदलने, नया करने, सत्य की ओर आंखें खोलने, जीवन की जो जड़ें हैं, उनको पहचानने का मार्ग है। इसका साहस चाहिए।

और साहस का एक ही अर्थ है: अपनी हमने जो प्रतिमा बना रखी है, स्वयं को हम जो समझे हुए बैठे हैं, और समझा रहे हैं कि हम हैं--उसे गिर जाने का, उसकी ईंटें खिसक जाने का, उसके भवन के मिट जाने का हम में बल चाहिए कि हम उसे गिरता हुआ देख सकें। और पुराना चर्च गिरे तो ही फिर नया चर्च बन सकता है।

मैं फिर से वह कहानी, जिससे मैंने तीन दिनों की सुबह की चर्चाएं शुरू की थीं, दोहरा देता हूं।

एक पुराना चर्च था। गिरने को हो आया था। हवा के झोंके चलते थे तो उसकी दीवालें कंपती थीं और पलस्तर गिरता था। उसके भीतर खड़े होकर प्रार्थना करना असंभव था। प्रार्थना दूर, उसके निकट से निकलना असंभव था। खतरा था, वह कभी भी गिर जाए और प्राण ले ले। पुरानी चीजों का होना, हमेशा खतरा है, वे कभी भी गिर सकती हैं और प्राण ले सकती हैं।

फिर चर्च की कमेटी बैठी और उसने निर्णय किया। उसने चार प्रस्ताव पास किए--एक, कि पुराना चर्च गिरा देना है। दो, कि नया चर्च बनाना है। तीन, कि नए चर्च को पुराने चर्च की ईंटों, पत्थरों और सामान से ही बनाना है। और चार, कि जब तक नया चर्च न बन जाए, तब तक पुराना चर्च नहीं गिराना है।

पहले दो प्रस्ताव तो ठीक। लेकिन पिछले दो प्रस्ताव बड़े पागलपन के हैं। पुराने चर्च की ईंटों से नया चर्च कभी बन ही नहीं सकता। वह पुराना ही होगा। उसका ही मॉडीफाइड रूप होगा। फिर पुराना जब तक न गिरे, तब तक नया बनाना नहीं है! तो नया बनेगा ही नहीं। क्योंकि पुराने की भूमि ही नए के बनने की भूमि भी है। पुराना गिरे तो ही नया बन सकता है।

यह जो हमारा मन है, यह जो मन का मंदिर है, यह जो पुराना मंदिर है--जिसमें हम बैठे हैं, और जिसमें हम कंप रहे हैं कि यह कभी भी गिर सकता है। जिसके गिरने के भय से एंग्जायटि, एंग्विश, चिंता और संताप पैदा होता है। और हर आदमी जीवनभर चिंता में रहता है कि कब गिर जाएगा यह मंदिर, जिसके नीचे मैं बैठा हूं। रात न सो पाता है चैन से, न दिन जाग पाता है। चौबीस घंटे इसके गिरने का डर है। इस डर को जब तक हम जीतेंगे नहीं और इसके लिए राजी न हो जाएंगे कि इसे खुद ही गिरा दें, तब तक हम नए मंदिर को बना नहीं सकते हैं।

चित्त का यह जो झूठा मंदिर हमने बना रखा है अपने चारों तरफ, यह सही नहीं है। अगर यह सही होता तो हम शांत हो गए होते। अगर यह सही होता तो हमारा चित्त एक फूल की तरह खिल गया होता। अगर यह सही होता तो हमारे जीवन में सुगंध फैल गई होती। अगर यह सही होता तो हम अपने आपको जान लिए होते, जो अमृत है। अगर यह सही होता, तो तो हम उसे पहचान लेते, जो जीवनों का जीवन है, जो परमात्मा है। लेकिन यह सही नहीं है। और इसको हम सम्हालकर बचा रखना चाहते हैं! तो जो सही है, उसे हम कभी जान भी न पाएंगे और बना भी नहीं पाएंगे। इसे तोड़ने की हिम्मत होनी ही चाहिए।

जो आदमी विध्वंस करने को राजी हो जाता है, वही आदमी सृजन करने में भी समर्थ होता है। डिस्ट्रक्शन, विध्वंस--क्रिएशन का, सृजन का पहला सूत्र है। एक इमेज है हमारी, एक प्रतिमा है, उसे गिराने का साहस ही हमें अंतरात्मा के ज्ञान में ले जा सकता है। और यह ज्ञान, निरीक्षण, जागरूकता, एक-एक वृत्ति के अनुसरण से संभव होता है और फलित होता है।

सुबह मुझे इतनी ही बात कहनी थी। अब हम सुबह के ध्यान के लिए बैठेंगे। थोड़े-थोड़े फासले पर हम हो जाएं।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २१-१०-६७, सुबह

९. काम का रूपांतरण

सुबह मैंने उर्वशी की कथा कही। उससे दोपहर उन्हें अत्यंत कामोत्तेजक स्वप्न आया। तो उन्होंने चाहा है कि मैं ऐसी बातें न कहूं जिनसे कामवासना भड़क उठे। मैं तो सिर्फ सत्य जानने का रास्ता बताऊं।

मेरी कथा से उनकी कामवासना जाग्रत हुई है, या कि कामवासना उनमें दबी हुई पड़ी थी, मेरी कथा उसे बाहर निकाल लाई है।

एक कुएं में हम बाल्टी डालते हैं, बाल्टी में पानी भरकर बाहर आ जाता है, क्योंकि कुएं में पानी है। अगर कुआं खाली हो तो बाल्टी हम कितनी ही डालें, और कितनी ही बड़ी, और कितनी ही अच्छी, कुएं से पानी नहीं आ सकेगा। बाल्टी पानी केवल बाहर लाती है, होता कुएं में पानी है। लेकिन अगर हम बाल्टी को दोष दें कि इसकी वजह से ही यह पानी आ गया तो गलती हो जाएगी। बाल्टी केवल खबर ले आती है कि भीतर पानी है। और हम न भी बाल्टी डालें तो पानी विलीन नहीं हो जाता, वह मौजूद है।

उर्वशी की कहानी से अगर मन में वासना उठी, स्वप्न आया तो उसका अर्थ है, दबी हुई वासना मन में है। वह न हो तो उर्वशी की कथा तो दूर, उर्वशी भी खुद आ जाए तो उसे नहीं उठा सकेगी। और अगर उर्वशी की कथा से इतना डर है तो फिर उर्वशी के आने पर क्या होगा? और उर्वशी की कोई कमी तो नहीं है। सब तरफ उर्वशी मौजूद है। फिर क्या करेंगे? ऐसा भयभीत होकर कहां जीएंगे, कैसे जीएंगे?

यह तो अच्छा हुआ कि मैंने कथा कही और आपको स्वप्न आया, यह और भी अच्छा हुआ। इसे थोड़ा निरीक्षण करें, इसे थोड़ा आब्जर्व करें, इस स्वप्न की घटना का थोड़ा विश्लेषण करें, थोड़ी एनालिसिस करें तो शायद बड़ा कीमत का हो सकेगा यह स्वप्न। नहीं कहता कथा तो यह स्वप्न न आता और आप विश्लेषण से भी बच जाते।

यह स्वप्न किस बात की सूचना है? यह उसी बात की सूचना है जो मैं निरंतर कह रहा हूं। यह इस बात की सूचना है कि सप्रेस्ड माइंड, दमित मन एक ज्वालामुखी है, जिसके ऊपर हम बैठे हैं और नीचे आग उबल रही है। जरा सा बहाना और आग ऊपर आ जाएगी।

स्वप्न में वही हमारे चित्त में ऊपर आ जाता है, जो जाग्रत में हम दबाए रहते हैं। स्वप्न में वही हमारे चित्त में चित्र बन जाता है, जिसे हमने जाग्रत में हमने भीतर दबाया। तो स्वप्न बड़े मित्र हैं। वे यह खबर देते हैं आपको कि आप अपने जाग्रत जीवन में कितना दमन कर रहे हैं, किस भांति का दमन कर रहे हैं, और किस चीज का दमन कर रहे हैं। जिस चीज का दमन होगा, वही चीज स्वप्नों में रूप ले लेती है।

स्वप्नों का अध्ययन, अपने स्वप्नों का अध्ययन और विश्लेषण साधक के लिए बहुमूल्य है। क्योंकि उसके स्वप्न खबर देते हैं कि उसका जीवन किन-किन चीजों का दमन कर रहा है।

और दमन से मुक्त होना है। जिस दिन दमन से मुक्त हो जाएंगे, उसी दिन स्वप्न से भी मुक्त हो जाएंगे। जिस दिन चित्त में कोई दमन नहीं होगा, उस दिन चित्त में कोई स्वप्न नहीं होगा।

स्वप्न और ड्रीम्स बाई-प्रोडक्ट हैं सप्रेशन की, दमन की। तो जो आदमी जिस चीज का दमन करेगा उसी का स्वप्न देखना शुरू कर देगा। अगर सेक्स का दमन किया है तो सेक्स के स्वप्न होंगे। अगर दिन में उपवास किया है और भूख का दमन किया है, रात में भोजन करने के स्वप्न होंगे। जिस बात का दमन किया है, वही स्वप्न में मौजूद हो जाएगी। स्वप्न दमन की छाया है।

इसलिए स्वप्न को बहुत गौर से देखते रहें कि स्वप्न क्या है? वह आपके चित्त के संबंध में खबर दे रहा है। जो आदमी अपने स्वप्नों को ठीक से समझे वह खुद को ठीक से समझने में समर्थ हो जाता है।

स्वप्न बहुत सूचक हैं। और स्वप्नों को समझना, पूरे गौर से उसकी खोज करनी, अत्यंत महत्वपूर्ण है। जो हमारे भीतर दबा है वह बाहर निकलने की कोशिश करता है। जब हम जागे होते हैं, तब हम उसे दबाए रखते हैं। जब हम सो जाते हैं, दबाने वाला पहरेदार सो गया, अब वह जो भीतर से दिनभर कोशिश कर रहा था बाहर आने की, वह बाहर आएगा।

इस बाहर आने के उसने और भी बहुत से रास्ते खोज लिए हैं। रास्तों पर, सड़कों पर फिल्मों के नग्न और अश्लील पोस्टर लगे हैं, अश्लील और नग्न चित्र हैं, किताबें हैं, फिल्में हैं, ये क्यों हैं? हमने इन-इन चीजों का चित्त में दमन किया है, इन-इन चीजों को लगाकर हमारे मन को आकर्षित किया जा सकता है। ये-ये चीजें हमारे मन में जो दबा है, छिपा है उसे आकर्षित करती हैं, रस पैदा होता है, उस रस का शोषण किया जा सकता है। सारी दुनिया में दमित आदमी का शोषण हो रहा है।

एक गंदी और अश्लील फिल्म बनती है तो आप दोष देते होंगे फिल्म बनाने वालों को। दोषी है हमारा मन, जो गंदी और अश्लील फिल्म देखने की पूरी चेष्टा कर रहा है। सड़क पर देखने की हम में हिम्मत नहीं है, वही बात तो हम जाकर एक सिनेमागृह में चुपचाप बैठकर देख लेते हैं। एकांत में एक किताब में गंदे चित्र देख लेते हैं। अश्लील पोस्टर देख लेते हैं।

हम देखना चाहते हैं, क्योंकि हमने इस चाह को दबाया है, छिपाया है।

और सारे जगत में जितना दमन सेक्स के संबंध में हुआ और किसी चीज के संबंध में नहीं हुआ है। इसलिए सेक्स आदमी की बहुत बुनियादी समस्या है। ईश्वर से भी ज्यादा महत्वपूर्ण समस्या सेक्स है। क्योंकि आदमी के लिए ईश्वर तो एक शब्द है कोरा, सेक्स और वासना एक वास्तविकता, एक रिअलिटी है, जिसके आसपास उसका जीवन घूम रहा है। और अगर हम उसको दबाते चले जाते हैं, जैसी हमारी शिक्षाएं सिखाती हैं दबाओ, दबाओ, दबाओ; धीरे-धीरे हम इतने भाव दबा लेते हैं भीतर कि हमारा सारा जीवन उन्हें दबाने में और व्यवस्थित करने में व्यतीत हो जाता है। फिर स्वप्न आएंगे, कमजोर क्षणों में अभिव्यक्ति

होगी उनकी तो हम और घबड़ाएंगे। फिर आदमी सोचता है कि कुछ ऐसा उपाय करें कि सोऊं ही न, नींद ही कम लूं, क्योंकि नींद लूंगा तो सपने आएंगे।

सारी दुनिया में तथाकथित साधक कम सोने की कोशिश करते हैं, उसका कोई और कारण नहीं है, स्वप्न का डर है। नींद आई कि स्वप्न आए। और स्वप्न वही आए जिनसे दिनभर लड़ाई की है। तो भय होता है मन में, घबड़ाहट होती है कि वे न आएं तो नींद ही कम लो। यह कोई उपाय हुआ? उपाय तो यह होना था कि स्वप्न आते हैं सूचना की तरह, उस सूचना को हम समझें और उस सूचना का कुछ हल करें, कोई समाधान खोजें। समाधान खोजने का तो उपाय नहीं करते, समस्या को दबाने का उपाय करते हैं।

समाधान क्या है? समाधान यह है चित्त का दमन न करें। कोई भी चीज चित्त में दबाई न जाए, जबर्दस्ती न की जाए। निरीक्षण किया जाए। जो मैंने सुबह आपसे कहा, चित्त की सभी वृत्तियों का निरीक्षण करें, खोजें। खोजने पर आप पाएंगे कि भय निर्मूल सिद्ध होता है। कोई भय नहीं है। खोजें, जो भी वृत्ति मन में है खोजें। और वृत्तियों के प्रति दुर्भाव न लें।

सेक्स के प्रति हमने बहुत दुर्भाव इकट्ठा कर लिया है। यह सबसे ज्यादा खतरनाक बात जो मनुष्य की संस्कृति में हो गई है, वह है सेक्स के प्रति दुर्भाव, शत्रुता का भाव। और आप कल्पना नहीं कर सकते कि इस एक केंद्रीय बात ने सारे जीवन को विषाक्त किया हुआ है, जहर से भर दिया है।

सेक्स में क्या बुरा है। सेक्स तो जीवन का जन्म है। सेक्स तो सृजन है, क्रिएटिविटी का उसूल, नियम है। उसी काम से तो सारा जीवन विकसित होता है। पशु, पक्षी, पौधे, मनुष्य जीवन का जो केंद्रीय तत्व है, जिससे सारे जीवन की ऊर्जा जन्मती है और विकसित होती है, उसके आप शत्रु बनकर रह सकेंगे! और उसके शत्रु बनने में सिर्फ अपने को तोड़ सकते हैं और कुछ भी नहीं।

परमात्मा अगर जीवन में कहीं भी काम कर रहा है तो सबसे ज्यादा सेक्स में। परमात्मा का सृजन अगर कहीं भी सर्वाधिक सक्रिय है तो मनुष्य के सेक्स में, प्रकृति के सेक्स में। वही तो सूत्र है जिससे जीवन बनता और विकसित होता है। तो जीवन के इस उदगम के प्रति अगर हमारे मन में दुर्भाव है तो हमारे मन में जीवन के प्रति ही दुर्भाव है। और जब यह दुर्भाव होगा तो इसके दुष्परिणाम होने शुरू होंगे।

पहली बात तो तथ्यों को देखना और स्वीकार करना चाहिए। सेक्स की निंदा करने वाली परंपराएं मनुष्य की शत्रु हैं। सेक्स के प्रति भी सम्मान और रिवरेंस का भाव होना चाहिए। सेक्स के प्रति तो इसलिए सम्मान का भाव होना ही चाहिए कि वह जीवन का केंद्र है; जीवन का उत्स, जीवन का स्रोत। हम मां-बाप के प्रति तो सम्मान का भाव रखते हैं, वह सम्मान का भाव तब तक झूठा रहेगा जब तक सेक्स के प्रति भी हमारे मन में सम्मान का भाव न हो। मां-बाप के प्रति और सम्मान का क्या कारण है? वे जन्म देने वाले सूत्र हैं, यही न। तो जन्म देने वाले सूत्र वे क्यों हैं और कैसे हैं, किस कारण हैं?

हमारा सब मां-बाप के प्रति आदर का भाव झूठा है और झूठा रहेगा। झूठा रहेगा इसलिए कि सेक्स के प्रति तो हमारा दुर्भाव है; ये दोनों बातें कंट्राडिक्ट्री हैं, ये दोनों बातें विरोधी हैं। मां-बाप के प्रति सच्चा आदर और प्रेम तभी हो सकता है जब सेक्स के प्रति भी आदर हो, निंदा और शत्रुता नहीं। पत्नी पति को आदर कैसे दे सकती है जब सेक्स के प्रति निंदा का भाव है। हम कहते हैं पति को परमात्मा समझो। समझे कैसे इस पति को परमात्मा। पति पत्नी को कैसे आदर दे सकता है? जानता है भलीभांति यही नरक का द्वार है। यही उसे सेक्स के जीवन में ले जाने वाली है। यही उपकरण है पाप का। तो इस पाप के उपकरण को कैसे आदर दे? पत्नी पति को कैसे आदर दे, बच्चे मां-बाप को कैसे आदर दें, मां-बाप बच्चों को कैसे आदर दें, यह सेक्स की बाई-प्रोडक्ट हैं। यह तो उसकी ही उत्पत्ति हैं। ये उसी से तो आते हैं, इनके प्रति आदर कैसे हो सकता है?

जीवन हमारा अनादर से भर गया है। जीवन हमारा घृणा, क्रोध से भर गया है, क्योंकि सेक्स के प्रति हमारी कोई रिवरेंस की धारणा नहीं है, आदर का भाव नहीं है। और जब तक यह आदर का भाव पैदा नहीं होगा, मनुष्य के जीवन में शांति बहुत कठिन है, बहुत असंभव है।

क्यों न हम आदर के भाव से भरें। क्यों शत्रुता का भाव लें। जीवन का जो सीधा तथ्य है और सबसे महत्वपूर्ण और सबसे केंद्रीय। अगर अभी यहां मंगल ग्रह से कोई यात्री उतर आए तो सबसे पहली चीज आप क्या देखेंगे, कि वह स्त्री है या पुरुष। अभी एक यात्री मंगल ग्रह से यहां उतर आए, गिर पड़े तो हम सबसे पहली चीज कौन सी नोटिस करेंगे। पहली चीज कौन सी हमारे खयाल में आएगी--स्त्री है या पुरुष। क्यों, यही तथ्य सबसे पहले खयाल में आने का कोई कारण? यही बात सबसे पहले सोचे जाने का कोई कारण? जरूर कारण है।

मनुष्य के सारे व्यक्तित्व का जो विकास है, वह सेक्स के केंद्र पर है। केंद्र तो सेक्स है। इस केंद्र को झुठलाने से काम नहीं चलेगा। और इस केंद्र को जितना हम झुठलाएंगे उतना यह तीव्रता से अपने को प्रगट करने की कोशिश करेगा। फिर दमन शुरू होगा, फिर हम पीड़ा में पड़ेंगे।

जीवन के तथ्यों की स्वीकृति की क्षमता और पात्रता हम में होनी चाहिए।

मेरी दृष्टि में सेक्स, काम केंद्र है जीवन का, सृजन का। हमारे मन में बहुत आदर भाव जरूरी है। और जितना आदर भाव होगा, उतना ही आप पाएंगे कि आप सेक्सुअलिटी से मुक्त होते चले जाते हैं। जितना आदर का भाव होगा, उतना ही आप पाएंगे कामुकता आपके चित्त से विलीन होती चली जाती है। जितना घृणा का भाव होगा, उतना दमन होगा। दमन से कामुकता पैदा होती है, घेरती है, चक्कर काटती है। जितना आदर का भाव होगा, सम्मान का भाव होगा, उतनी ही विलीन होती चली जाएगी। उतनी दूर होती चली जाएगी।

चित्त को बदलने की कीमिया, चित्त को बदलने का विज्ञान बहुत और है। जो हम समझे बैठे हुए हैं हजारों साल से वह नहीं है। और हमने सारी मनुष्य जाति को रोगाक्रांत कर दिया है। सारी मनुष्य जाति को इतने गलत रास्तों पर भेज दिया है कुछ थोड़े से लोगों ने, जिसका

कोई हिसाब नहीं है। और आज चूंकि हम हजारों साल से उस घेरे में चल रहे हैं, आज हमें ऐसा लगता है कि वही रास्ता सही है जिस पर हम चलते रहे हैं। वह सही नहीं है।

बच्चों के मन में सेक्स के प्रति बचपन से ही हम घृणा पैदा करते हैं, घबड़ाहट पैदा करते हैं, डर और भय पैदा करते हैं। जैसे सेक्स जीवन का हिस्सा न हो। बच्चे को पता ही नहीं चलता। सोचना शुरू करता है, विचारना शुरू करता है तो हम सब भांति की दीवालें खड़ी करते हैं कि उसको पता न चल जाए। लेकिन जो जीवन का तथ्य है उससे हम बचा सकेंगे! वह तो पता चलेगा, आपके कोई उपाय उसे नहीं रोक सकेंगे। और जब आप रोकेंगे तो वह रुग्ण रूप से उत्सुक हो जाएगा, उसमें आप्सेशन पैदा हो जाएगा। क्योंकि उसके मन में रस पैदा होगा कि क्यों रोका जा रहा हूं मैं, क्यों इस संबंध में कुछ नहीं कहा जाता, क्यों इस संबंध को छुपाया जाता है, बात क्या है? कोई जरूर बहुत गुरु-गंभीर मामला है कोई, कोई छुपाने की बात है, कोई सीक्रेट है।

तो वह चारों तरफ से यह खोजने की कोशिश करेगा, सीक्रेट क्या है इसका। चारों तरफ वह खोज करेगा, खोज करेगा और गलत रास्तों से गलत बातें इकट्ठी करेगा। और डरेगा भी, भयभीत भी होगा, घबड़ाएगा भी कि किसी को पता न चल जाए कि मैं यह जानने लगा हूं जो कि नहीं जानना चाहिए था। और यह रुग्ण चित्त में बच्चे का चित्त बड़ा होकर बीस वर्ष तक आएगा। सेक्स के प्रति उसके मन में घाव पैदा कर दिया आपने। अब जीवनभर इस घाव के इर्द-गिर्द वह घूमेगा इससे छुटकारा नहीं पा सकता है।

अगर बच्चे को हम बचपन से ही सेक्स के सारे तथ्य स्पष्ट बताना शुरू करें, बताने चाहिए, और सेक्स के प्रति एक आदर का भाव पैदा करें, क्योंकि वही जीवन का जन्म देने वाला केंद्र और सूत्र है, तो बच्चे के मन में यह घाव कभी पैदा नहीं होगा। उसे कभी भय होने का कारण नहीं होगा। वह कभी डरेगा नहीं। वह जीवन की इस केंद्रीय शक्ति से कभी आंख नहीं छिपाएगा। उसके मन में घाव पैदा नहीं होगा, चोट पैदा नहीं होगी। उसका मन स्वस्थ रह सकेगा।

हम सबका मन अस्वस्थ हो गया है। फिर यह अस्वास्थ्य जीवनभर चक्कर काटता है क्योंकि बच्चे के मन में जो केंद्र बन जाते हैं, उनको पोंछना और मिटाना बहुत कठिन हो जाता है। एक अच्छी दुनिया तभी बनेगी जब वह सेक्स को परमात्मा की अनूठी बात स्वीकार करके आदर देना शुरू करेगी, नहीं तो अच्छी दुनिया नहीं बन सकती।

जितना-जितना आदर, जैसे कोई मंदिर में प्रवेश करता है, सेक्स की भावना में प्रवेश करना मंदिर में प्रवेश जैसा होना चाहिए। और आप शायद खयाल भी नहीं कर सकते, कल्पना भी नहीं कर सकते कि सेक्स के प्रति निंदा के कारण पति और पत्नी दो शत्रु हैं, मित्र नहीं। मित्र हो नहीं सकते, क्योंकि मित्रता का सेतु घृणा और कंडेमनेशन लिए हुए है। जिससे वे जुड़े हैं; वह चीज ही, जोड़ने वाली चीज ही गलत और बुरी भाव लिए हुए है तो वह जोड़ने वाली चीज मित्रता कैसे बन सकती है? और इस शत्रुता में से बच्चे पैदा होते हैं, वे बच्चे बहुत शुभ, बहुत सुंदर और श्रेष्ठ नहीं हो सकते। इसी तनाव, कांफलिक्ट, इस शत्रुता में से

बच्चे आते हैं। इन दोनों का मन भयभीत, घबड़ाया हुआ, पाप से ग्रसित, पाप से दबा हुआ, डरा हुआ, और फिर इससे बच्चे आते हैं! इन दोनों के इस चित्त की अनिवार्य छाप उस आने वाले बच्चे में छूट जाती है।

जिस दिन पति और पत्नी एक-दूसरे से एक पवित्रतम संबंध अनुभव करेंगे, होलीएस्ट कि ये सेक्स के क्षण, ये काम के संबंध के क्षण पवित्रतम क्षण हैं, प्रार्थना के क्षण हैं। जिस दिन उनका यह मिलन एक प्रेयर, एक प्रार्थना बन जाएगा, उस दिन जो बच्चे पैदा होंगे वे बहुत दूसरा संस्कार, बहुत दूसरे बीज की तरह जगत में आएंगे। तब हम एक दूसरी प्रजा के जन्मदाता हो सकते हैं।

फिर ये बच्चे पैदाइश से ही रोग चित्त में लेकर पैदा होते हैं। और उस रोग को फिर समाज और बढ़ाता है, और बढ़ाता है। फिर उस रोग का शोषण करने वाले लोग हैं, वे शोषण करते हैं। और एक चक्कर शुरू होता है जिस पर एक छोटा सा आदमी पिस जाता है बुरी तरह से।

ये सारी गंदी फिल्में, ये सारे गंदे चित्र, यह सारा गंदा वातावरण आपकी सेक्स के संबंध में यह भ्रांत धारणा कि प्रतिक्रिया है, उसका फल है। यह उससे पैदा हुआ है। और जो कौम जितनी ज्यादा सेक्स के प्रति भयभीत और घबड़ाई हुई है, उस कौम का चित्त उतना ही ज्यादा सेक्सुअलिटी से भरा हुआ है।

लेकिन हम तथ्यों को देखना नहीं चाहते, हमने हिम्मत खो दी है। हम सोचना नहीं चाहते, हम विचार नहीं करना चाहते। हम आंख बंद करके जैसा चल रहा है चलते रहना चाहते हैं। ऐसे नहीं हो सकता है। इस संबंध में हमारी पूरी धारणा परिवर्तित होनी चाहिए।

सेक्स के संबंध में किसी तरह की निंदा का कोई कारण नहीं है। और जब निंदा करते हैं और भयभीत होते हैं, घबड़ाते हैं तब भीतर से धक्के आते हैं, चोटें आती हैं, लहरें आती हैं उनमें हम बहते हैं तो पश्चात्ताप होता है। सब मुश्किल हो जाता है। आनंद असंभव हो जाता है। नहीं बहते हैं, रुकते हैं तो पीड़ा हो जाती है। जाते हैं, बहते हैं तो पीड़ा हो जाती है। सब तरफ, दोनों तरफ कुएं-खाई खड़े हो जाते हैं। इस तरफ गिरते हैं तो तकलीफ, उस तरफ गिरते हैं तो तकलीफ।

फिर आदमी क्या करे? तो फिर आदमी आवागमन से छुटकारे का उपाय सोचने लगता है कि किसी तरह से संसार से ही छुटकारा हो जाए। यह संसार बड़ा गड़बड़ है।

यह गड़बड़ हमने किया हुआ है। यह संसार गड़बड़ नहीं है। यह संसार बहुत अदभुत रस, बहुत अदभुत आनंद को देने में समर्थ है। लेकिन हमने सब रस विकृत कर लिया, हम पागल हो गए हैं। और इस पागल के केंद्र पर, हमारे पागलपन के सारे केंद्र पर कामवासना बैठी हुई है।

जितने लोग पागल होते हैं उनके अध्ययन से जाहिर होता है कि उनमें से नब्बे प्रतिशत लोग सेक्स की ही रोग के कारण पागल होते हैं। और हम भी जो डांवाडोल होते हैं जीवन में, वह भी सेक्स है। इससे हम यह नतीजे लेने लगते हैं, और नतीजे बिलकुल गलत होते हैं, हम अजीब नतीजे लेने के आदी हो गए हैं। हमें क्या नतीजा लेना चाहिए यह बड़ी मुश्किल हो

गई है। देखते हैं कि सारे लोग सेक्स के कारण परेशान हैं तो हम सोचते हैं सेक्स को हटाओ, खतम करो जीवन से।

परेशान इसलिए हैं कि आप हटाने की कोशिश कर रहे हैं तीन हजार साल से, उससे परेशान हैं। और परेशानी देखकर आप यह नतीजा लेते हैं कि हटाओ इसको, बिलकुल खतम करो, इसकी परेशानी बंद होनी चाहिए। हम सिखाते हैं कि बच्चों को स्कूल में गीता पढ़ाओ, कुरान पढ़ाओ। नहीं साहब, बच्चों को स्कूल में सेक्स के बाबत सब कुछ पढ़ाओ। गीता-कुरान की कोई जरूरत नहीं है। ये बच्चे स्कूल से स्वस्थ होकर बाहर आएं। इनका मन साफ, अनसप्रेस्ड हो; ये दमन से मुक्त हों। ये स्वस्थ हो सकें, ये संतुलित हो सकें। लेकिन हम नतीजे उलटे लेते हैं।

एक गांव में, एक व्यक्ति शराबबंदी के लिए लोगों को समझा रहा था। वह समझा रहा था कि शराब बहुत बुरी चीज है। वह समझा रहा था कि शराब के कारण जीवन नष्ट हो जाता है। वह समझा रहा था और समझाने के लिए उसने एक प्रश्न पूछा, उसने कहा, तुम्हें पता है गांव में किस आदमी की स्त्री सबसे अच्छे कपड़े पहनती है? शराब घर के मालिक की। कौन सी स्त्री सबसे अच्छे जेवर पहनती है? शराब घर के मालिक की। क्योंकि तुम्हारा....और कौन उसके पैसे चुकाता है? तुम। सार धन वहां इकट्ठा होता है।

सभा विसर्जित हो गई। एक आदमी उसके पास आया, उस उपदेशक के और उसने कहा कि मैं आपसे बिलकुल सहमत हूं और मेरा मन आपने बिलकुल बिल दिया। उपदेशक बहुत प्रसन्न हुआ, उसने उसे गले लगाया और कहा कि चलो, एक आदमी भी बदले तो ठीक। क्या तुमने तय कर लिया शराब छोड़ने का। उसने कहा कि नहीं, मैंने शराबखाना खोलने का विचार पक्का कर लिया। मैं और मेरी पत्नी दोनों सहमत हो गए आपकी बात से कि बिलकुल ठीक है। शराबखाना खोलने का मैंने निश्चय कर लिया।

बड़े अजीब नतीजे हैं। हमारा मन बड़े अजीब नतीजे लेता रहता है। जिनकी कल्पना भी नहीं होती समझाने वालों को, जिनकी कल्पना भी नहीं होती शिक्षा देने वालों को, वह हम नतीजे लेते रहते हैं।

फ्रायड एक दिन अपने बच्चे और अपनी पत्नी के साथ एक बगीचे में, वियना में, घूमने गया था। सांझ जब लौटने लगा, अंधेरा हो गया, बच्चा नदारद था। उसकी पत्नी ने कहा कि बच्चा न मालूम कहां गया, अब अंधेरे में हम कहां खोजेंगे? इतना बड़ा पार्क है। फ्रायड ने कहा, तुमने कहीं उसे जाने को मना तो नहीं किया था? अगर किया हो तो सबसे पहले वहीं देख लें। अगर उसमें थोड़ी भी बुद्धि है तो वह वहां मिलेगा। उसकी पत्नी तो हैरान हुई। उसने कहा, मैंने कहा था कि फव्वारे पर, फाउंटेन पर मत जाना। फ्रायड ने कहा, फिर वहीं चलो। सौ में निन्यानबे मौके तो यह हैं कि वहां हो। और अगर वहां न हो तो हमको चिंतित होना पड़ेगा। क्योंकि लड़का फिर बुद्धिमान नहीं है।

फिर वहां गए। बच्चा पैर लटकाए वहां फव्वारे पर बैठा हुआ था। उसकी पत्नी ने, फ्रायड की पत्नी ने कहा, हैरानी की बात है, तुमने कैसे खोज निकाला कि यह बच्चा वहां होगा। उसने

कहा, अब तक यही भूल दुनिया में चल रही है। हम अब तक नहीं खोज निकाल पाए कि जिस चीज का निषेध किया जाता है, इनकार किया जाता है, उसमें आकर्षण पैदा हो जाता है। इस बच्चे को कहा गया, फव्वारे पर मत जाना। सारा बगीचा व्यर्थ हो गया, फव्वारा ही सार्थक हो गया। इसके चित्त में फव्वारे ने केंद्र की जगह ले ली। अब इस बगीचे में जानने और पहचानने और जाने जैसी चीज फव्वारा हो गया। अब बाकी सब बेकार है। बाकी जहां जाया जा सकता है वहां कभी भी जाया जा सकता है। इस फव्वारे पर जाना एकदम जरूरी है। इसे चूक जाना ठीक नहीं है।

आदमी ने सेक्स के बाबत जितना निषेध और विरोध किया है, उतना ही आदमी का चित्त सेक्स के फव्वारे पर ही पैर लटकाए हुए बैठा है। सामान्य नियम है: निषेध आकर्षण पैदा करता है। निषेध विकृति पैदा करता है। स्वीकृति आकर्षण को समाप्त कर देती है। स्वीकार करने का साहस होना चाहिए। तथ्यों को वैज्ञानिक दृष्टि होनी चाहिए देखने की। और जब हम किसी तथ्य को सीधा स्वीकार करते हैं तो एक बड़ा बल, एक बड़ी ताकत पैदा होती है। और फिर एक रोग हमारे भीतर जो पैदा होता है निषेध से, वह बंद हो जाएगा।

यहां इस नगर में हम आए हुए हैं, शायद नगर के, इस गांव के लोगों को पता भी नहीं होगा। अगर आप गांव में दो-चार जगह पोस्टर लगा देते और लिख देते कि फलां-फलां जगह मीटिंग हो रही है, वहां कोई भी नहीं आ सकता है। वहां आना मना है। तो यह मैदान खाली नहीं रह सकता था। फिर इस गांव में शायद ही कोई एकाध बुद्धिमान आदमी होता जो न आ जाता। मामला क्या है? वहां जाना जरूरी हो जाता।

एक दरवाजे पर लिखकर टांग दें, भीतर झांकना मना है। फिर कोई इतना हिम्मत का आदमी वहां से नहीं निकल सकता, जो बिना झांके निकल जाए। और अगर निकल जाए तो बड़ी मुश्किल में पड़ जाएगा। फिर चौबीस घंटे चित्त इसका यही होगा कि उस द्वार पर कैसे चलें, कैसे झांके। फिर रात सपने देखेगा कि द्वार खोल लिया, झांक आए। फिर सपनों के लिए कहेगा कि गड़बड़ हो गयी, मुश्किल में पड़ गया हूं मैं। लेकिन चित्त को निषेध करना, चित्त को आमंत्रित करना है।

ये बातें उलटी दिखाई पड़ती हैं, लेकिन सीधी और साफ हैं। हमने जिन चीजों का निषेध किया, हमने उनमें आकर्षण पैदा कर दिया है। जिन चीजों को हमने छिपाया, उन्हें हमने उघाड़कर देखने की हवा पैदा कर दी है। और अब हम बेचैन और घबड़ाए हुए हैं।

इस बेचैनी का इस तरह कोई हल नहीं हो सकता, जैसा हम सोचते रहे। इस बेचैनी की जड़ पकड़ लेनी है। और जड़ है--दमन। जड़ है--जीवन के तथ्यों का विरोध और निषेध; स्वीकार नहीं।

तो मैं आपको कहना चाहूंगा इस संबंध में: सेक्स के विरोध में मत खड़े रहें, उसे स्वीकार करें। जाने कि वह है। फिर खोजें, फिर निरीक्षण करें, फिर उस वृत्ति को पकड़ें प्रेम से और उतर जाएं गहरे में।

सेक्स की वृत्ति गहरी से गहरी वृत्ति है, क्योंकि उससे ही हम पैदा होते हैं। वह गहरी से गहरी वृत्ति है जो मनुष्य के भीतर है। उसका निषेध नहीं किया जा सकता। उसमें उतरें और गहरे से गहरे जाएं। जितने गहरे आप उतरते चले जाएंगे, उतने ही आप एक मुक्ति अनुभव करेंगे कि आप मुक्त होने शुरू हो गए। और जिस दिन आप बिलकुल जड़ों में पहुंच जाएंगे अपनी चेतना के, जहां से सेक्स का पौधा उत्पन्न होता है, वहां आप एकदम हैरान हो जाएंगे कि यह कोई उलझन की बात न थी। यह तो इतनी सरल थी, इतनी सीधी और साफ थी, इसे बदल देना बहुत आसान था। और जिस दिन वह बदलाहट होगी, उस दिन आपके सारे व्यक्तित्व में प्रेम भरपूर भर जाएगा।

प्रेम सेक्स का ट्रांसफार्मेशन है और कुछ भी नहीं। जो आदमी सेक्सुअल है, वह आदमी लविंग नहीं हो सकता। जो आदमी कामवासना से भरा है, उसमें प्रेम नहीं हो सकता है।

प्रेम सेक्स की ही शक्ति का रूपांतरण है। जब चित्त सब भांति सेक्स से मुक्त हो जाता है, सेक्स को जानकर, परिचय से, ज्ञान से, तब सेक्स की शक्ति का क्या होगा? वह शक्ति है। वह रूपांतरित हो जाती है, वह प्रेम बन जाती है। और यह प्रेम फिर नए ढंग का सृजन शुरू कर देता है, नया क्रिएशन शुरू कर देता है। प्रेम बहुत क्रिएटिव है। फिर प्रेम का एक-एक शब्द अदभुत रूप से सृजन करने में लग जाता है।

टालस्टाय एक दिन सुबह एक गांव की सड़क से निकला। एक भिखारी ने हाथ फैलाया। टालस्टाय ने अपने जेब तलाशे लेकिन जेब खाली थे। वह सुबह घूमने निकला था और पैसे नहीं थे। उसने उस भिखारी को कहा, मित्र! क्षमा करो, पैसे मेरे पास नहीं हैं, तुम जरूर दुख मानोगे। लेकिन मैं मजबूरी में पड़ गया हूं। पैसे मेरे पास नहीं हैं। उसके कंधे पर हाथ रखकर कहा, मित्र! क्षमा करो, पैसे मेरे पास नहीं हैं। उस भिखारी ने कहा, कोई बात नहीं। तुमने मित्र कहा, मुझे बहुत कुछ मिल गया। यू काल्ड मी ब्रदर, तुमने मुझे बंधु कहा! और बहुत लोगों ने मुझे अब तक पैसे दिए थे लेकिन तुमने जो दिया है, वह किसी ने भी नहीं दिया था। मैं बहुत अनुगृहीत हूं।

एक शब्द प्रेम का--मित्र, उस भिखारी के हृदय में क्या निर्मित कर गया, क्या बना गया। टालस्टाय सोचने लगा। उस भिखारी का चेहरा बदल गया, वह दूसरा आदमी मालूम पड़ा। यह पहला मौका था कि किसी ने उससे कहा था, मित्र। भिखारी को कौन मित्र कहता है? इस प्रेम के एक शब्द ने उसके भीतर एक क्रांति कर दी, वह दूसरा आदमी है। उसकी हैसियत बदल गयी, उसकी गरिमा बदल गयी, उसका व्यक्तित्व बदल गया। वह दूसरी जगह खड़ा हो गया। वह पद-दलित एक भिखारी नहीं है, वह भी एक मनुष्य है। उसके भीतर एक नया क्रिएशन शुरू हो गया। प्रेम के एक छोटे से शब्द ने!

प्रेम का जीवन ही क्रिएटिव जीवन है। प्रेम का जीवन ही सृजनात्मक जीवन है। प्रेम का हाथ जहां भी छू देता है, वहां क्रांति हो जाती है, वहां मिट्टी सोना हो जाती है। प्रेम का हाथ जहां स्पर्श देता है, वहां अमृत की वर्षा शुरू हो जाती है।

लेकिन यह प्रेम आता कहां से है? कहां से यह पैदा होता है? कहां यह जन्म पाता है? मेरी दृष्टि में जैसे एक बीज होता है, बीज के ऊपर एक खोल होती है, सेल होती है, उसके ऊपर ढांके रखती है। भीतर बीज छिपा होता है, ऊपर सेल होती है, खोल होती है। खोल बीज की दुश्मन नहीं है, मित्र है। अगर खोल न हो तो बीज कभी का मर जाएगा, उसकी रक्षा न हो सकेगी। लेकिन हम जमीन में डालते हैं बीज को, खोल तो टूटकर नष्ट हो जाती है, बीज अंकुर बन जाता है। बीज बाहर निकल आता है।

तो खोल रक्षा करती थी बीज का लेकिन अगर खोल रक्षा ही करती चली जाए और जब बीज को फूटने का मौका आए तब इनकार कर दे कि मैं टूटने को राजी नहीं हूं, मैं तो तुम्हारी रक्षक हूं। मैं नष्ट होने को राजी नहीं हूं। तो जो रक्षक था वही भक्षक हो जाएगा। फिर खोल बीज का प्राण ले लेगी, फिर बीज में अंकुर नहीं पैदा हो सकेगा। खोल रक्षा करती है एक सीमा तक, और एक सीमा के बाद फिर टूट जाती है ताकि बीज में अंकुर हो सके।

मनुष्य के भीतर जो भी हमें वृत्तियां दिखाई पड़ती हैं वे खोल हैं, उनके भीतर बीज छिपे हुए हैं बहुत अदभुत। सेक्स खोल है। और अगर ठीक से उसे हम समझें तो एक दिन खोल तो विलीन हो जाती है और प्रेम का अंकुर प्रगट हो जाता है। क्रोध खोल है। अगर हम क्रोध को ठीक से समझें तो क्रोध तो विलीन हो जाता है, दया-क्षमा जन्म ले लेती है। लेकिन बड़ी अंडरस्टेंडिंग की, बड़ी समझ की जरूरत है।

एक आदमी एक घर में बहुत सा गोबर और खाद लाकर ढेर इकट्ठा कर ले तो बदबू फैलनी शुरू हो जाएगी। गांव के लोगों का उस रास्ते से निकलना मुश्किल हो जाएगा। उस आदमी का भी घर में रहना मुश्किल हो जाएगा। लेकिन वही आदमी उस खाद को अपनी जमीन पर फैला दे घर के आगे और बीज डाल दे फूलों के, थोड़े दिनों में गांव के लोग उस रास्ते पर आने को आतुर हो जाएंगे। वहां फूल खिल गए हैं, उनमें सुगंध व्याप्त हो गई है।

वह सुगंध कहां से आती है? वह सुगंध उस खाद की दुर्गंध का ही रूपांतरण है, वह उसका ही ट्रांसफार्मेशन है। वही खाद जो दुर्गंध दे रही थी, फूलों से पार होकर सुंगध बन गई है। लेकिन खाद इकट्ठी कर लें तो प्राण जीना मुश्किल हो जाएंगे। और खाद को बगिया में डाल लें, खाद को ही, तो फूल खिल जाएंगे वहां। वहां जीवन स्वर्ग हो जाएगा।

हमारे चित्त में भी अभी हम खाद को इकट्ठा किए हुए बैठे हैं इसलिए हम परेशान हैं। उस खाद को हमने चित्त की बगिया में सहयोगी नहीं बनाया है, और हमने बीज नहीं बोए हैं जो सुगंध ला सकें। इसलिए हम परेशान हैं--सेक्स से परेशान हैं, क्रोध से परेशान हैं,र् ईष्या से परेशान हैं--हर चीज से परेशान ही परेशान हैं। और इन सबसे लड़ रहे हैं और इस लड़ने में हम पूरे जीवन को दो कौड़ी का कर लेंगे। आखिर में हम पाएंगे हम एक हारे हुए सर्वहारा। जा रहे हैं जमीन से, कुछ भी लेकर नहीं। क्योंकि हम खाद को ही इकट्ठा करने और खाद से ही लड़ने में लगे रहे हैं, हमने बगिया तो बनाई ही नहीं।

बगिया बन सकती है मनुष्य के जीवन की। लेकिन जो तथ्य हैं उन सबको देखना, जानना, पहचानना और उनके रूपांतरण की कीमिया, केमिस्ट्री खोजनी है।

तो सेक्स से घबड़ाए न। क्या आपको पता है आज तक कोई भी नपुंसक, कोई भी इंपोटेंड जगत में कुछ भी पैदा कर सका है? कुछ भी। बच्चे तो नहीं लेकिन और कुछ--कविता, गीत, संगीत--कुछ पैदा कर सका है? कुछ क्रिएट कर सका है? नहीं, उसके पास सेक्स की ऊर्जा नहीं है, सेक्स की एनर्जी नहीं है। वही एनर्जी सब कुछ पैदा करती है--बच्चे भी, गीत भी, कविता भी, चित्र भी, मूर्ति भी, शास्त्र भी--जो कुछ पैदा होता है उसी ऊर्जा से पैदा होता है। जो कुछ भी पैदा होता है सेक्स के अतिरिक्त किसी चीज से पैदा नहीं होता।

एक महान पुस्तक पैदा होती है, एक महान गीत पैदा होता है, एक महान मूर्तिकार एक अदभुत मूर्ति बनाता है पत्थर में फोड़कर, ये सब भी सेक्स का ही उत्पादन हैं। और इसलिए आप एक दूसरी बात देखकर हैरान हो जाएंगे--जो आदमी सुंदर मूर्तियां पैदा कर पाता है, जो आदमी सुंदर गीत लिख पाता है, जो आदमी कुछ पैदा कर पाता है, एक वैज्ञानिक एक आविष्कार, एक नई चीज निर्मित कर पाता है--तो आप हैरान हो जाएंगे, ऐसे आदमी की जिंदगी में सेक्स का प्रॉब्लम होता ही नहीं। क्योंकि उसकी सारी सेक्स की ऊर्जा नए सृजन को खोज लेती है। उसकी जिंदगी में यह बात आती ही नहीं, उसे खयाल में भी नहीं आती।

लेकिन जिस आदमी की जिंदगी में और किसी तरह का कोई सृजन नहीं है, उसके लिए भी परमात्मा ने एक सृजन का काम छोड़ा हुआ है, कम से कम बच्चे पैदा करे। वह सृजन का इतना आनंद तो ले कम से कम। उसने कुछ पैदा किया, उसने कुछ बनाया। वह जमीन को ऐसे ही नहीं छोड़ जा रहा है। कुछ पीछे छोड़ जा रहा है, यह तृप्ति और यह संतुष्टि उसे मिले।

लेकिन सृजन के बहुत तल हैं, बहुत ग्रेड्स हैं। सृजन के बहुत रूप हैं, बहुत ऊंचाइयां है। सृजन की बहुत गहराइयां हैं। लेकिन वे सब गहराइयां, सब ऊंचाइयां सेक्स की ऊर्जा से ही जन्म पाती हैं, वही उनका केंद्र है। उसके प्रति विरोध से नहीं--उसके प्रति समझ, प्रेम, आनंद और सम्मान से आदमी नीचे से ऊपर की तरफ विकसित होता चला जाता है--तब वह बच्चे ही पैदा नहीं करता, कुछ और भी पैदा करता है। तब वह पार्थिव ही पैदा नहीं करता, कुछ अपार्थिव को भी जमीन पर उतार लाता है। तब उसकी चेष्टाएं कुछ अलौकिक, कुछ अपार्थिव जीवन, कुछ अपार्थिव शक्तियों को भी जमीन पर आमंत्रित कर लेती हैं, वह एक सृष्टा बन जाता है।

इसलिए इसे सोचें, इसे खोजें। हजारों साल ने जो कहा है, वही जरूरी रूप से सही न मान लें। वह सही नहीं है। उस पर पुनर्विचार, उस पर री-कंसीडरेशन होना आवश्यक है। कम से कम सेक्स के बाबत तो हमारी सारी दृष्टि नई हो जानी चाहिए। वही हमारा महारोग हमें पीड़ित किए हुए है, उससे हमारा छुटकारा अत्यंत आवश्यक है।

एक और छोटा सा प्रश्न और फिर हम उठेंगे

एक बहन ने पूछा है, नारियां आध्यात्मिक जीवन में उत्सुक होती हैं, तो पुरुष बाधा बनते हैं। नारियां क्या करें?

पहली तो बात यहः आध्यात्मिक जीवन ऐसा जीवन है जिसमें कोई भी बाधा नहीं बन सकता है। कोई बाधा नहीं बन सकता है। सांसारिक जीवन में कोई बाधा बन सकता है।

मुझे एक रास्ते से जाना है और आप रास्ते पर दीवाल खड़ी कर दें, बंदूक लिए खड़े हो जाएं, उधर से मैं नहीं जा सकूंगा। मुझे एक काम करना है, आप मेरे हाथ-पैर बांध दें और जंजीरें कस दें तो मैं नहीं कर सकूंगा। सांसारिक जीवन में दूसरे लोग बाधा बन सकते हैं। क्यों? क्योंकि सांसारिक जीवन में दूसरे लोग सहयोगी भी बन सकते हैं। जहां सहयोग मिल सकता है, वहां बाधा भी मिल सकती है।

आध्यात्मिक जीवन में सहयोग भी कोई नहीं दे सकता, बाधा भी कोई नहीं दे सकता। सहयोग ही नहीं दे सकता तो बाधा कैसे देगा? जहां किसी के कोआपरेशन का ही कोई मूल्य नहीं है, सहयोग का ही कोई मूल्य और अर्थ नहीं है, वहां उसके नान-कोआपरेशन का क्या मतलब है। उसके असहयोग का क्या मतलब है।

नहीं, लेकिन अब तक जिसको हम आध्यात्मिक जीवन समझते रहे हैं उसमें पति बाधा बन सकते हैं, पत्नियां बाधा बन सकती हैं। कोई भी बाधा बन सकता है।

अब आपको मंदिर जाना है, हो सकता है पति कहे मंदिर जाना मुझे पसंद नहीं है। असल में मंदिर जाना आध्यात्मिक जीवन ही नहीं है, संसार की ही एक घटना है। इसमें पति बाधा बन सकता है। अब आपको पूजा करनी है, घर में भजन-कीर्तन करने हैं, पति कह सकता है कि मुझे यह पसंद नहीं है, मेरा दिमाग खराब होता है।

अभी एक मामला मेरे पास आया है। एक महिला ने मुझसे आकर कहा, कुछ दिन हुए कि आप कृपा करके मेरे पति को समझाएं उनके धर्म से हम परेशान हो गए हैं, घर पागल हुआ जा रहा है। क्या हुआ? दो बजे रात से उठ आते हैं और इतने जोर से जपुजी का पाठ करते हैं, इतने जोर से कि बच्चे सो नहीं पाते, हम नहीं सो पाते, मोहल्ले के लोग शिकायत करने लगे हैं कि यह क्या हो रहा है। मैंने उनके पति को बुलाया। वे आए। वे बड़ी खुशी से आए। क्योंकि वे सोचते होंगे कि मैं तो उनके आध्यात्मिक जीवन में साथ दूंगा, सहयोग दूंगा। पत्नी को यह कहूंगा कि तू गलत है, किसी के धार्मिक जीवन में बाधा बननी चाहिए?

वे बोले कि मैं सुबह उठता हूं तो यह उठने नहीं देती है। मैंने कहा, सुबह यानी कितने बजे। उन्होंने कहा, दो बजे। मैंने कहा, दो बजे सुबह होता है? लेकिन वे बोले कि यह तो ऋषि-मुनियों ने बहुत तारीफ की है कि जितने जल्दी उठो उतना अच्छा। और मैं कोई बुरा काम तो करता नहीं, जपुजी का पाठ करता हूं। जिसके भी कान में पड़ जाए उसका भी हित है। मैंने कहा, ऐसा धार्मिक जीवन अगर आपका है तो इसमें आपकी पत्नी और बच्चों को बाधा बनना पड़ेगा। यह तो धार्मिक जीवन न हुआ। यह तो एक पागल का जीवन हुआ, इसका धर्म से क्या वास्ता।

अगर ऐसा कोई जीवन जीना चाहे तो बेचारे पति चिंतित भी हो सकते हैं, पत्नी भी चिंतित हो सकती है कि यह क्या हो रहा है? और पति-पत्नी हजारों साल से चिंतित हैं धार्मिक आदमी से, बहुत घबड़ाए हुए रहते हैं। हालांकि जाते हैं, कोई धार्मिक आदमी आता है उसके

पैर भी छूते हैं, नमस्कार भी करते हैं लेकिन डरता है। पति डरता है कहीं पत्नी धार्मिक न हो जाए, पत्नी डरती है कहीं पति धार्मिक न हो जाए।

मेरे पास न मालूम कितने पत्र आते हैं। पत्नियां लिखती हैं कि हमारे पति जरा बहुत ही धर्म में उत्सुक हो गए हैं, इससे घबड़ाहट हो गई है, कोई रास्ता बताइए। क्योंकि धर्म के नाम पर जीवन का जो विरोध चलता रहा है और धर्म के नाम पर जो-जो एब्सर्डिटीस, बेवकूफियां चलती रही हैं, कोई भी समझदार आदमी चिंतातुर हो जाता है कि यह क्या हो रहा है? कुछ भी गड़बड़ हो सकती है। और सब तरह की गड़बड़ को मौका मिल गया है, सब तरह की गड़बड़ की जा सकती है।

एक आदमी सड़क पर नंगा खड़ा हो सकता है कि मैं धार्मिक हो गया। इसकी इस स्टुपिडिटी के लिए, इसकी इस मूढ़ता के लिए घर के मां-बाप, बच्चे, पत्नी चिंतित हो जाएं तो कोई हैरानी की बात तो नहीं। यही आदमी अगर हमें धर्म का खयाल न होता तो हम इसकी चिकित्सा की व्यवस्था करते। फौरन इसको ले जाते अस्पताल, मानसिक चिकित्सक के पास कि इसको कुछ गड़बड़ हो गई है, यह आदमी नंगा खड़ा हो गया है। लेकिन यह हम कह ही नहीं पाते। क्योंकि हम जानते हैं कि इसको...यह तो परम संन्यासी हो गया है, साधु हो गया है।

चिंताएं हैं। लेकिन ये चिंताएं आध्यात्मिक जीवन के कारण नहीं हैं। जिसको हम आध्यात्मिक जीवन समझे हैं, वह आध्यात्मिक जीवन ही नहीं है। उसमें बाधा दी जा सकती है।

लेकिन मैं जिसे आध्यात्मिक जीवन कहता हूं उसमें कोई कैसे बाधा दे सकता है? कैसे कोई बाधा दे सकता है? आप अपने चित्त को शांत करें। कोई पति, कोई पत्नी कैसे बाधा दे सकता है? बल्कि प्रसन्न होगा कोई भी, क्योंकि शांत आदमी के साथ जीना एक आनंद है। अशांत आदमी के साथ जीना तो आनंद नहीं है।

अगर पत्नी अशांत है तो पति के जीवन में एक उपद्रव निरंतर चलता रहेगा, पति अशांत है तो पत्नी के जीवन में उपद्रव चलता रहेगा। लेकिन अगर पत्नी शांत होना चाहती है तो पति क्यों बाधा देगा? कभी किसी पति ने पत्नी के स्वस्थ होने में बाधा दी है, बीमार रखना चाहा है। क्यूं चाहेगा? क्योंकि पत्नी की बीमारी पति को भी तो बीमार करती है, बीमार बना देती है। क्योंकि घर में एक आदमी बीमार है तो कोई आदमी स्वस्थ नहीं रह सकता। सारे घर की हवा रुग्ण हो जाती है। घर में एक आदमी अशांत है तो सारे घर की हवा में अशांति के कीटाणु फेंकता है।

तो अगर कोई शांत होने लगे तो पति बाधा देगा! लेकिन पति को डर है। पुरानी तरह की शांति बड़ी खतरनाक थी, वह दूसरी तरह की अशांति थी। अगर पत्नी शांत होने लगे तो उसको लगेगा कि संबंध टूटे, पुराने ढंग की जो शांति जो हम समझते रहे कि शांति है। अगर वह माला-माला जपने लगे तो पति समझ गया, अब मुश्किल हो गयी। अब यह मेरे साथ सिनेमा देखने नहीं जा सकेगी। अब मेरे और इसके प्रेम के नाते गड़बड़ होंगे, क्योंकि

यह माला बीच में खड़ी हो जाएगी। तो पति घबड़ा जाएगा कि यह उपद्रव हो रहा है। यह मैं पत्नी को खो रहा हूं।

लेकिन अगर पत्नी शांत होने लगे, जिसे मैं शांति कहता हूं, तो पति तो हैरान होगा, जिस प्रेम को उसकी पत्नी ने उसे कभी नहीं दिया था वह इस शांति के बाद पैदा होना शुरू होता है। जिस प्रेम को उसने कभी इससे नहीं पाया था, वह उसे उपलब्ध होना शुरू होगा। क्योंकि जो आदमी अशांत है वह हमेशा प्रेम मांगता है, प्रेम कभी देता नहीं। अशांत आदमी का लक्षण है प्रेम मांगता है, देता कभी नहीं। अशांत आदमी दे कैसे दे सकता है। उसके पास है ही नहीं देने को कुछ सिवाय अशांति के। वह मांगता है। अशांति से घबड़ाया है। वह कहता है, मुझे प्रेम दो। और जो आदमी प्रेम मांगता है उसे प्रेम कभी भी नहीं मिलता है, क्योंकि प्रेम मांगने से मिल ही नहीं सकता। वह सिकुड़ जाता है। बहुत डेलीकेट है, बहुत नाजुक है। जब आप मांगने लगते हैं तो वह डर जाता है।

प्रेम हमेशा तभी मिलता है, जब बिना मांगा, अन-मांगा। मांगकर कभी नहीं मिलता, प्रेम की कोई भिक्षा नहीं मिलती। तो जितना कम मिलता है उतनी उसकी डिमांड और मांग बढ़ती है, मुझे प्रेम दो। लेकिन जो व्यक्ति शांत होता है, अगर पत्नी शांत है या पति शांत है तो वह प्रेम देना शुरू कर देगा। मांगेगा नहीं, देगा। और जब प्रेम दिया जाता है तो अपने आप उत्तर में हजार गुना होकर वापस लौटता है। प्रेम जब दिया जाता है तो प्रेम लाता है।

तो अगर एक पत्नी शांत हो रही है, ध्यान में प्रवेश कर रही है तो उसके जीवन में तो गहराई बढ़ेगी ही, रस बढ़ेगा, आनंद बढ़ेगा, प्रेम बढ़ेगा। उसके जीवन की सारी चीजें एक अनूठे रूप से आनंद-मग्नता को उपलब्ध होने लगेंगी। पति इससे दुखी होगा! कोई कारण तो नहीं है इसमें पति के दुखी होने का। पत्नी इससे दुखी होगी! कोई कारण तो नहीं है इसमें पत्नी के दुखी होने का। कोई भी कारण नहीं है।

तो जिसको मैं आध्यात्मिक जीवन कह रहा हूं, अगर वह जगत में आता है तो हर घर एक सुखी घर होगा। अभी जिसको हम आध्यात्मिक जीवन कहते हैं तो उसने हजारों घर बरबाद किए हैं, लाखों घर बरबाद किए हैं। करोड़ों लोगों को इतने कष्ट में डाला है जिसका कोई हिसाब नहीं है। लेकिन हम न मालूम कैसे लोग हैं चुपचाप देख रहे हैं।

दुनिया में क्रिमिनल्स ने, अपराधियों ने इतना नुकसान नहीं किया जितना तथाकथित धार्मिक लोगों ने किया है। कितने घर बरबाद किए हैं, कितने परिवार? कितनी पत्नियों को रोते छोड़ दिया, कितने बच्चों को? कितने मां को, कितने बाप को? अगर उसकी सारी, किसी भी दिन किसी आदमी ने सारे आंकड़े इकट्ठे किए तो हम घबड़ा जाएंगे। अपराधियों ने ऐसा कुछ भी नहीं किया है। अपराधी बहुत कम है इस मात्रा में।

लेकिन चूंकि हम इस सबको कहते हैं--यह त्याग है, वैराग्य है, अनासक्ति है। हमने अच्छे-अच्छे शब्द इस अपराध को दे दिए हैं। इस क्रिमिनल एक्ट को हमने बहुत अच्छे-अच्छे, ऊंचे-ऊंचे शब्द दे दिए हैं। उन शब्दों के पीछे सब छिप जाता है। रोती हुई पत्नियां छिप जाती हैं, रोते हुए बच्चे छिप जाते हैं, बरबाद घर छिप जाते हैं, सब छिप जाता है। बूढ़े मां-बाप छिप जाते हैं, उनका रोना सब छिप जाता है। क्योंकि हम इस आदमी को सिर पर उठा लेते हैं, जुलूस निकालते हैं, जोर से बाजा बजाते हैं कि संन्यास हो गया, दीक्षा हो गयी। गांवभर में शोरगुल मचा देते हैं। उस शोरगुल में वह घर जो रोता हुआ पीछे छूट गया है, वह अंधेरे कोने में खड़ा रह जाता है। उसको रोने की भी हिम्मत नहीं होती कि रोएं तो कैसे रोएं? इतना गांव तो खुशी मना रहा है। वह भी उस खुशी में उदास मन, आंसू लिए सम्मिलित हो जाता है।

हजारों घर बरबाद हुए हैं धर्म के नाम पर। और ऐसे धर्म के लिए अगर पति चिंतित हो जाए तो बिलकुल ठीक है। पत्नी चिंतित हो जाए, बिलकुल ठीक है। लेकिन उस धर्म की मैं बात नहीं कर रहा हूं। वह धर्म ही नहीं है।

एक ऐसा धर्म चाहिए जो जीवन को, घर को खुशी से भर दे। जो सामान्य जीवन को, सामान्य घरों को, सामान्य दांपत्य को, परिवार को आनंद से भर दे। दुख और उदास से भरने वाला जीवन नहीं। वैसा धर्म नहीं, वैसा अध्यात्म नहीं। वह अध्यात्म है ही नहीं।

मेरी दृष्टि में तो किसी को भी दुख देने में जिसे रस आता है वह आदमी दुष्ट है। चाहे वह किसी रूप से दुख देने की व्यवस्था करता हो।

व्यवस्था कई तरह की हो सकती है। एक समाज-सम्मत व्यवस्था हो सकती है दुख देने की, एक समाज-असम्मत व्यवस्था हो सकती है। एक आदमी अपनी पत्नी को, बच्चों को छोड़कर वेश्याघर में चला जाता है, तो यह समाज-असम्मत व्यवस्था है पत्नी को दुख देने की। इसका हम सब विरोध करेंगे कि यह गलत बात है, यह बुरी बात है। तुम क्यों दुख दे रहे हो पत्नी को।

लेकिन एक आदमी संन्यासी हो जाता है, यह समाज-सम्मत व्यवस्था है दुख देने की। इसमें हम उसका आदर करेंगे कि तुम बहुत ही अच्छा कर रहे हो और यह सब असार संसार है तुम छोड़ रहे हो। यह आदमी वही है, यह जरा होशियार है। इसने टार्चर का वह रास्ता खोजा जिसमें आप इनकार नहीं कर सकते। और इसके चित्त में सताने की कोई भावना काम कर रही है। अन्यथा, यहां अगर यह परमात्मा को नहीं खोज सकता है तो और कहां खोजेगा? और फिर हम देखते हैं कि पत्नी छोड़कर जाता है, बच्चे छोड़कर जाता है; कल शिष्य और शिष्याएं इकट्ठी कर लेता है, कोई परिवार से बाहर होता नहीं। फिर नया परिवार बना लेता है। फिर वही-वही गोरखधंधा खड़ा कर लेता है तो यह इसको समझ भी नहीं पाता,

उसको आश्रम कहता है, इसको घर कहता था। वही सब गोरखधंधा है, वही सब। सब वही उपद्रव चलता है। यहां एक माताजी थीं, वहां आश्रम में एक माताजी बना लेता है। ये माताजी हैं इनके पैर पड़ो। तो घर में ही माताजी के पैर पड़े जा सकते थे। लेकिन घर की माताजी असार हो गईं, ये माताजी बहुत कीमत की हैं। ये आश्रम वाली माताजी हैं।

वहां भी वही घेरा था, वहां बच्चों की चिंता करनी पड़ती थी, यहां शिष्यों की चिंता करता है। वहां भी झगड़े थे, बच्चों के हल करने पड़ते थे; यहां हल करता है शिष्यों के। बदल क्या जाता है? बदल कुछ भी नहीं जाता।
लेकिन यह अध्यात्म, यह पुराना अध्यात्म बिलकुल थोथा है। इस थोथे अध्यात्म ने जीवन को बहुत दुख पहुंचाए। प्रार्थना करनी चाहिए परमात्मा से कि किसी दिन इस थोथे अध्यात्म से छुटकारा हो जाए, ताकि सही अध्यात्म का जन्म हो सके। और उसके लिए किसी का कोई विरोध नहीं हो सकता। हर एक उसका स्वागत करेगा, क्योंकि वह तो आनंद को लाने वाला गीत है। वह तो आनंद को लाने वाला संगीत है। वह तो आनंद को लाने वाला नृत्य है। वह तो जीवन को खुशी और मुस्कुराहटों से भर देगा, आंसुओं से नहीं।

और प्रश्न रह गए हैं वह मैं रात बात करूंगा। दोपहर की यह बैठक समाप्त हुई।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २१-१०-६७, दोपहर

१०. बस एक कदम

शिविर की इस अंतिम रात्रि में थोड़े से प्रश्नों पर और हम विचार कर सकेंगे। कुछ प्रश्न तो ऐसे हैं, जो मेरे शब्दों को, विचारों को ठीक से न सुन पाने, न समझ पाने की वजह से पैदा हो गए हैं। एक शब्द भी यहां से वहां कर लें तो बहुत अंतर पैदा हो जाता है।
उन प्रश्नों के तो उत्तर मैं नहीं दे पाऊंगा। निवेदन करूंगा कि जो मैंने कहा है, उसे फिर एक बार सोचें। उसे समझने की कोशिश करें। जरा सा भेद आप कर लेते हैं, कुछ अपनी तरफ से जोड़ लेते हैं या कुछ मैंने जो कहा उसे छोड़ देते हैं, तो बहुत सी भ्रांतियां, दूसरे अर्थ पैदा हो जाते हैं। और जरा से फर्क से बहुत बड़ा फर्क पैदा हो जाता है।
एक राजधानी में उस देश के धर्मगुरुओं की एक सभा हो रही थी। सैकड़ों धर्मगुरु देश के कोने-कोने से इकट्ठे हुए थे। उस नगर ने उनके स्वागत का सब इंतजाम किया। सभा का जब उदघाटन होने को था तो मंच पर से परदा उठाया गया। पांच छोटे-छोटे बच्चों के गले में हैलो, इसके पांच अक्षर--एच, ई, एल, एल, ओ--ये पांच बच्चों के गलों में एक-एक अक्षर लटकाकर एक के बाद एक बच्चा बाहर आया स्वागत के लिए।

चार बच्चे आकर खड़े हो गए। पांचवां छोटा बच्चा हैरान हुआ, वह भूल गया, कहां खड़ा होना है। वह पीछे न खड़ा होकर आगे पंक्ति में खड़ा हो गया। हैलो की जगह ओ हेल बन गया। वह, स्वागत की जगह वहां नरक! उतने से एक अक्षर के यहां से वहां होने पर...कहां स्वागत का स्वर्ग था, कहां नरक उपस्थित हो गया!

एक नास्तिक ने अपने घर पर लिख छोड़ा था, गाड इज़ नो ह्वेअर। एक छोटा सा बच्चा पड़ोस का उसे पढ़ रहा था, नया-नया पढ़ने वाला था। उसने पढ़ा गाड इज़ नाउ हिअर! वह नास्तिक सुनकर हैरान हो गया। उसने लिखा था गाड इज़ नो ह्वेअर, ईश्वर कहीं भी नहीं है। और बच्चे ने पढ़ा, गाड इज़ नाउ हिअर, ईश्वर यहीं है--यहीं और अभी!

दो पुरोहित अपनी शिक्षा के लिए एक आश्रम में भर्ती हुए थे। उन दोनों को ही सिगरेट पीने की आदत थी। एक घंटे के लिए उन्हें आश्रम के बगीचे में घूमने का समय मिलता था। उसी समय वे पी सकते थे। लेकिन वह समय भी ईश्वर-चिंतन करने के लिए मिलता था। तो उन्होंने सोचा गुरु से पूछ लेना उचित है। वे दोनों अपने गुरु के पास पूछने गए।

पहला व्यक्ति जब लौटा पूछकर तो उसने देखा कि दूसरा तो उससे पहले ही बगीचे में वापस लौट आया है और एक दरख्त के नीचे बैठकर आराम से सिगरेट पी रहा है! उसे बड़ी हैरानी हुई। उसे तो गुरु ने इनकार कर दिया था। क्या उसके साथी को उन्होंने स्वीकार कर दिया? यह कैसे संभव है कि मुझे मना किया और मेरे साथी को हां भरी।

उसने क्रोध में आकर अपने मित्र को पूछा, तुम सिगरेट पी रहे हो। मुझे तो मना कर दिया है गुरु ने। उस साथी ने कहा, तुमने पूछा क्या था? उस व्यक्ति ने कहा, सीधी सी बात थी। मैंने पूछा था, क्या मैं ईश्वर-चिंतन करते समय सिगरेट पी सकता हूं। उन्होंने एकदम कहा, नहीं, बिलकुल नहीं। तुमने क्या पूछा था? वह दूसरा मित्र हंसा। उसने कहा, मैंने पूछा था, क्या मैं सिगरेट पीते वक्त ईश्वर-चिंतन कर सकता हूं? उन्होंने कहा, हां, बिलकुल।

ये दोनों बातें एक ही अर्थ रखती हैं, लेकिन एक ही परिणाम नहीं निकला। दोनों से बिलकुल दूसरा परिणाम निकला। ईश्वर-चिंतन करते समय कौन आज्ञा देगा कि सिगरेट पीओ। लेकिन सिगरेट पीते वक्त अगर ईश्वर-चिंतन करते हो तो अच्छा ही है, इसमें बुरा क्या है। वैसे बात दोनों एक ही हैं। लेकिन इतने ही फर्क से जमीन-आसमान का फर्क पैदा हो जाता है।

तो उन सारे प्रश्नों को तो मैं छोड़ दूंगा, जिनमें अपने शब्दों को, भावों को विचारों को समझने की कोशिश नहीं की है--हेर-फेर कर ली है, बदली कर दी है, अपने मन से कुछ जोड़ लिया या कुछ घटा दिया है। उन सब पर विचार करने का तो समय नहीं है। इतना ही निवेदन करूंगा उन सबके संबंध में कि जो मैंने कहा है, उसे फिर गौर से सोचें, उसका फिर से निरीक्षण करें, समझें। तो जो मुझसे पूछा है, उसके उत्तर आपको अपने से ही मिल जाएंगे।

कुछ और प्रश्न है।

एक मित्र ने पूछा है कितने समय में हम ध्यान को उपलब्ध हो सकेंगे।

कोई सामान्य उत्तर नहीं हो सकता है। क्योंकि ध्यान को कितने समय में उपलब्ध हो सकेंगे, यह मुझ पर नहीं, आप पर निर्भर है। और इसके लिए कुछ ऐसा नहीं हो सकता कि सभी लोग एक ही समय में उपलब्ध हो सकें। आपकी तीव्रता, आपकी प्यास, आपकी लगन, आपकी अभीप्सा, इस सब पर निर्भर करेगा। एक क्षण में भी उपलब्ध हो सकते हैं, और पूरे जीवन में भी न हों। एक क्षण में भी, तीव्र प्यास का एक क्षण भी, इंटेंसिटी का एक क्षण भी जीवन को बदल सकता है। और नहीं तो धीरे-धीरे, धीरे-धीरे--कोई तीव्रता नहीं है, कोई सीरियसनेस, कोई गंभीरता नहीं है कि उसे हम प्यास की तरह पकड़ें।

एक आदमी प्यासा है तो उसकी पानी की खोज और बात है। और एक आदमी प्यासा नहीं है, उसकी पानी की खोज बिलकुल दूसरी बात है। प्यास तो खोज लेगी पानी को। और जितनी तीव्र होगी, उतनी तीव्रता से खोज लेगी।

एक पहाड़ी रास्ते पर एक यात्री जाता था। एक बूढ़े आदमी को बैठा हुआ देखा उसने और कहा, गांव कितनी दूर है और मैं कितने समय में पहुंच जाऊंगा? वह बूढ़ा ऐसे बैठा रहा, जैसे उसने न सुना हो या बहरा हो। वह यात्री हैरान हुआ। उस बूढ़े ने कुछ भी न कहा। यात्री आगे बढ़ गया, कोई बीस कदम गया होगा, वह बूढ़ा चिल्लाया--सुनो, एक घंटा लगेगा। उस आदमी ने कहा, यात्री ने कि अजीब हो, मैंने जब पूछा था, तुम चुप रहे। उसने कहा, मैं पहले पता तो लगा लूं कि तुम चलते कितनी रफ्तार से हो। तो जब बीस कदम मैंने देख लिए कि कैसे चलते हो, तो फिर मैं समझ गया कि एक घंटा तुम्हें पहुंचने में लग जाएगा। तो मैं क्या उत्तर देता पहले, उस बूढ़े ने कहा, जब मुझे पता ही नहीं कि तुम किस रफ्तार से चलते हो। तुम्हारी रफ्तार पर निर्भर है गांव पर पहुंचना--कितनी देर में पहुंचोगे, इसलिए मैं चुप रह गया।

आपकी रफ्तार पर निर्भर है। आप कैसी तीव्रता से, कितनी गंभीरता से, कितनी सिनसेरिटि से, कितनी ईमानदारी से जीवन को बदलने की आकांक्षा से अभिप्रेरित हुए हैं, इस पर निर्भर है। एक क्षण में भी यह हो सकता है। एक जन्म में भी न हो। समय का कोई भी सवाल नहीं है। समय का रत्तीभर भी सवाल नहीं है। क्योंकि ध्यान में समय के द्वारा हम नहीं जाते हैं। ध्यान में हम जाते हैं अपनी प्यास और तीव्रता के द्वारा।

भीतर कोई टाइम नहीं है, भीतर कोई समय नहीं है। सब समय बाहर है। तो अगर बाहर यात्रा करनी हो, तब तो समय निश्चित लगता है। लेकिन भीतर यात्रा करनी हो, प्यास अगर परिपूर्ण हो, तो समय लगता ही नहीं। बिना समय के एक पल में, एक पल में भी नहीं--भीतर पहुंचा जा सकता है। लेकिन वह निर्भर करेगा--मुझ पर नहीं, आप पर।

और यह जरूर कहूंगा, हमारी गंभीरता, हमारी प्यास अत्यल्प है। अगर अत्यल्प न होती, अगर बहुत कम न होती, तो हम शब्दों और शास्त्रों से तृप्त न हो जाते।

एक आदमी को प्यास लगी है, क्या हम पानी के संबंध में लिखी हुई उसे कोई किताब दें, वह तृप्त हो जाएगा? उस किताब को रोज पढ़ता रहेगा? किताब फेंक देगा। वह कहेगा,

किताब का मैं क्या करूंगा। मुझे प्यास लगी है, मुझे पानी चाहिए। पानी के ऊपर लिखा हुआ शास्त्र नहीं।

लेकिन मैं तो देखता हूं परमात्मा के ऊपर लिखे शास्त्रों को लिए लोग बैठे हैं! वे कोई भी नहीं कहते कि हमें किताब नहीं चाहिए, हमें परमात्मा चाहिए! हमें प्यास लगी है, यह वे कोई भी नहीं कहते। रखे बैठे रहें वे शास्त्र को। उनके भीतर प्यास नहीं है, इसलिए वे शास्त्र को पकड़े बैठे हुए हैं। जिसके भीतर प्यास हो, वह शास्त्र से कभी तृप्त हुआ है? वह किताब से, शब्द से कभी तृप्त हुआ है? वह नहीं हो सकता तृप्त।

मैं तो अधिक लोगों को किताबों से तृप्त हुआ देखता हूं। इसलिए लगता है कि कोई प्यास नहीं है। नहीं तो वे परमात्मा को खोजते-खोजते सत्य को, शब्दों को तो नहीं पकड़कर बैठ जाते। हम सब शब्दों को पकड़कर बैठे हुए हैं। यह प्यास की न्यूनता का सबूत, प्रमाण है। शब्दों को पकड़कर बैठे रहिए तो कभी नहीं पहुंच सकेंगे। खोजिए अपनी प्यास को--भीतर कोई प्यास है? सच में कोई भीतर आकांक्षा सरकती है--जीवन को जानने की कोई जिज्ञासा? और अगर है तो फिर दूसरी बात ध्यान में रखना पड़ेगी। इस जिज्ञासा को बोथला मत कर लीजिए। जिज्ञासा को हम बोथला कर लेते हैं। भीतर जिज्ञासा है जानने की और हम मान लेते हैं दूसरों की बातों को तो जिज्ञासा बोथली हो जाती है, कुंठित हो जाती है। भीतर है जानने की जिज्ञासा? क्या है? और हम मान लेते हैं--आत्मा है, परमात्मा है! मान लेते हैं चुपचाप! इस मान लेने के कारण, इस विश्वास के कारण, ऐसी बिलीह्फ्स के कारण फिर जिज्ञासा कुंठित हो जाती है, रुक जाती है। फिर जिज्ञासा आगे गहरी नहीं हो पाती है।

विश्वास जिज्ञासा को रोक लेते हैं, ठहरा लेते हैं, फिर जिज्ञासा गहरी नहीं हो पाती। अगर जिज्ञासा को गहरा करना है तो विश्वासों को मत पकड़ना, थोथे ज्ञान को मत पकड़ना; सुने-सुनाए ज्ञान को, पढ़े-पढ़ाए ज्ञान को मत पकड़ लेना--वह सब जिज्ञासा को मार डालेगा। क्यों? क्योंकि बिना जाने हमें यह भ्रम पैदा हो जाएगा कि हम जानते हैं। हम सबको यह भ्रम है कि हम जानते हैं--ईश्वर है! हम सबको यह भ्रम है हम जानते हैं--मोक्ष है! हम सबको यह भ्रम है हम जानते हैं--पुनर्जन्म है! हम सबको यह भ्रम है हम जानते हैं कर्म है, आत्मा है, फलां है, ढिकां है! हम सब कुछ जानते हुए मालूम पड़ते हैं!

यह जानते हुए मालूम पड़ना घातक है। यह आपकी प्यास की हत्या कर देगा। और फिर आपके भीतर वह ज्वलंत प्यास नहीं रह जाएगी, जो पहुंचा सकती है। इस सबको छोड़ देने के लिए इसीलिए मैंने इधर तीन दिनों में आपसे कहा। जानें ठीक से कि मैं अज्ञानी हूं नहीं जानता हूं।

जो व्यक्ति इस बात को ठीक से जानता है कि मैं नहीं जानता हूं, उसकी प्यास अदम्य हो उठती है। क्योंकि अज्ञान से कोई भी तृप्त नहीं हो सकता है। ज्ञान से तृप्त हो सकता है। तथाकथित ज्ञान से तृप्त हो सकता है। लेकिन अज्ञान से कोई कैसे तृप्त हो सकता है? अज्ञान तो धक्के देता है। अज्ञान तो एक अतृप्ति पैदा करता है, एक डिसकंटेंट कि बदलो, इस अज्ञान को बदलो।

लेकिन हम अज्ञान को छिपा लेते हैं शब्दों के ज्ञान में। फिर अज्ञान की ताकत टूट जाती है, वह हमें धक्के नहीं दे पाता। और तब हम एक मीडियाकर, एक बिलकुल ही कुनकुने आदमी जिसके जीवन में कोई उत्तप्त, कोई पेशन, जिसके जीवन में कोई जीवंत-बल, कोई जीवंत-ऊर्जा नहीं है--ऐसे आदमी हो जाते हैं--बुझे-बुझे। जिसकी ज्योति जलती नहीं।

हम सब बुझे-बुझे आदमी हैं। इसलिए देर लगती है पहुंचने में। जलता हुआ आदमी होना चाहिए। पूरा जीवन एक ज्वलंत, एक जीवंत, एक लिविंग शक्ति, एक ताकत होनी चाहिए। और हम सब हो सकते हैं। लेकिन अपने ही हाथों हम नहीं हैं।

मुझ पर नहीं निर्भर है, आप पर निर्भर है। चाहें तो इसी क्षण--अभी और यहीं, बात पूरी हो सकती है। एक क्षण में भी बातें हुई हैं।

एक साधु था। उसके आश्रम में बहुत लोग थे। एक युवक आया था आश्रम में। वह अत्यंत विवादी था, आरग्यूमेंटेटिव था, हर किसी से विवाद करता। बहुत तर्कनिष्ठ भी था। जो बात कहता, उसमें तर्क का बल भी होता। लेकिन चौबीस घंटे विवाद, विवाद।

एक संन्यासी यात्रा करते हुए उस आश्रम में ठहरा। उस संन्यासी के साथ भी उस युवक का विवाद हो गया। और घंटे, दो घंटे में उसने संन्यासी की चिंदियां-चिंदियां अलग कर दीं। संन्यासी पराजित, दुखी वापस लौटा।

उस युवक के गुरु, उस बूढ़े साधु ने, जो उस आश्रम में था, उसने उस युवक को कहा, मेरे बेटे, तुम कब तक व्यर्थ ही बोलते रहोगे? तुम कब तक अपने जीवन को व्यर्थ की बातों में गंवाते रहोगे? कब तक?

पता है आपको--उस युवक ने उत्तर दिया? नहीं, उसने फिर उत्तर देना भी व्यर्थ समझा। उस दिन के बाद सारा जीवन मौन में बीत गया। इसका उत्तर भी नहीं दिया। क्योंकि उसकी भी क्या जरूरत थी। बात खतम हो गई। उसे यह बात दिखाई पड़ गई, यह व्यर्थता। इस सारे विवाद की, तर्क की--इस जाल की व्यर्थता दिखाई पड़ गई। बात खतम हो गई। उसने फिर यह नहीं कहा, कब तक? कल, परसों, अगले वर्ष; एक वर्ष बाद, दो वर्ष बाद। नहीं, बात दिख गई और समाप्त हो गई।

जब कोई बात दिखाई पड़ती है, उसी वक्त समाप्त हो जाती है। दिखाई ही नहीं पड़ती, इसलिए सवाल उठता है कि कब, कितने दिनों में, कैसे? देखने की कोशिश करें। जो चीज दिखाई पड़ जाएगी--दिखाई पड़ने से ही एक परिवर्तन तत्क्षण हो जाता है।

फिर उसके गुरु को कई लोगों ने कहा, यह आदमी तो बड़ा पागल मालूम होता है? कल तक इतना विवाद करता था। इसे क्या हो गया? उसके गुरु ने कहा, मैं खुद हैरान हो गया इसे देखकर, चकित हो गया। मुझे यह कल्पना नहीं थी। मैंने पूछा था, कब तक? उसने इसका भी फिर उत्तर नहीं दिया। बात फिजूल हो गई। दिख गई तो फिजूल हो गई।

एक बहुत बड़ा वैयाकरण था। बहुत बड़ा व्याकरण का विद्वान था। उसका पिता दिन-रात, राम-राम, राम-राम जपा करता था हर समय। विद्वान की उम्र साठ वर्ष हो गई, पिता की कोई अस्सी के करीब होगी। उसके पिता ने एक दिन उसको बुलाकर कहा कि बेटे अब तुम

भी बूढ़े हो गए। अब राम के स्मरण का समय आ गया। मैंने तुम्हें कभी मंदिर जाते नहीं देखा! मैंने कभी तुम्हें धर्म की बात करते नहीं देखा! मैंने कभी तुम्हारी इस तरफ, परमात्मा की तरफ उत्सुकता नहीं देखी! अब कब तक? बूढ़े हो गए हो तुम भी, साठ वर्ष पार हो गए तुम्हारे भी। कब तक?

उस बेटे ने कहा, मैं भी आपको देखता हूं वर्षों से राम-राम जपते, मंदिर जाते--रोज वही करते। जो कल भी किया था, आज भी आप करते हैं। लेकिन कल जब उस करने से कुछ उपलब्ध नहीं हुआ, तो आज कैसे उपलब्ध हो जाएगा? तीस वर्षों से मैं भी देखता हूं। तीस वर्षों में रोज मंदिर जाते देखा, ग्रंथ पढ़ते देखा, राम-राम जपते देखा। अगर तीस वर्षों में कुछ नहीं हुआ वही करते हुए, तो आज उसके करने से और क्या हो जाएगा?

उस युवक ने कहा, किसी दिन मैं मंदिर जाऊंगा। लेकिन जहां तक मैं समझता हूं, वह मेरा मंदिर जाना अंतिम होगा। दो कारणों से। या तो मंदिर से मैं लौटूंगा ही नहीं। और या लौट आया तो फिर मंदिर नहीं जाऊंगा। वह अंतिम और प्रथम मंदिर मेरा जाना होगा।

बाप नब्बे बर्ष का हो गया। लड़का सत्तर वर्ष पार कर गया। सत्तरवीं वर्षगांठ थी उसकी। उस दिन सुबह ही उसने अपने पिता के पैर छुए और कहा, मैं मंदिर जाता हूं। सारे गांव के लोग इकट्ठे हो गए, यह खबर सुनकर कि वह आदमी जो कभी मंदिर के पास नहीं फटका, आज मंदिर जा रहा है। सारा गांव इकट्ठा हो गया।

वह व्यक्ति मंदिर गया। लेकिन वह जाना अंतिम था। मंदिर में वह आंख बंद करके खड़ा हुआ, और श्वास समाप्त हो गई। उसका पिता रोने लगा। उसके पिता ने कहा, बहुत बार मैं मंदिर गया लेकिन आज तक मैं मंदिर नहीं पहुंच पाया। और यह मेरा लड़का आज मंदिर गया और पहुंच भी गया।

प्राण अगर पूरी प्यास से--प्राण अगर पूरी प्यास से, प्राण का कण-कण अगर पूरी प्यास से भरकर एक क्षण भी ठहर जाए, तो परमात्मा से मिलन सुनिश्चित है, सत्य से मिलन सुनिश्चित है। लेकिन बिना प्यास के हम भटकते रहते हैं, भटकते रहते हैं। और पूछते रहते हैं, कैसे होगा, कब होगा, क्या होगा! कभी नहीं होगा, ऐसे कभी नहीं होगा। होने के लिए चाहिए एक त्वरा, एक पेशन--इसी क्षण हो सकता है।

उचित है कि इस अंतिम दिन इसको हम ठीक से समझ लें। तो खोज लें अपने भीतर कि कोई प्यास है। न हो प्यास तो फिजूल क्यों इन सब बातों में समय को गंवाना। न हो प्यास तो ठीक है। जिस बात की प्यास हो, उसी तरफ जाएं। ईमानदार तो होएं अपनी प्यास में कम से कम। कम से कम एक ईमानदारी तो होनी चाहिए। जो मेरी प्यास नहीं है, उस तरफ नहीं जाऊंगा। जिस तरफ मेरी प्यास है, उसी तरफ जाऊंगा। चाहे दुनिया कुछ भी कहे। अगर इतनी ईमानदारी हो तो एक दिन सारी प्यास व्यर्थ हो जाती है, सिर्फ परमात्मा की प्यास ही फिर शेष रह जाती है। और तब एक बल के साथ, एक त्वरा के साथ, एक गति के साथ सारा जीवन परमात्मा के सागर की तरफ दौड़ने लगता है। जैसे नदियां सागर की

तरफ दौड़तीं, पहाड़ों को छलांगती, मैदानों को पार करतीं, पत्थरों को तोड़तीं--किसी दूर अनंत सागर की यात्रा करती रहती हैं, वैसे ही...।

लेकिन अगर हम जीवनभर ऐसी प्यासों के पीछे भी दौड़ते रहें, जिनकी हमें कोई प्यास ही नहीं है तो हमारा मन अगर बोथला हो जाए, कुंठित हो जाए, अगर सारी गति अवरुद्ध हो जाए तो आश्चर्य नहीं है। तो मनुष्य को खोजना चाहिए--मेरी खोज क्या है, मेरी सर्च क्या है, क्या खोजना चाहता हूं?

लेकिन हम दूसरों की बातों से खोज में लग जाते हैं, इसलिए कठिनाई है। हम दूसरों की बातों से खोज में लग जाते हैं! इसलिए कठिनाई है। कुछ लोग ईश्वर की बातें करते हैं, आत्मा की बातें करते हैं, हमारे लोभ को पकड़ जाती हैं वे बातें। हम सोचते हैं, यह भी मिल जाए तो अच्छा है। यह भी हमारे मिलने के जो बहुत से आइटम हैं हमारी लिस्ट में, जो-जो चीजें हमें पानी हैं--फर्नीचर अच्छा, कार, मकान--इनमें इस ईश्वर को भी सम्मिलित कर लेते हैं। यह भी, इसी, इन्हीं कमोडिटीज में, इन्हीं चीजों में एक चीज है; यह भी मिल जाए तो अच्छा ही है।

ईश्वर हमारे सामानों की फेहरिस्त में एक सामान नहीं है। हमारी सामग्री की चाह में एक सामग्री नहीं है। और इस भांति जो सत्य को चाहता होगा, उसे सत्य कभी मिलने वाला नहीं है।

ईश्वर या सत्य बात ही और है। वह हमारे समग्र प्राणों की समग्र प्यास है--पूरी, इकट्ठी, टोटल, उससे कम नहीं। और वह तभी पैदा होती है, जब जीवन की सब चीजों को हम गौर से देख-देखकर, सब तरफ पाते हैं कि कहीं कोई तृप्ति नहीं है, सब जगह असंतोष है। सब जगह जब डिसकंटेंट मिलता है, जब सब जगह हमारा यह भ्रम टूट जाता है कि कहीं भी नहीं कुछ संतोष मिलता, कहीं कोई शांति नहीं मिलती, कहीं कोई आनंद नहीं मिलता...जब सब तरफ हम जांच लेते हैं, दौड़ लेते हैं, खोज लेते हैं...!

मैं कहता हूं, खोज लेना चाहिए। क्योंकि बिना खोजे सबको--हमारी कच्ची खोज, कच्ची प्यास होगी। खोज लेना चाहिए ठीक से जीवन में कहां मिल सकता है आनंद, कहां मिल सकती है शांति, कहां मिल सकता है संतोष। और जब कहीं न मिले, जब सब मोर्चे पराजित हो जाएं, कोई मोर्चा न रह जाए और जब हम खड़े हो जाएं कि नहीं कहीं मिलता है, कहीं भी नहीं, नो ह्वेअर, जब दिखाई पड़े कहीं भी नहीं, उसी क्षण सारी यात्रा एक नए बिंदु पर दौड़ने लगेगी, जो स्वयं का है, जो स्वयं के भीतर है। उस तरफ एक दौड़ शुरू होगी।

लेकिन हमारी दौड़ और तरह की है। हम एक ऐसे मकान में बैठे हुए हैं कि कोई उपदेशक आकर हमको समझाता है कि मकान में आग लगी हुई है। हम उससे पूछते हैं, वह तो ठीक है, लगी होगी, लेकिन हम कब तक निकल पाएंगे इस मकान से। साफ है मतलब। उपदेशक कहता है आग लगी है, इसलिए हमने मान लिया आग लगी है, अब हम पूछ रहे हैं कि कब तक निकल पाएंगे।

हमको आग दिखाई पड़ जाए तो हम यह पूछेंगे कि कब तक निकल पाएंगे? उपदेशक पीछे रह जाएगा, हम पहले निकल जाएंगे। उसको एक धक्का देंगे कि रास्ता छोड़ो, मुझे बाहर जाने दो, तुम भला फिर समझाना किसी को। अब यहां समझने की फुर्सत नहीं है मुझे। हम उसे धक्का देंगे और बाहर निकल जाएंगे।

लेकिन हमें तो आग दिखाई नहीं पड़ती। लोग समझाते हैं कि आग लगी हुई है। जीवन में दुख है, पीड़ा है--लोग समझाते हैं। हमारी समझ में तो कुछ आता नहीं। इसलिए हमारी समझ में कुछ और ही आता है और ये समझाने वाले कुछ और समझाते हैं। एक झूठी प्यास पैदा हो जाती है। उस झूठी प्यास के कारण सवाल उठता है कब तक?

अपनी प्यास को खोजना चाहिए--क्या वह सच्ची है? और न हो सच्ची तो उस प्यास को दो कौड़ी का समझकर फेंक देना चाहिए। चाहे वह ईश्वर की ही प्यास क्यों न हो। झूठी प्यास का कोई मूल्य है? झूठी प्यास का कोई मूल्य नहीं है। फिर जो हमारी प्यास हो, उसी को ठीक से खोजना चाहिए। और जब उस सारी खोज में नहीं मिलेगा कुछ, तब वह खोज पैदा होगी, जो उसकी है--परमात्मा की, सत्य की।

जब सब तरफ से मन हारा, थका--कहीं भी नहीं पाता, तब उठना चाहता है, तब भीतर जाना चाहता है। लेकिन हमें बचपन से ही झूठी प्यासें सिखा दी जाती हैं, उससे सारी मुश्किल हो जाती है। अपनी झूठी प्यास को छोड़ दें। सच्ची प्यास की तलाश करें। और वह तभी होगी सच्ची प्यास की खोज, जब आप, जो भी आपकी प्यास है...। चाहे सारी दुनिया कहती हो कि वह गलत है, कहने दें दुनिया को। यह जिंदगी आपको मिली है और एक बार। इसको आप किसी के कहने पर मत जीएं। हो सकता है, वे सारे लोग गलत कहते हों। कोई महात्मा कहता हो, कोई ज्ञानी कहता हो। मत जीएं उसकी बात को मानकर। हो सकता है वह गलत कहता हो। हो सकता है, वह कुछ भी न जानता हो।

अपनी प्यास का सहारा पकड़ें और खोजें। और पूरे जागरूक होकर खोजते रहें। जागरूकता भीतर रहे और हर प्यास को खोज लें, चाहे वह कोई प्यास हो। तो आप पाएंगे कि जागरूकता बता देगी कि प्यास व्यर्थ है, यह रास्ता कहीं भी नहीं जाता है। और जब कोई रास्ता कहीं जाता हुआ न दिखाई पड़े, तब वह रास्ता उपलब्ध हो जाता है, जो प्रभु तक जाता है। उसके पहले नहीं।

प्यास को एक सजगता, ईमानदारी, एक त्वरा, एक गति, एक स्पष्टता देना जरूरी है। इस संबंध में थोड़ा खोजें-बीनें। अपनी प्यास को देखें, कहीं ये झूठी बातें तो नहीं हैं कि मैं ईश्वर को चाहता हूं। सच में चाहते हैं? तो इसी क्षण हो सकती है बात। लेकिन पूछें अपने से, चाहता हूं? आप खुद को ही डांवाडोल पाएंगे भीतर, चाहता भी हूं या नहीं।

रवींद्रनाथ ने एक अदभुत गीत लिखा है। लिखा है कि मैं ईश्वर को खोजता था बहुत-बहुत जन्मों से। अनेक बार दूर किसी पथ पर उसकी झलक दिखाई पड़ी, मैं भागा, भागा, लेकिन तब तक वह निकल गया और दूर। मेरी सीमा थी, उस असीम की, सत्य की कोई

सीमा नहीं। जन्म-जन्म भटकता रहा, कभी कोई झलक मिलती थी किसी तारे के पास। भागता जब मैं उस तारे के पास पहुंचता, तब वह फिर कहीं और निकल गया था।

आखिर बहुत थका, बहुत परेशान, बहुत प्यासा, एक दिन मैं उसके द्वार पर पहुंच गया। मैं उसकी सीढ़ियां चढ़ गया। परमात्मा के भवन की सीढ़ियां मैंने पार कर लीं। मैं उसके द्वार पर खड़ा हो गया। मैंने सांकल हाथ में ले ली। बजाने को ही था, तभी मुझे खयाल आया, अगर वह कहीं मिल ही गया तो फिर क्या होगा? फिर मैं क्या करूंगा? अब तक तो एक बहाना था चलाने का कि ईश्वर को खोजता हूं। फिर तो यह बहाना भी नहीं रह जाएगा। द्वार पर खड़े होकर घबड़ाया मन कि द्वार खटकाऊं या न खटकाऊं। क्योंकि खटकाने के बाद उससे मिलना निश्चित है। यह उसका भवन आ गया। और वह मिल जाएगा फिर? मैं उससे मिलना भी चाहता हूं? या कि केवल एक बहाना था अपने को चलाए रखने का। अपने समय को काटने का एक बहाना था। अपने को व्यर्थ न मानने की, सार्थक बनाने की एक कल्पना थी। चाहता हूं मैं उसे?

और तब मन बहुत घबड़ाया और उसने कहा कि नहीं, दरवाजा मत खटखटाओ। अगर कहीं वह मिल गया तो फिर बड़ी मुश्किल है। फिर क्या करोगे? फिर सब करना गया। फिर सब खोज गई, फिर सब दौड़ गई। फिर सारा जीवन गया।

तब मैं डर गया और मैंने सांकल आहिस्ता से छोड़ी कि कहीं वह सुन ही न ले। और मैंने जूते पैर से बाहर निकाल लिए कि सीढ़ियां उतरते वक्त आवाज न हो जाए--कहीं वह आ ही न जाए। और मैं भागा उसके द्वार से। जब मैं बहुत दूर निकल आया, तब मैं ठहरा, तब मैंने संतोष की सांस ली और तब से मैं फिर उसका मकान खोज रहा हूं। क्योंकि खोजने में जिंदगी चलाने का एक बहाना है। मुझे भलीभांति पता है कि उसका मकान कहां है? उसको बचकर निकल जाता हूं। खोज जारी रखता हूं। जो भी मिलता है, उससे पूछता हूं, ईश्वर कहां है? ऐसे जिंदगी मजे में कट रही है। एक ही डर लगता है, कहीं किसी दिन उससे मिलना न हो जाए। मकान उसका मुझे पता है।

बड़ी अजीब सी बात है। लेकिन हम सबके साथ ऐसा ही है। हम सबको पता है कि उसका मकान कहां है। हम सबको मालूम है कि थोड़ा खटकाएं और द्वार खुल जाएंगे। लेकिन कोई तैयार है? किसी का मन राजी है?

समझ लें आप उसके द्वार पर खड़े हो गए हैं जाकर और खटकाने की बात है। जैसा क्राइस्ट ने कहा, नॉक, एंड द डोर शेल बी थ्रोन ओपन अन टू यू, खटखटाओ और द्वार खुल जाएंगे। द्वार पर ही आप खड़े हैं, खटखटाने की बात है। होता है मन कि खोल लें द्वार? या कि मन डरता है? या कि मन कहता है चलो, वापस लौट चलें? खोज बड़ी अच्छी थी, मिल जाने पर बड़ी मुश्किल होगी, फिर क्या करेंगे?

मैं निश्चित आपसे कहता हूं आप भी द्वार से वापस लौट आएंगे। या कौन जाने लौट आए हों। रोज लौट आते हों। परमात्मा का मकान बहुत दूर तो नहीं हो सकता। है तो कहीं बिलकुल निकट, पास--सब तरफ। उसका द्वार कहीं किसी आकाश में, किसी सितारे के पास तो नहीं

हो सकता। है तो हर जगह। उसके रास्ते कहीं बहुत दुर्गम तो नहीं हो सकते। सब रास्ते उसी के हैं। जहां से भी हम चलें, उसी तक पहुंचेंगे, उसके अतिरिक्त कुछ है नहीं।

लेकिन फिर भी हम खोज रहे हैं। तो जरूर कुछ मामला है, जरूर कुछ बात है। यह भी एक बहाना है, यह भी एक मनोरंजन है। कभी फिल्म देख लेते हैं, कभी सत्संग कर लेते हैं। कभी नाच-गान देख लेते हैं, कभी भजन-कीर्तन सुन लेते हैं। कभी ताश खेल लेते हैं, कभी गीता पढ़ लेते हैं। इनमें फर्क थोड़े ही है। ये सब एक जैसे हैं। ये सब जिंदगी को भरने के उपाय हैं। एक मनोरंजन है। जिंदगी फिजूल है, मीनिंगलेस है, उसमें कोई अर्थ नहीं है। सब तरफ से हम अर्थ पैदा करने की कोशिश करते हैं। इसमें ईश्वर को भी ठकठका लेते हैं कि शायद इससे भी कुछ अर्थ पैदा हो। शायद कुछ रस आ जाए, कुछ मजा आ जाए, कोई थ्रिल पैदा हो जाए, कोई एक्साइटमेंट मिल जाए इससे भी। शायद इससे भी एक नया अनुभव मिल जाए। ऐसी खोज चल रही है। यह खोज कोई बहुत गहरी, कोई प्यास की खोज नहीं है। इस सबको सोचना, देखना, जानना चाहिए तो शायद गहरी खोज पैदा हो जाए।

अभी मैं जाऊं आपके पास और एकदम से कहूं, चलो चलते हो मिला दें ईश्वर से। तो आप कहोगे, कल सुबह तो मुझे घर वापस जाना है। और टिकट तो रिजर्व करा ली है। टिकट भी रिजर्व न कराई होती तो शायद आपकी बात पर हम विचार भी करते। फिर कभी, आगे कभी, फिर कभी मिलिए, फिर देखेंगे, फिर सोचेंगे। ऐसा ही मन है। और ऐसा मन कहां जाएगा, कहां पाएगा, क्या करेगा? नहीं, ऐसे मन से कुछ भी नहीं हो सकता है। इस पूरे मन को ही फेंक देना है। एक बिलकुल नया मन चाहिए। उसकी ही हम इधर तीन दिनों में बात करते थे।

लेकिन बार-बार वही बात फिर पूछने हम चले आते हैं। तो लगता है ऐसा...एक मित्र अभी आए कि क्रोध के लिए क्या करें? मैंने उनसे कहा, सुबह मौजूद थे, कल मौजूद थे? वे मौजूद हैं। सुना होगा, समझा होगा, लेकिन फिर पूछते हैं, क्रोध के लिए क्या करें! करना चाहते हैं या नहीं करना चाहते हैं? या कि महज बहाना है कि क्या करें, क्या न करें। तो वही तो कह रहा हूं कि क्या करें। फिर बार-बार पूछते हैं, क्या करें।

शायद ऐसा लगता है कि इस भ्रम में कि हमें पता नहीं है क्या करें, इसलिए हम कुछ नहीं करते हैं--चलता चला जाता है। ठीक-ठीक पता है सब बात का। करना चाहते हैं तो अभी कर सकते हैं। क्या कठिनाई है? कब तक पूछते रहेंगे? कब तक पूछते रहेंगे कि क्या करें, क्या करें, क्या करें? नहीं, यह न पूछें। समझें और करना शुरू कर दें। कुछ एक-आध कदम तो चलें।

एक रात एक गांव के पास एक युवक अपनी लालटेन लिए हुए बैठा था। कोई चार बजे होंगे रात के। पास ही दस मील दूर एक पहाड़ी थी, उसे देखने जा रहा था। लेकिन सुबह चलेगा तो धूप हो जाएगी, कठिनाई होगी। इसलिए तीन बजे रात उठकर चला था। फिर लालटेन लेकर गांव के बाहर पहुंचा तो अमावस की रात, घना अंधकार...तो वह लालटेन रखकर बैठ गया। उसने सोचा कि लालटेन है छोटी सी, फीट-दो फीट तक रोशनी जाती है, दस मील

का रास्ता कैसे पार होगा? दस मील तक प्रकाश होता तो चले भी जाते। कुछ दो फीट तक प्रकाश पड़ता है। और दस मील का लंबा रास्ता। हे भगवान, यह नहीं हो सकता। उसने दस मील में दो फीट का भाग दिया होगा, तो समझ में आ गया कि यह तो बहुत कठिन बात है। गणित उसे मालूम था। दो फीट की रोशनी है, दस मील का रास्ता है--अंधेरे से भरा हुआ--काम होगा कैसे?

वह वहां बैठ गया, सूरज निकल आए तो जाऊं। ऐसे तो काम नहीं चल सकता। पीछे से एक बूढ़ा आदमी भी उसी पहाड़ की तरफ जाता था। उसने पूछा कि बेटे, तुम बैठे क्यों हो? उसने कहा कि मैं इसलिए बैठा हूं कि सूरज निकल आए तो जाऊं। क्योंकि रास्ता है दस मील लंबा और मेरे पास छोटी सी लालटेन है और दो फीट रोशनी पड़ती है। कैसे होगा यह? यह पार कैसे पड़ेगी बात?

उस बूढ़े ने कहा, बड़ा पागल है तू। दो फीट रोशनी बहुत है। एक दफे में एक आदमी एक कदम से ज्यादा चलता ही नहीं। एक कदम चल, तब तक रोशनी दो फीट आगे हो जाएगी। फिर एक कदम चल, तब तक रोशनी फिर दो फीट आगे हो जाएगी। तुझे हमेशा दो फीट आगे रोशनी उपलब्ध रहेगी, तू चल तो। दस मील क्या, दस हजार मील छोटी लालटेन से पार हो सकते हैं। लेकिन तू भी अजीब गणित लगाने बैठा है कि दो फीट रोशनी जाती है तो दस मील के लिए कितनी रोशनी चाहिए! इतनी बड़ी लालटेन नहीं बन सकती, बहुत मुश्किल है, फिर तू कभी नहीं जा सकेगा।

तो मैं निवेदन करूंगा, छोटी सी रोशनी जो भी दिखाई पड़ती हो, उसमें चलना शुरू कर दें। रोशनी काफी है, थोड़ी से थोड़ी भी काफी है, क्योंकि एक कदम से ज्यादा कभी कोई चल सकता है? एक कदम चलिएगा, रोशनी और एक कदम आगे हो जाएगी। लेकिन चलना हमें नहीं है। हम हिसाब लगाने में बहुत कुशल हैं, हम बैठकर हिसाब लगाते हैं।

मैंने आपको कहा, निरीक्षण करिए क्रोध का। आप फिर पूछते हैं, क्रोध के लिए क्या करें? निरीक्षण करिए। नहीं आज एकदम से हो सकेगा निरीक्षण। दो फीट ही सही, दस मील न सही, थोड़ा सा ही सही, लेकिन करें तो। कुछ चीजें हैं, जो केवल करके ही जानी जा सकती हैं, जिन्हें जानने का और कोई उपाय नहीं है।

एक आदमी तैरना सीखना चाहता हो, वह कहे कि पहले हमें तैरना सिखा दें, फिर हम पानी में उतरेंगे। तो बड़ी मुश्किल है। क्योंकि वह कहेगा कि जब तक मैं तैरना न सीखूं, तब तक पानी में उतरूं कैसे? और जब तक कोई पानी में न उतरे तब तक तैरना सीखे कैसे? फिर बात खतम हो गई, वह किनारे पर रह जाएगा वह आदमी, क्योंकि उसने एक शर्त लगाई है कि जब तक मैं तैरना न सीख लूं, तब तक मैं पानी में नहीं उतर सकता! और पानी में उतरना जरूरी है तैरना सीखने के लिए भी।

तो आप पूछते हैं कि क्या करें? पूरी, हमें सारी साधना स्पष्ट हो जानी चाहिए। वह स्पष्ट होगी आपके चलने से। एक कदम भर स्पष्ट हो जाए तो काफी है। फिर आप चलिए। फिर

आप उतरिए पानी में। तो फिर आप सीखेंगे चलने से, गति करने से। नहीं तो जीवनभर कभी नहीं सीखेंगे।

इधर तीन दिनों में जो थोड़ी सी बातें हुई हैं, इसमें से कुछ भी--एक कणभर आपको दिखाई पड़ता हो कि करने जैसा है तो करिए। और उस कणभर को करने में आप पाएंगे कि और आगे का रास्ता आलोकित हो गया। उतना और चलिए और आप पाएंगे और बड़ा रास्ता आलोकित हो गया। जितना चलिए, उतना ही रास्ता प्रकाशित होता चला जाएगा।

लेकिन आप शुरू से लेकर आखिरी तक पूरी पंचवर्षीय योजना अभी जान लेना चाहते हों तो उसके लिए गवर्मेंट आफ इंडिया से संबंध स्थापित करना चाहिए। वहां इस तरह की बड़ी कारीगरियां निरंतर चलती रहती हैं! वे बड़ी लंबी योजनाएं बनाते हैं। एक कदम चलने का जिन्हें तमीज नहीं, वे सारे लोग हजारों कदमों की योजनाएं बनाते हैं। तो वे हजारों कदम तो कभी उठते नहीं, वह एक कदम भी जो उठ सकता था, वह भी नहीं उठ पाता है। एक कदम काफी है।

गांधी जी एक भजन गाया करते थे--वन स्टेप इज़ इनफ फार मी--उसमें एक पंक्ति है, एक कदम काफी है। सच है यह बात। एक कदम काफी है। लेकिन एक कदम जो नहीं चलता और हजारों कदमों का विचार करता रहता है, वह खो देता है, जीवन से वंचित रह जाता है।

एक और मित्र ने पूछा है कि मैं ईश्वर के दर्शन कैसे कर सकता हूं?

तो मैं आपसे निवेदन करूंगा, "आप', अर्थात "मैं', यह कभी भी ईश्वर का दर्शन नहीं कर सकता है। "मैं' की कोई भाषा ईश्वर तक ले जाने वाली नहीं है। जिस दिन "मैं' न रह जाएगा, उस दिन तो कुछ हो सकता है। लेकिन जब तक "मैं' हूं, कि मुझे करना है ईश्वर के दर्शन--तो यह "मैं' ही तो बाधा है।

विक्टोरिया, महारानी विक्टोरिया अपने पति से एक दिन लड़ पड़ी थी। उसका पति अल्बर्ट कुछ भी नहीं बोला, चुपचाप जाकर अपने कमरे में बंद होकर द्वार उसने लगा लिया। विक्टोरिया क्रोध में थी, वह भागी हुई पीछे गई। उसने जाकर द्वार पर जोर से धक्के मारे और कहा, दरवाजा खोलो। अल्बर्ट ने पीछे से पूछा, कौन है? उसने कहा, क्वीन आफ इंग्लैंड, मैं हूं इंग्लैंड की महारानी। फिर पीछे से दरवाजा नहीं खुला। फिर वह दरवाजा ठोंकती रही, फिर पीछे से कोई उत्तर भी नहीं आया, कोई आवाज भी नहीं।

घड़ी भर बीत जाने के बाद उसने धीरे से कहा, अल्बर्ट, दरवाजा खोलो, मैं हूं तुम्हारी पत्नी। वह दरवाजा खुल गया। अल्बर्ट, मुस्कुराता हुआ सामने खड़ा था।

परमात्मा के द्वार पर हम जाते हैं--"मैं हूं इंग्लैंड की महारानी', दरवाजा खोलो। वह दरवाजा नहीं खुलने वाला है। यह "मैं' जो है, इगो, इसके लिए कोई दरवाजा नहीं खुलता। दरवाजा खुलने के लिए ह्यूमिलिटि चाहिए, विनम्रता चाहिए। और विनम्रता वहीं होती है, जहां "मैं' नहीं होता है। और कोई विनम्रता नहीं होती।

अहंकार को लेकर कोई कभी ईश्वर तक नहीं पहुंचा है, न पहुंच सकता है। खो देना पड़ेगा स्वयं को तो। छोड़ देना पड़ेगा स्वयं के इस भाव को कि मैं हूं। इसे हम बड़े जोर से पकड़े हुए हैं कि "मैं हूं'। एक सख्त दीवाल बन गई हमारे चारों तरफ, जिसमें कोई किरणें प्रकाश नहीं करतीं, नहीं प्रवेश कर पाती हैं। छोड़ देना होगा इस "मैं' को। तो मैं ईश्वर के दर्शन करना चाहता हूं--यह भाषा ही गलत है।

और दूसरी बात। ईश्वर के दर्शन की बात भी गलत है। ईश्वर का दर्शन कोई आदमी का दर्शन थोड़े ही है कि आप गए और सामने खड़े हो गए और आपने दर्शन कर लिया! ईश्वर कोई व्यक्ति तो नहीं है। कोई रूप-रंग, कोई रेखा तो नहीं है। ईश्वर के दर्शन का मतलबः किसी व्यक्ति का कोई दर्शन थोड़े ही मिल जाने वाला है! ईश्वर के दर्शन का मतलब हैः वह जो जीवंत चेतना है, सर्वव्यापी, वह जो ऊर्जा है, वह जो शक्ति है जीवन की, वह जो सृजन का मूल-स्रोत है, वह जो सब तरफ व्याप्त अस्तित्व है, वह जो एक्जिसटेंस है--वही सब, उस सबका इकट्ठापन, उसकी टोटेलिटी, उसकी होलनेस, यह अस्तित्व की समग्रता और पूर्णता ही, ईश्वर है।

तो जिस दिन मेरे अहंकार की बूंद इस विराट अस्तित्व के सागर में खोने को राजी हो जाती है, उसी दिन मैं उसे उपलब्ध हो जाता हूं, मैं उसे जान लेता हूं। बूंद खो जाए तो सागर के साथ एक हो जाती है। लेकिन बूंद कहे कि मैं सागर को जानना चाहती हूं, फिर बहुत कठिनाई है। बूंद कहे कि मैं मिटने को राजी हूं, तो जिस जगह वह मिट जाएगी, उसी जगह वह सागर को उपलब्ध हो जाती है--वहीं मिल जाएगी सागर से। अहंकार की बूंद लिए रास्ता तय नहीं हो सकता है।

इसलिए यह मत पूछें कि मैं ईश्वर के दर्शन को उपलब्ध हो सकता हूं? नहीं, न तो "मैं' ईश्वर के दर्शन को उपलब्ध हो सकता है, और न ईश्वर का दर्शन किसी व्यक्ति का दर्शन है।

एक मित्र ने पूछा है कि ध्यान में बैठता हूं, तो बस अंधकार ही अंधकार दिखाई पड़ता है। कोई प्रकाश दिखाई नहीं पड़ता।

प्रकाश दिखाई पड़ने की जरूरत क्या है? अंधकार दिखाई पड़ता है, यही एक बीमारी है। धीरे-धीरे यह भी दिखाई नहीं पड़ेगा। जब कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा--कुछ भी; जब कुछ भी अनुभव में नहीं उतरेगा--कुछ भी; रह जाएंगे केवल जागरूक; रह जाएगा केवल ज्ञान, बोध मात्र; रह जाएगी केवल कांशसनेस और सामने कोई भी आब्जेक्ट नहीं, कोई भी विषय नहीं, कोई भी अनुभव नहीं, उसी क्षण जो जान लिया जाता है, वह समग्रता का अनुभव है। उसे हम प्रेम की भाषा में परमात्मा कहते हैं।

परमात्मा शब्द सिर्फ हमारी प्रेम की भाषा है। अन्यथा सत्य ही कहना उचित है। उस दिन हम जान पाते हैं, सत्य क्या है। लेकिन सत्य को जब हम प्रेम की तरफ से देखते हैं, जब हम सत्य को प्रेम से देखते हैं तब सत्य बड़ा दूर मालूम पड़ता है, बड़ा गणित का सिद्धांत मालूम पड़ता है, मैथमेटिकल मालूम पड़ता है। उससे कोई संबंध पैदा होता नहीं मालूम

पड़ता, तब हम कहते हैं, परमात्मा। और तब एक संबंध बनता हुआ मालूम पड़ता है। एक प्रेम का नाता और एक सेतु बनता हुआ मालूम पड़ता है।

एक मित्र ने पूछा है कि मैं आखिरी में कहता हूं कि आप सबके भीतर परमात्मा के लिए प्रणाम करता हूं। या कभी कहता हूं कि परमात्मा करे...तो मेरा मतलब क्या है?

मेरा मतलब किसी ऐसे परमात्मा से नहीं, जो ऊपर बैठा है और सब चला रहा है। मेरा मतलब सबके भीतर बैठी हुई, सोई हुई चेतना से है। उस चेतना को ही बुलाता हूं। कोई दूर किसी परमात्मा को नहीं। वह जो आपके भीतर है और कण-कण में, पत्ते में, पत्थर में, सब में है।
और हमारे शब्द और हमारी भाषा सब असमर्थ है ऐसे तो उसके बाबत कुछ कहने में। लेकिन फिर कुछ इशारे अत्यंत जरूरी हैं। तो कोई नाम हम दे दें, परमात्मा कहें, सत्य कहें या कुछ भी कहें, कुछ भी कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। मोक्ष कहें, निर्वाण कहें, ब्रह्म कहें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। हमारे सब शब्द एक से असमर्थ हैं, उसे सूचित करने में। लेकिन शब्द के बिना कोई सूचना भी कठिन है।
तो इसीलिए निःशब्द में जाने का हम प्रयोग करते हैं, शब्द को छोड़ने का, ताकि वहां शायद उसका स्पर्श, उसका संस्पर्श हो सके।
एक अंतिम बात फिर हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे।

अंतिम बात यह मुझे कहनी है, वह भी एक मित्र ने पूछा है कि हम कैसे हो जाएं कि वह प्रगट हो सके?

एक छोटी सी कहानी अंत में कह देनी है। उसके साथ ही बात पूरी हो जाएगी।

एक पंडित था। बहुत शास्त्र उसने पढ़े थे। बहुत शास्त्रों का ज्ञाता था। उसने एक तोता भी पाल रखा था। पंडित शास्त्र पढ़ता था, तोता भी दिन-रात सुनते-सुनते काफी शास्त्र सीख गया था। क्योंकि शास्त्र सीखने में तोते जैसी बुद्धि आदमी में हो, तभी आदमी भी सीख पाता है। सो तोता खुद ही था। पंडित के घर और पंडित भी इकट्ठे होते थे। शास्त्रों की चर्चा चलती थी। तोता भी काफी निष्णात हो गया। तोतों में भी खबर हो गई थी कि वह तोता पंडित हो गया है।

फिर गांव में एक बहुत बड़े साधु का, एक महात्मा का आना हुआ। नदी के बाहर वह साधु आकर ठहरा था। पंडित के घर में भी चर्चा आई। वे सब मित्र, उनके सत्संग करने वाले सारे लोग, उस साधु के पास जाने को तैयार हुए कुछ जिज्ञासा करने। जब वे घर से निकलने लगे तो उस तोते ने कहा, मेरी भी एक प्रार्थना है, महात्मा से पूछना, मेरी आत्मा भी मुक्त होना चाहती है, मैं क्या करूं? मैं कैसा हो जाऊं कि मेरी आत्मा मुक्त हो जाए?

सो उन पंडितों ने कहा, उन मित्रों ने कहा कि ठीक है, हम जरूर तुम्हारी जिज्ञासा भी पूछ लेंगे। वे नदी पर पहुंचे, तब वह महात्मा नग्न नदी पर स्नान करता था। वह स्नान करता जा रहा था। घाट पर ही वे खड़े हो गए और उन्होंने कहा, हमारे पास एक तोता है, वह बड़ा पंडित हो गया है।

उस महात्मा ने कहा, इसमें कोई भी आश्चर्य नहीं है। सब तोते पंडित हो सकते हैं, क्योंकि सभी पंडित तोते होते हैं। हो गया होगा। फिर क्या?

उन मित्रों ने कहा, उसने एक जिज्ञासा की है कि मैं कैसा हो जाऊं, मैं क्या करूं कि मेरी आत्मा मुक्त हो सके?

यह पूछना ही था कि वह महात्मा जो नहा रहा था, उसकी आंख बंद हो गईं, जैसे वह बेहोश हो गया हो, उसके हाथ-पैर शिथिल हो गए। धार थी तेज, नदी उसे बहा ले गई। वे तो खड़े रह गए चकित। उत्तर तो दे ही नहीं पाया वह, और यह क्या हुआ! उसे चक्कर आ गया, गश्त आ गया, मूर्च्छा हो गई, क्या हो गया? नदी की तेज धार थी--कहां नदी उसे ले गई, कुछ पता नहीं।

वे बड़े दुखी घर वापस लौटे। कई दफा मन में भी हुआ इस तोते ने भी खूब प्रश्न पुछवाया। कोई अपशगुन तो नहीं हो गया। घर से चलते वक्त मुहूर्त ठीक था या नहीं? यह प्रश्न कैसा था, प्रश्न कुछ गड़बड़ तो नहीं था? हो क्या गया महात्मा को?

वे सब दुखी घर लौटे। तोते ने उनसे आते ही पूछा, मेरी बात पूछी थी? उन्होंने कहा, पूछा था। और बड़ा अजीब हुआ। उत्तर देने के पहले ही महात्मा का तो देहांत हो गया। वे तो एकदम बेहोश हुए, मृत हो गए, नदी उन्हें बहा ले गई। उत्तर नहीं दे पाए वह।

इतना कहना था कि देखा कि तोते की आंख बंद हो गईं, वह फड़फड़ाया और पिंजड़े में गिरकर मर गया। तब तो निश्चित हो गया, इस प्रश्न में ही कोई खराबी है। दो हत्याएं हो गईं व्यर्थ ही। तोता मर गया था, द्वार खोलना पड़ा तोते के पिंजड़े का।

द्वार खुलते ही वे और हैरान हो गए। तोता उड़ा और जाकर सामने के वृक्ष पर बैठ गया। और तोता वहां बैठकर हंसा और उसने कहा कि उत्तर तो उन्होंने दिया, लेकिन तुम समझ नहीं सके। उन्होंने कहा, ऐसे हो जाओ, मृतवत, जैसे हो ही नहीं। मैं समझ गया उनकी बात। और मैं मुक्त भी हो गया--तुम्हारे पिंजड़े के बाहर हो गया। अब तुम भी ऐसा ही करो, तो तुम्हारी आत्मा भी मुक्त हो सकती है।

तो अंत में मैं यही कहना चाहूंगाः ऐसे जीएं जैसे हैं ही नहीं। हवाओं की तरह, पत्तों की तरह, पानी की तरह, बादलों की तरह। जैसे हमारा कोई होना नहीं है। जैसे मैं नहीं हूं। जितनी गहराई में ऐसा जीवन प्रगट होगा, उतनी ही गहराई में मुक्ति निकट आ जाती है।
इन तीन दिनों में इस तरह ही जी सकें। उसी के लिए मैंने सारी बातें कहीं हैं। इस तरह जीएं, जैसे नहीं हैं। बस, साधना का इससे ज्यादा गहरा कोई और सूत्र नहीं है।

अब हम रात्रि के ध्यान के लिए बैठेंगे और फिर विदा होंगे। यह अंतिम रात्रि है, इसलिए बहुत शांति से ध्यान में जाने का प्रयोग करें। इसलिए बहुत शांति से ध्यान में जाने का प्रयोग करें।

सब लोग थोड़े दूर चले जाएं।...अपनी-अपनी जगह रुक जाएं, जो जहां हैं। कोई किसी तरह की बातचीत नहीं करेगा। जो लोग खड़े हैं या बैठे हैं, वे सबका ध्यान रखेंगे--थोड़ी भी गड़बड़ न हो।

शांति से लेट जाएं।...सारे शरीर को बिलकुल ढीला छोड़ दें। वैसे ही जैसा अभी मैंने कहा, जैसे आप हों ही नहीं। बिलकुल ढीला छोड़ दें। जैसे कोई जीवन भी नहीं है। बिलकुल शिथिल छोड़ दें।...

शरीर शिथिल हो रहा है, छोड़ दें। आंख आहिस्ता से बंद कर लें।...शरीर शिथिल हो रहा है, अनुभव करें। शरीर शिथिल हो रहा है...शरीर शिथिल हो रहा है...शरीर शिथिल हो रहा है...शरीर शिथिल हो रहा है। शरीर बिलकुल शिथिल हो गया है। छोड़ दें। शरीर शिथिल हो गया है।

श्वास शांत हो रही है...श्वास शांत हो रही है...श्वास शांत हो रही है। श्वास भी बिलकुल ढीली छोड़ दें।...अब बिलकुल शांत और मौन चारों तरफ जो भी आवाजें सुनाई पड़ रही हैं, उन्हें सुनें। रात्रि की आवाजें आ रही हैं, जंगल का सन्नाटा बोल रहा है, उसे मौन, जागे हुए सुनते रहें।...सुनें।...शांति से सुनें। भीतर जागे रहें और सुनते रहें।...सुनते-सुनते ही मन शांत होता जाएगा।...सुनते-सुनते मन एकदम नीरव, एकदम शांत हो जाएगा।...सुनें।

...सुनें, रात्रि के सन्नाटे को सुनें। सुनते-सुनते ही मन शांत और मौन होता जाएगा।
मन शांत हो रहा है...मन शांत हो रहा है...मन शांत हो रहा है...मन शांत हो रहा है...मन शांत हो रहा है...मन शांत हो रहा है...मन शांत हो रहा है...मन शांत हो रहा है।
मन शांत होता जा रहा है...मन शांत हो रहा है।
मन शांत हो गया है...मन शांत हो गया है...मन बिलकुल शांत हो गया है।
मन शांत हो गया है...मन एकदम शांत हो गया है। मन शांत हो गया है। मन शांत हो गया है।

मन बिलकुल शांत और शून्य हो गया है। शून्य, बिलकुल शून्य हो गया है।

अब धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें।...धीरे-धीरे दो-चार गहरी श्वास लें। फिर बहुत आहिस्ता से आंख खोलें। जैसी शांति भीतर है, वैसी ही बाहर भी है।...धीरे-धीरे आंख खोलें और बाहर देखें।...फिर धीरे-धीरे उठ आएं।...शांति से मौन चुपचाप उठकर बैठते जाएं।...धीरे, आहिस्ता अपनी-अपनी जगह चुपचाप बैठ जाएं।

दुख पहुंचाने वाली बात आपको मैंने कही हो, किसी को भी--स्वप्न में भी दुख पहुंचाने का मेरा मन नहीं है। लेकिन मजबूरी है? कुछ बातें दुख पहुंचाने वाली हो सकती हैं।
अंत में, किसी को दुख पहुंच गया हो, उससे मैं क्षमा मांगता हूं--सभी से। और विदाई के इन क्षणों में सबके भीतर बैठे परमात्मा को प्रणाम करता हूं। मेरे प्रणाम स्वीकार करें।

साधना-शिविर माथेरान, दिनांक २१-१०-६७, रात्रि